

भारतेन्दु - युगीन नाट्य-साहित्य

का

लोकतात्विक अध्ययन

[इलाहाबाद विश्वविद्यालय को डी० फिल्० की उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबंध]

॥

प्रस्तुतकर्ता

कृष्ण मोहन खलैना

शोध-छात्र, हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय,

इलाहाबाद

निर्देशक

डॉ० राजेन्द्र कुमार वर्मा

एम० ए०, डी० फिल्०

हिन्दी-विभाग

इलाहाबाद-विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

विजयदशमी १९७३

ପଞ୍ଚମୋକ୍ଷସାମୁଦ୍ରାବଳୀ

ନିବିନ୍ଦନ

ପଞ୍ଚମୋକ୍ଷସାମୁଦ୍ରାବଳୀ

निवेदन

वाधुनिक हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु-युग भारतीय जीवन और साहित्य में नव्यवेतना के प्रसार का युग है। परम्परा के पोषण और नवीनता के उद्बोधन की भूमिका में भारतेन्दु-युगिन साहित्य अपना विशेष महत्व रखता है। हिन्दी गद्य साहित्य में विविध साहित्य रूपों का उद्भव भारतेन्दु-युग में ही हुआ। प्रयोगों की दृष्टि से भारतेन्दु-युग का गद्य साहित्य अत्यन्त वैविध्यपूर्ण है तथा उसमें साहित्यकारों की नवीनमेकशा लिनि प्रतिभा की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति हुई है।

भारतेन्दु-युग लोकजीवन में नव्य वेतना के प्रसार और जागृति का युग था। इस युग के साहित्यकारों ने सामयिक समस्याओं को अपनी रचनाओं में श्लाघ्य अभिव्यक्ति प्रदान की है। विशेषकर यह अभिव्यक्ति विविध गद्य रूपों के अन्तर्गत हुई, जीवन की विविध समस्याओं का प्रत्यक्ष निदर्शन अन्य रूपों की तुलना में नाटक के माध्यम से अपेक्षाकृत अधिक सफल रूप में सम्भव थी। अतः अपने युग का बोध कराने वाले तथ्यों तथा लोक जीवन को परिष्कृत करने वाले विचारों और आवश्यक सुख मूल्यों को भारतेन्दु-युगिन नाटककारों ने अपनी कृतियों में वाणी प्रदान की है। नाट्य-कृतियों के सृजन में भारतेन्दुयुगिन नाटककारों ने कदाचित् इसी लिए लोकतत्वों को एक सख्त भूमिका एवं प्रक्रिया में ग्रहण किया है। अपनी इस साधना में वे लोकमानस की नव्यवेतना प्रदान कर उसे प्रेरित एवं उद्बलित करने में सफल हो सके हैं। वस्तु, भारतेन्दुयुगिन नाट्य-साहित्य में लोकपदा किस स्तर पर समाहित है? साथ ही, भारतेन्दुयुगिन नाटककारों ने अपनी कृतियों में किस सीमा तक लोकतत्वों को वात्सल्य किया है? -- ऐसी समस्याओं को 'भारतेन्दुयुगिन नाट्य साहित्य का लोकात्मिक अध्ययन' शीर्षक शोध-प्रबंध के अन्तर्गत स्वीकार किया गया है।

भारतेन्दुयुगिन नाट्य-साहित्य के लोकात्मिक अध्ययन की संभावनाओं से प्रेरित होकर प्रस्तावित विषय के औचित्य के संबंध में मैंने डा० सत्येन्द्र से पत्राचार किया। उन्होंने अत्यन्त कृपापूर्वक मुझे लोकात्मिक दृष्टि से भारतेन्दु-

युगिनि नाट्य-साहित्य के अध्ययन में प्रवृत्त होने की अनुमति प्रदान की। इसके उपरान्त मैं डा० राजेन्द्रकुमार के निर्देशन में प्रस्तावित विषय पर सौध-कार्य में प्रवृत्त हो गया।

भारतेन्दुयुगिनि नाट्य-साहित्य का लोकात्म्य की दृष्टि से प्रस्तावित अध्ययन 'भारतेन्दु-युग और लोकात्म्य', 'भारतेन्दुयुगिनि नाट्यसाहित्य में लोक-कथानक', 'भारतेन्दुयुगिनि नाट्य-साहित्य में लोककवि', 'भारतेन्दुयुगिनि नाट्य-साहित्य में लोकभाषा का स्वरूप', 'भारतेन्दुयुगिनि नाट्य साहित्य में लोक-रंगमंच', 'मूल्यांकन और स्थापनाएं' -- शीर्षक कुछ अध्यायों में विभक्त है।

पहले अध्याय में भारतेन्दुयुग और लोकात्म्य की पक्ष ग्रहणशीलता के संबंध में विवेचना प्रस्तुत की गई है। भारतेन्दु युग की सीमा, भारतेन्दु युग का महत्व, भारतेन्दु युग और जनसाहित्य, जन साहित्य और लोकात्म्य उप-शीर्षकों के अन्तर्गत भारतेन्दु-युग के समग्र अन्तः बाह्य स्वरूप को प्रस्तुत किया गया है। इस विवेचन के उपरान्त लोकात्म्य की भारतीय तथा पश्चात्य अवधारणाओं का विवेचन करके नाट्य-क्षेत्र की दृष्टि से लोकात्म्य के चार उपकरण निरूपित किए गए हैं। वे हैं -- लोककथानक, लोककवि, लोकभाषा और लोकरंगमंच। इन उपकरणों की दृष्टि से भारतेन्दुयुगिनि नाटकों में लोक-संमेलन व्याप्त लोकात्म्य के संभावना-पक्ष पर विचार किया गया है, जिससे यह स्पष्ट आभासित होता है कि विविध लोकात्म्य उपादानों से भारतेन्दु-युगिनि नाटक परिपूर्ण रहे हैं।

दूसरे अध्याय में के अन्तर्गत लोककथानक का स्वरूप विश्लेषित करने के पश्चात् लोककथानकों के आधार पर भारतेन्दुयुगिनि नाट्य-साहित्य की वर्गीकृत किया गया है, जो इस प्रकार है -- धर्माथामूलक, प्रेमाथामूलक और लोक-कथात्मक अन्य रूप। धर्माथामूलक नाटकों के स्वरूप विश्लेषण के उपरान्त इस वर्ग के अन्तर्गत समाहित नाट्य-साहित्य पांच धाराओं में विभक्त किया गया है -- [अ] रामकथापरक नाटक, [ब] कृष्णकथापरक नाटक, [स] कौरव-पाण्डकथापरक नाटक, [द] पातिव्रत्य-धर्मकथापरक नाटक, [य] लोकप्रिय भक्त

लोकपरक नाटक । तदनन्तर इन विभागों के अन्तर्गत समाहित नाटकों के कथानकों में व्याप्त लोकपक्ष का विश्लेषण किया गया है । भारतेन्दु-युग के प्रेमकथात्मक नाटकों के अन्तर्गत सुखान्त प्रेम नाटक एवं दुःखान्त प्रेमनाटक के लौकिक पक्षों पर विचार किया गया है । इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि भारतेन्दु युग में धर्म गाथा और प्रेम गाथा से संबंधित नाटकों की संख्या पर्याप्त रही है, अतएव नाटककारों की मूल दृष्टि लोकपरक ही रही है । लोककथात्मक अन्य रूपों पर आधारित नाटकों का ऐतिहासिक तथ्य, सामयिक, सामाजिक धर्म, सामयिक राजनीति तथा लोकधर्मों नाट्य रूप -- वगैरह के अन्तर्गत विवेचन किया गया है । इस प्रकार युग-बोध के अनुरूप भारतेन्दुयुगीन नाटकों का कथात्मक परिधान विविध विषयों से सम्बद्ध तो हो गया था, किंतु उनका मूल आन्तरिक स्वरूप मूलतः लोकान्मुख था ।

तीसरे अध्याय में सर्वप्रथम लोकरूढ़ि के स्वरूप का विवेचन घटना-प्रधान और विचार अथवा विश्वास प्रधान दो रूपों में किया गया है । इससे भारतेन्दु-युगीन नाटकों में व्याप्त विविध लोकरूढ़ियों को विश्लेषित करने में सुगमता रही है । लोकविश्वासों से सम्बन्धित रूढ़ियाँ, अमानवीय शक्तियों से सम्बन्धित रूढ़ियाँ, अभिशाप-वरदान और तन्त्र-मन्त्र से सम्बन्धित रूढ़ियाँ एवं अन्य रूढ़ियों के अन्तर्गत कथा-प्रवाह को मनावार्जित परिप्रेक्ष्य प्रदान करने वाली रूढ़ियों का विशद विवेचन और भारतेन्दुयुगीन नाटकों में अभिव्यक्ति का चित्रण किया गया है । भारतेन्दु युग के नाटककारों ने उन परम्परित रूढ़ियों का सशक्त विरोध किया है, जिससे लोकमानस अधोगामी हो जाता है । अतएव, अंत में रूढ़ि-परिष्कार का विवेचन किया गया है ।

चौथे अध्याय के अन्तर्गत भारतेन्दु-युग की भाषा-नीति पूर्व भाषा प्रयोग की दृष्टि से क्लि-क्लि स्तरों पर परिवर्तित हुई है ? और भारतेन्दुयुगीन भाषा कितनी लोकान्मुख रही है ? इन प्रश्नों पर विचार करने के उपरान्त भारतेन्दु युग के प्रमुख नाटककारों की भाषा-नीति का विश्लेषण किया गया

है, जिसे नाटकों में लोकभाषा के प्रयोग का औचित्य सुस्रित हो सका है। भाषा के लोकतात्त्विक स्वरूप ग्रहण करने की भूमिका में व्युत्पत्ति की दृष्टि से स्वदेशी तथा विदेशी शब्द-प्रयोग, वाक्य-योजना, मुहावरों एवं कहावतों के प्रयोगों का भारतेन्दुयुगीन नाटकों के आधार पर विश्लेषण किया गया है। भारतेन्दुयुगीन नाट्यकारों की भाषा-नीति तथा प्रयोग-दृष्टि में समानता दृष्टिगत होती है। इसी लिए उनके नाटकों की भाषा सहजतः सम्प्रेषणीय हो सकी है। अन्त में अनेक संवादों को प्रस्तुत करके भाषा की प्रेषणीयता पर विचार किया गया है।

पाँचवें अध्याय में भारतेन्दुयुगीन रंगमंच की भूमिका का सम्यक् विश्लेषण किया गया है, जिससे यह स्पष्ट हो सका है कि रंगमंचीय परम्परा में किस प्रकार लोक-नाट्य रूप का जीवन्त स्वरूप प्रतिबिम्बित होता रहा है। इसी आधारपर भारतेन्दुयुगीन नाटकों में सहायक लोकनाट्य-रूप -- रामलीला, रास-लीला, स्वांग और नौटंकी का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। भारतेन्दुयुगीन विविध रंगमंच नाट्यकारों को प्रभावित करते रहे हैं किन्तु इस प्रभाव के साथ ही नाट्यकार लोकानुसृष्टता की मूल वेतना से असंपृक्त नहीं हुए हैं। अंग्रेजी, बंगाली एवं पारसी रंगमंच के विवेचन से बंगाल की लोक कथा और पारसी रंगमंच के लोकानुसृष्ट प्रस्तुति से भारतेन्दुयुगीन नाटकों ने किस सीमा तक प्रेरक तथा स्वस्थ प्रभाव ग्रहण किया है, इसका स्पष्टीकरण हो सका है। भारतेन्दु युग में नाट्य-लेख के साथ ही अभिनय-पद्धति पर भी नाट्यकारों की व्यापक दृष्टि रही है। अतएव इस परिप्रेक्ष्य में भारतेन्दुयुगीन काशी, प्रयाग, कानपुर, बलिया, बिहार और मध्यप्रदेश की लोक-रंगवेतना का सम्यक् विवेचन किया गया है। नाट्यकारों की प्रखर लोकदृष्टि लोक रंगान्दोलन के पक्ष की पुष्टि करती है। तदोपरान्त लोक उपकरणों, रंगशाला की व्यवस्था, पात्रों का अभिनय, ध्वनि, संगीत एवं गीत व्यवस्था, प्रकाश व्यवस्था -- की दृष्टि से भारतेन्दु-युगीन नाटकों की लोकानुसृष्टता पर विचार किया गया है।

छठे अध्याय में भारतेन्दुयुगिन नाट्य साहित्य का लोकोक्तत्वों के प्रयोग की दृष्टि से मूल्यांकन किया गया है और अध्ययन की स्थापनाएं निरूपित की गई हैं।

इस प्रकार प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में भारतेन्दुयुगिन नाट्य-साहित्य की निर्मिति में ल योग प्रदान करने वाले विविध लोकोक्तत्वों का अध्ययन और विश्लेषण करके यह निरूपित करने का विनम्र प्रयास किया गया है कि भारतेन्दुयुगिन नाट्य-साहित्य प्रकृत्या लोकोक्त-मुक्त है।

लोक-संस्कृति इस सम्बन्ध में यह निवेदन प्रासंगिक होगा कि लोक-साहित्य और संस्कृति का स्वल्प ज्ञान व्यापक और गम्भीर है कि लोक की भूमिका में उनके अध्ययन की पूर्णता का दावा कर पाना कठिन है, फिर भी भारतेन्दुयुगिन नाटकों की उपलब्ध एवं शीघ्र सम्पत्ति सामग्री के आधार पर प्रस्तावित अध्ययन की पूर्णता प्रदान करने की चेष्टा की गई है।

प्रस्तुत शोध-कार्य डा० राजेन्द्रकुमार के निर्देशन में सम्पन्न हुआ है। उनके प्रति श्रद्धापूर्वक आभार ज्ञापित करना मैं अपना दायित्व समझता हूँ क्योंकि उन्होंने के स्नेहपूर्ण निदेशन एवं सहज आत्मीय व्यवहार से मुझे विषय की गम्भीरतापूर्वक आत्मसात करने की दृष्टि तथा अनुसंधान की सही दिशा प्राप्त हो सकी।

यह प्रबंध जिन विद्वानों के अमूल्य सुझावों एवं संकेतों से अनुप्रेरित है, उनमें विद्वत्वर डा० रामकुमार वर्मा, डा० सत्येन्द्र, डा० गोपीनाथ तिवारी, डा० बच्चन सिंह, डा० जुंवर चन्द्रप्रकाश सिंह, श्री रायकृष्ण दास, पं० सुमित्रा-नन्दन पन्त, श्रीमती महादेवी वर्मा, डा० रामविलास शर्मा, डा० झजारीप्रसाद द्विवेदी, पं० अमृतलाल नागर, डा० मोमनाथ गुप्त, डा० कशरथ ओझा, डा० प्रभात, डा० हरिवंशराय बच्चन, पं० इलाचन्द्र जोशी, श्री श्याम परमार, श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी, श्री श्रीकृष्णदास, श्री शरद नागर, श्री जुंवर जी अग्रवाल, श्री नैमिचन्द्र जैन, श्री राजेन्द्र रघुवंशी, डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी, श्री कैलाश

कल्पित, डा० धीरेन्द्रनाथ सिंह और डा० अज्ञात विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन सभी विद्वानों ने प्रत्यक्ष साक्षात्कार करने पर अपना अमूल्य समय प्रदान कर तथा पत्राचार द्वारा लेखकों के अध्ययन की सही दिशा सोजने की दृष्टि प्रदान की है। अतः, मैं इन सभी के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

प्रस्तुत अध्ययन की आधारभूत एवं संदर्भ-सामग्री के अध्ययन और संचयन में मुझे नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ; हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ; भारतीय भवन पुस्तकालय, प्रयाग ; विश्व विद्यालय पुस्तकालय, प्रयाग ; आचार्य नरेन्द्रदेव पुस्तकालय, लखनऊ, अमीरुद्दीन पुस्तकालय, लखनऊ, भारत कला भवन, काशी आदि संस्थानों से अप्रत्याशित एवं उन्मुक्त सहायता मिली है। अतः मैं इन संस्थाओं के व्यवस्थापकों तथा पुस्तकालयाध्यक्षों के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ।

श्री श्रीनिवास त्रिवारी ने सुस्पष्ट टंकण-कार्य में और श्रीमती कामेश्वरी सक्सेना ने टंकण-कार्य का मूल से मिलाप करके कागजों को शीघ्र पूर्ण करने में सहयोग प्रदान किया है। अतः वे इस सहयोग के लिए धन्यवाद के सङ्ग अधिकारी बन गये हैं।

अन्त में, मैं एक बार पुनः उन सभी विद्वानों और शुभेच्छुओं के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने प्रस्तुत अध्ययन को पूर्ण करने में अपनी सङ्प्रेरणा से मुझे उपकृत किया है।

[कृष्णमोहन सक्सेना।

विजयादशमी, १९७३।

शीघ्रान्न, हिन्दी विभाग,
इलाहाबाद विश्व विद्यालय

भारतेन्दुयुगिन नाट्य-साहित्य का लौकतात्विक अध्ययन

व नु क्र म

अध्याय-१ : भारतेन्दु युग और लौकतत्व

--- पृ० १ से २६ तक

भारतेन्दु युग

- | | |
|--------------------------------|--------|
| १- भारतेन्दु युग की सीमा | पृ० १ |
| २- भारतेन्दु युग का महत्व | पृ० २ |
| ३- भारतेन्दु युग और जन-साहित्य | पृ० ६ |
| ४- जन-साहित्य और लौकतत्व | पृ० १० |

लौकतत्व का स्वरूप

- | | |
|-------------------------|--------|
| १- भारतीय मत | पृ० १३ |
| २- पाश्चात्य मत | पृ० १८ |
| ३- लौकतत्व के विविध रूप | पृ० २१ |
| ४- लोककथानक तत्व | पृ० २२ |
| ५- लोककृति तत्व | पृ० २३ |
| ६- लोकभाषा तत्व | पृ० २४ |
| ७- लोक रंगमंच तत्व | पृ० २६ |

अध्याय-२ : भारतेन्दुयुगिन नाट्य-साहित्य में लोककथानक --- (पृ० ३१ से ७८ तक)

१-लोक कथानक का स्वरूप विश्लेषण

पृ० ३१

२-लोककथानक के आधार पर भारतेन्दुयुगिन

नाटकों का विभाजन

पृ० ३२

क- धर्म गाथाएं

पृ० ३२

ख- प्रेमागाथाएं

पृ० ३६

ग- लोककथात्मक अन्य रूप

पृ० ३८

३-भारतेन्दुयुग के धर्मगाथात्मक नाटकों की

विविध धाराएं

पृ० ३६

अ- रामकथापरक नाटक	पृ० ४०
क- कृष्णकथापरक नाटक	पृ० ४४
स- कीरव-पांडव कथापरक नाटक	पृ० ४८
द- पातिव्रत्य-धर्म कथापरक नाटक	पृ० ५१
ध- लोकप्रतिष्ठ मन्त्र कथापरक नाटक	पृ० ५३

४-भारतेन्दु युग के प्रेमनाथात्मक नाटकों

<u>की विविध धाराएं</u>	पृ० ६३
------------------------	--------

अ- सुखान्त प्रेम नाटक	पृ० ६४
ब- दुःखान्त प्रेम नाटक	पृ० ६६

५-भारतेन्दु-युग के लोकनाट्यात्मक अन्य रूपों

<u>पर आधारित नाटक</u>	--	पृ० ७१
-----------------------	----	--------

अ- ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित नाटक	पृ० ७१
ब- सामयिक सामाजिक धर्म पर आधारित नाटक	पृ० ७४
स- सामयिक राजनीति पर आधारित नाटक	पृ० ७१
द- लोकवर्णी नाट्य-परंपरा पर आधारित नाटक	पृ० ७३

अध्याय-३ : भारतेन्दुयुगीन नाट्य-साहित्य में लोकरूढ़ि -- [पृ० ८० से १२८ तक]

<u>१- लोक रूढ़ि का स्वरूप</u>	पृ० ८०
-------------------------------	--------

अ- घटना प्रधान
ब- विचार अथवा विश्वास प्रधान

२- भारतेन्दुसुगिन नाटकों में लोककृतियाँ

के विविध रूप

पृ० ८५

१-लोकविश्वासाँ से संबंधित कृतियाँ

- अ- स्वप्न द्वारा भावी घटनाओं की सूचना
- ब- शुभ-शुनों के माध्यम से भविष्य की रूपरेखा
- स- अपशुनों का विवरण
- द- जाकाशाणी

२-अमानवीय शक्तियों से संबंधित कृतियाँ पृ० ६७

- अ- खलनायक के रूप में
- ब- खलनायिका के रूप में
- स- प्रपंच रचना करने वाली मायावी के रूप में
- द- नायक या नायिका की सहायता करने वाली शक्ति के रूप में

३- देवी-देवता तथा अन्य असी किं प्राणियों

से संबंधित कृतियाँ

पृ० १०१

- अ- देवी-देवताओं द्वारा सहायता
- ब- देवी-देवताओं द्वारा परीक्षा

४- पशु-पक्षियों से संबंधित कृतियाँ

पृ० १०७

५- अभिशाप-वरदान और तन्त्र-मन्त्र से

संबंधित कृतियाँ

पृ० १०६

- अ- अभिशाप
- ब- वरदान
- स- तन्त्र-मन्त्र

अन्य कड़ियाँ

पृ० ११४

- अ- नायक या नायिका के घरती
में समा जाने की उक्ति
- ब- भावों का मानवीकरण
- स- पात्रों के गुण-कर्मोत्तर नामकरण
- द- चिह्नचिप का चित्रण
- य- प्रिया की प्राप्त करने के लिए
प्रिय द्वारा जोनी बैध धारण करना
- र- सौम्याडाह

कड़ि परिष्कार का स्वरूप

पृ० १२६

अध्याय-४ : भारतेन्दुसिनि नाट्य-साहित्य में लोकभाषा

का स्वरूप

[पृ० १३० से १६

१-भारतेन्दु का की भाषा-नीति पृ० १३०

२-भारतेन्दुसिनि प्रमुख नाटककारों की

भाषा-नीति

पृ० १३४

क- भारतेन्दु -- पृ० १३४

ख- बालकृष्ण भट्ट -- पृ० १३६

ग- प्रतापनारायण मिश्र-पृ० १४२

घ- बदरिनारायण
चौधरी 'प्रेमघन' पृ० १४४

ङ- श्रीनिवासदास पृ० १४५

च- राधाचरण गोस्वामी पृ० १४६

छ- राधाकृष्णदास पृ० १४७

३- <u>नाटकों में लोकाभाषा के प्रयोग का औचित्य</u>	पृ० १४८
४- <u>शब्दप्रयोग</u>	पृ० १४९
व्युत्पत्ति की दृष्टि से स्वदेशी तथा विदेशी शब्दों का प्रयोग	पृ० १४९
अ- <u>स्वदेशी शब्द</u>	पृ० १४९
क- तत्सम शब्द	
ख- ऋद्धि तत्सम शब्द	
ग- तद्भव शब्द	
घ- देशज शब्द	
ङ- कौत्रीय शब्द	
ब- <u>विदेशी शब्द</u>	पृ० १५७
क- उर्दू शब्द	
ख- अंग्रेजी शब्द	
५- <u>वाक्य-योजना</u>	पृ० १६०
य- पूर्ण वाक्य	पृ० १६१
अ- साधारण वाक्य	
ब- मिश्र वाक्य	
स- संयुक्त वाक्य	
र- अपूर्ण वाक्य	पृ० १६३
अ- पूर्ण अध्याहार	
ब- अपूर्ण अध्याहार	
६- <u>मुहावरे और कहावतें</u>	पृ० १६५
७- <u>लोकाभाषा की प्रेषणीयता</u>	पृ० १८१

अध्याय-५ : भारतेन्दुशुक्लिन नाट्य-साहित्य में लोक-रंगमंच [पृ० १६५ से २७८ तक]

१- भारतेन्दुशुक्लिन रंगमंच की भूमिका - पृ० १६५

२- भारतेन्दुशुक्लिन नाटकों के सहायक

लोक-नाट्य रूप --- पृ० २०४

अ- रास लीला

ब- राम लीला

स- त्वांग और नौटंकी

३- भारतेन्दु-शुक्ल के विविध रंग रंगमंच - पृ० २१०

अ- बंगेज़ी रंगमंच

ब- बंगाली रंगमंच

स- पारसी रंगमंच

४- भारतेन्दुशुक्लिन रंगमंच का लोक-पक्ष - पृ० २३३

अ- काशी रंगमंच

ब- प्रयाग रंगमंच

स- कानपुर रंगमंच

द- बलिया रंगमंच

य- बिहार रंगमंच

र- मध्यप्रदेश रंगमंच

५- भारतेन्दुशुक्लिन नाट्य-साहित्य में लोक

रंगमंच के तत्व --- पृ० २३६

अ- भारतेन्दुशुक्ल के नाटककारों की लोकदृष्टि

ब- भारतेन्दुशुक्लिन रंगमंचीय लोक-उपकरण

ग- रंगशाला की व्यवस्था - पृ० २४२

घ- पात्रों का अभिनय -- पृ० २४६

अ- आंगिकाभिनय

ब- वाचिकाभिनय

स- आचार्याभिनय

द- सात्त्विकाभिनय

छ- ध्वनि संगीत एवं गीत

व्यवस्था -- पृ० २६३

अ- नाटकों में ध्वनि संयोजना

ब- नाटकों में संगीत संयोजना

स- नाटकों में लौकिक रूप

च- प्रकाश व्यवस्था -- पृ० २७६

अध्याय-६ : मूल्यांकन और स्थापनाएं --- --- [पृ० २८० से २८५]

परिशिष्ट - १ : भारतेन्दुसहित नाटकों की सूची [पृ० २८७ से २९५]

परिशिष्ट - २ : भारत कला-भवन, लाहौर की
विशिष्ट सामग्री --- --- [पृ० से १]

परिशिष्ट - ३ : पत्र-पत्रिकाएं --- --- [पृ० से १]

परिशिष्ट - ४ : सन्दर्भ ग्रंथ --- --- [पृ० से २]

अ- हिन्दी

ब- संस्कृत

स- अंग्रेजी

अध्याय - १

नारतेन्दु या एवं लोफतत्त्व

भारतेन्दु युग

भारतेन्दु युग की सीमा

आधुनिक हिन्दी साहित्य के अग्रदूत भारतेन्दु हरिश्चंद्र का जन्म सन् १८५५ में हुआ था और सन् १८८५ में वे इस कुंघरा पर अफायजी तीं की होड़कर स्वर्ग विह्वल हुए। इस प्रकार पैंतीस वर्ष की अल्पायु का ही वे उपभोग कर गये। किन्तु क्षुब्धता की अवधि में उन्होंने अपना सर्वस्व समर्पित करके भारतीय समाज तथा हिन्दी साहित्य के उन्नयन में जो योग प्रदान किया, वह अतुलनीय है। उनका व्यक्तित्व अत्यधिक सम्मोहन और अद्भुत था। यही कारण है कि वे स्वयं तथा अन्य अनेक जागरूक-जनों का सहयोग प्राप्त कर एक महान् साहित्यिक परम्परा की जन्म दे में सफल हुए। भारतेन्दु की महानता से प्रभावित होकर ही हिन्दी साहित्य समीक्षाओं ने उनके समकालीन साहित्य-रचनाकाल को 'भारतेन्दु-युग' के नाम से सम्बोधित किया है।

सन् १८६८ ई० में 'कवि बचन सुधा' मासिक पत्र व विद्यासुन्दर नाटकों के प्रकाशन द्वारा तथा सुप्रसिद्ध नाटक 'जानकीमंगल' में लक्ष्मण की भूमिका के अन्तिम के माध्यम से भारतेन्दु के ज्ञान एवं कार्य का प्रकाश क्रमशः विस्तीर्ण होने लगा। किन्तु, उन्होंने 'अत्यन्त बाल्यावस्था से कविता करनी आरम्भ की थी'।^१ अतएव भारतेन्दु की साहित्यिक-साधना की भूमिका में भारतेन्दु-युग का आरम्भ सन् १८६० ई० से माना जा सकता है। वैसे, भारतेन्दु-युग का आरम्भ प्रायः उनके जन्मकाल सन् १८५० ई० से माना जाता है। वृंत्ति भारतेन्दु के जन्मकाल ने ही नव्य राष्ट्रीय शक्तियों का उदय हो रहा था और उन्हीं वातावरण में कवि भारतेन्दु के मानसिक जगत को विविध दिशाएं सुलभ हुईं। जागरूक भारतेन्दु ने समस्त शक्तियों का समन्वय कर राष्ट्रीय चेतना को विकसित करने वाले कार्यों में तत्परता के साथ नेतृत्व किया। एतदर्थ, उनके जन्मकाल से सन् १८६८ ई० तक की

१- श्यामसुन्दर दास -- राधाकृष्ण ग्रंथावली, पृ० ३७४।

अवधि की भारतेन्दु-युग की पृष्ठभूमि स्वीकार कर सन् १८५० ई० से ही भारतेन्दु-युग का समारम्भ मानना सर्वथा उपयुक्त होगा। अध्ययन की सुविधा के लिए नीचे दी गयी अवधि स्वीकार करना उचित प्रतीत होता है।

सन् १८८५ ई० में भारतेन्दु के निधन के उपरान्त भी उनकी प्रतिपादित काव्य-शैली एवं मित्र-मण्डली की उनके प्रति निष्ठा लोगों को प्रभावित करती रही। यह प्रभाव सन् १९०० ई० तक निश्चित रूप से परिलक्षित होता है, क्योंकि सन् १९०१ ई० में 'सरस्वती' का प्रकाशन आरम्भ हो जाने के कारण हिन्दी साहित्य की विकास-आन्दोलन प्रवृत्ति में एक नया मोड़ आया। हाँ अवधि तक देश की परिस्थिति में भी प्रभावशाली परिवर्तन अवतरित हो गये थे। अतः सन् १९०० ई० की भारतेन्दु-युग की उत्तर-सीमा मानना उपयुक्त प्रतीत होता है।

भारतेन्दु युग का महत्व

भारतेन्दु-युग एक महान् ज्ञान्तिकारी युग था। भारतेन्दु की कार्य-तत्परता ही इस युग की दिव्य वेतना प्रदान करने में समर्थ हो सकी। उनके निधन पर शोक-प्रकाश करते हुए लाहौर के पत्र 'मित्र-विलास' के सम्पादक ने लिखा था -- 'प्यारे हरिश्चंद्र! जगत् में जहाँ और बड़े-बड़े तीर्थ हैं, वहाँ तुम्हीं एक तीर्थ-स्वरूप हो जाओगे। जगत् में जाकर और तीर्थ पीछे स्मरण होते हैं, तुम्हारे मन में स्थान कर लेता था। तीर्थों पर पुरोहित-घाटियाँ की प्रवृत्ति करने, अपनी नामवरी कमाने व दान-दक्षिणा देने की यात्री लोग जाते हैं, पर तेरे पाप सब मिटाने के लिए ही जाते थे, और किसी भिक्षा, प्रेम की भिक्षा, दर्शन की भिक्षा, सत्परामर्श की भिक्षा। तेरे दरवाजे से कभी कोई विमुख नहीं गया, तू संसार में इस लिए नहीं आया था कि अपना कुछ बना जावे, किन्तु इसलिए आया था कि बना-बनाया भी दूसरे को उर्प दे।' इस काल से स्पष्ट है कि भारतेन्दु ने प्रेम, त्याग तथा सेवा की जो त्रिवेणी अपने निवास से प्रवाहित की, वह समूचे भारत के साहित्य-प्रेमियों तथा समाज सुधारकों के अन्तःकरण की सिंचित करती रही। यह कहना

उपयुक्त होगा कि "उन दिनों के प्रायः सभी श्रेष्ठ साहित्यकार भारत-भू को रंजित
बनाकर श्रियाशील हुए।" १

भारतेन्दु-शुभा ना सर्वाधिक महत्त्व यहाँ है कि गद्य की विविध विधाओं की नींव यही शुभा में पड़ी । भारतेन्दु ने गद्य की समस्त विधाओं की ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया तथा साहित्य की सामर्थ्यवान बनाने का प्रयास किया । हिन्दी गद्य का जो वर्तमान स्वरूप है, उसका श्रोत भारतेन्दु-शुभा गद्य ही है । भारतेन्दु के पूर्व का साहित्य-रचना में परा की प्रधानता थी और गद्य की ओर लेखकों का आकर्षण नहीं हुआ था । भारतेन्दु के पूर्व जो गद्य-साहित्य उपलब्ध होता है, वह ब्रजभाषा एवं अनगढ़ शब्दावली से समन्वित है । भारतेन्दु ने तीव्रता के साथ यह अनुभव किया कि वाङ्मय परित्याग की अनिवार्य प्रदान करने के लिए परा अब समर्थ नहीं रह गया है । अतएव, उन्होंने गद्य की अपनी भावनाओं की अनिवार्य करने का माध्यम बनाया और उनके प्रेरणा ग्रहण कर अनेक लेखकों ने गद्य की स्वरूप को अंगीकार कर लिया ।

भारतेन्दु-शुभा की यह दूसरी विशेषता है कि लेखकों ने पुरातन एवं नवीन विचारों का शुभा-बोध के अनुकूल समन्वय किया है। भारतीय संस्कृति के महान् तत्त्वों के प्रेरक पक्षों को उन्होंने सदैव उभारा, साथ ही लघुचिंत्यों की कटु आलोचना भी की। भारतेन्दु और उनके सामर्थिक कवियों ने काव्य को भी एक नवीन भाव-भूमि एवं ऐसी प्रदान की। पूर्ववर्ती समस्त काव्यधाराओं को दिग्दर्शन इस शुभा के काव्य में प्रबुर रूप से परिलक्षित होता है। किन्तु, इस समय तक काव्य ऐतिहासिक के वातावरण से पर्याप्त सीमा तक मुक्त हो रहा था। डा० ज्योतिषराय त्रिवेदी के अनुसार -- "भारतेन्दु ने एक तरफ तो काव्य को फिर से भक्ति की मंडाकिनी में स्नान कराया और दूसरी तरफ उसे दरबारीयन से निकालकर लोकजीवन के सामने-सामने खड़ा कर दिया।"

१- डा० स्वामीप्रसाद त्रिवेदी -- हिन्दी साहित्य, पृ० ३६३ ।

२- " " " पृ० ३६७ ।

इस युग में देश में परिवर्तन की लहर नए विचारों का विस्तार कर रही थी और तत्कालीन लेखक-वर्ग इस चेतना से प्रभावित हो रहा था। वह अपनी विन्तन-प्रक्रिया के माध्यम से जन-जीवन के समक्ष युगानुकूल ज्ञान को प्रस्तुत कर ही रहा था, साथ ही जन-आशाओं की जानकारी प्राप्त करने के लिए भी सचेष्ट था। डा० रामवितास शर्मा के अनुसार, 'भारतेन्दु के जीवन में ही सङ्गीतकी [नाट्य] सम्बन्धी आन्दोलन आरम्भ हो गया था। स्वयं भारतेन्दु ने कविता में गद्य की भाषा के प्रयोग की आवश्यकता समझकर उसमें रचना-कार्य आरम्भ कर दिया था। उन्हें इस कार्य की प्रोत्साहना न मिली, इसलिए उन्होंने छीन डाल दी।'^१

भारतेन्दु-युग में नाटक लिखना एक मिशन बन गया था, किसी पढ़ने-लिखने में अल्प अभिरुचि रखने वाले लोग की नाटक लिखना अपना पवित्र-कार्यत्व समझने लगे थे। हिन्दी में नाट्य-रचना के लिए भारतेन्दु निम्ने पत्रिय रूप से चिन्तित थे, इसकी जानकारी 'कवि वक्ता सुधा' में प्रकाशित विज्ञापन से मालूम होती है। यद्यपि इस विज्ञापन की प्रेरणा से नाट्य-रचना नहीं हो सकी, तथापि नाट्य रचना के प्रति सज्जता का स्पष्ट आभास तो होता ही है। यह विज्ञापन इस प्रकार था --

'सब पर विदित हो कि फ्रांसीसी में जो युद्ध हुआ है और हो रहा है, उसका वर्णन जो नाटक की रीति से करेगा तो उसकी मेरि और ने चार को रूपए पारितोषिक मिलेगा परन्तु उसके ये नियम हैं -- [१] पुस्तक की रस अंति होगी और कृपा और रौद्र उसके अंग होंगे। [२] इसके पढ़ने से युद्ध का आधोपान्त सब वृत्तान्त जाना जाये कि युद्ध कब और क्यों आरम्भ हुआ और कब तक रहा और इसमें क्या-क्या हुआ ? [३] इसका फल यह हो कि पुस्तक के पढ़ने से मनुष्य पंथि और विग्रह इत्यादि नीति में युद्ध कर्म में चतुर हो जाये और दो त्री पृष्ठ से न्यून न हो।

नीचे लिखे लोग इसकी परीक्षा करेंगे कि पुस्तक यथोक्ति रीति से लगी है कि नहीं तब पारितोषिक मिलेगा। बाबू राजेन्द्रलाल मित्र, हुंवर लक्ष्मण सिंह,

बाबू रेश्मयी नारायण सिंह, बाबू नवीन चन्द्र राय, ठाकुर गिरप्रसाद सिंह ।
हरिश्चन्द्र * २४-१-१९७२ ।

भारतेन्दु-आ के लेखकों ने तत्कालीन समस्याओं का सत्य और सुगमता
लिया था । उनका यह दृष्टिकोण आज भी हमारे समक्ष एक महान् आव्हान उप-
स्थित करता है । डा० रामविलास शर्मा के शब्दों में, 'आज की समस्याओं की हम
की अपने ढंग से तुलना रहे है, परन्तु बहुत कुछ जांगठिल रूप में, विजय-नामना
जितनी बलवती है, उतनी निःस्वार्थ सेवा और त्याग की भावना नहीं । भारतेन्दु
आ की हिन्दी का शैशव-काल कहकर हम नहीं टाल सकते, उनकी जिन्दादिली की
थोड़ी सी प्रशंसा करने से उनका मूल्य आंका नहीं जा सकता ।' अतएव यह सत्य है
कि सम्यता के विकास के साथ ही जाधुनिता जीवन की समस्याएं जटिल हो गई हैं,
साथ ही आ और परिवेश के अनुसार परिवर्तित भी हुई हैं । किन्तु जन-समस्याओं
के समाधान में भारतेन्दु का कार्य आज भी प्रेरणा स्रोतों की विस्तीर्ण करने में सक्षम
है । जनमानस को उत्तेजित करने, आशा का सम्बल दिलाने में हम आ के लेखकों ने
सक्रिय प्रयास किया है । जनप्रिय साहित्य के माध्यम से औजों के अन्यायों, स्त्री-
चारिता तथा नागरिकों के मौलिक अधिकारों के दमन का लेखकों ने साक्ष के साथ
घोर विरोध किया ।^१ अब उन्होंने क्रान्तिकारी हथौड़े ने काम नहीं लिया, मुहु
उत्तरीक निपुण वैद्य की नाति नाजुक स्थिति की ठीक-ठीक जानकारी प्राप्त कर
उनकी रुचि के अनुसार उचित पथ्य की व्यवस्था की ।^२

भारतेन्दु आ के कुछ लेखकों में यद्यपि राजनैतिक की भावना विद्यमान थी,
तथापि देशभक्ति की उनमें अटूट भावना थी । 'राजनैतिक क्रान्ति उन्होंने अपने देश-
प्रेम का ज्वलन्त उदाहरण देकर साहित्य प्रेम के साथ ही प्रदर्शित की । अपने देश-
प्रेम का परिचय उन्होंने 'भारत दुर्दशा' लिखकर दिया । इसके अतिरिक्त उन्होंने
अपने अन्य ग्रन्थों में भी स्वदेश-प्रेम की फलक दी है । सत्य हरिश्चन्द्र का एक में उनकी

१- डा० रामविलास शर्मा -- भारतेन्दु-आ, पृ० १ ।

२- डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी -- हिन्दी साहित्य, पृ० ३६८ ।

राष्ट्रीय भावना हतनी स्वतन्त्र हो गयी है कि वे अपने को रोज भी नहीं मने और नाटक के अन्त में नरकवाच्य के रूप में उन्होंने राजा के मुख से यह कहा दिया --

जत जनन नाँ सज्जन दुखी मत होँहि हरिमद रति रहै ।

उपधर्माँ छूटै तत्त्व निज भारत गहै कर दुल बहै ।^१

राजमर्क अपने अस्तित्व के बचाव के लिए अनिवार्य थी । जब अंग्रेजों के अन्याय में तीव्रगति से वृद्धि होने लगी तो समस्त लेखकों ने विद्रोह की राह स्वीकार की । जिस बात को बड़े-बड़े नेता कहते हुए नय खाते थे, उसी बात की भारतेन्दु-युग के लेखकों ने लेखनी के माध्यम से उभारा । परिणामतः उन ताल में सुयोग्य नेताओं की उसी भावभूमि मिली, अंग्रेजों का सामना करने के लिए विचारों का अस्त मिला, जिसके बल पर देश में नहीं केतना लाने में वे सफल हो गये । भारतेन्दु एक दूरदर्शी व्यक्ति थे, जतः वे राजनैतिक आन्दोलन की बात पर सख्त रूप से मौन-ममक चुके थे । "लोगों की कहते हुए हम सुना करते हैं कि गांधी बाबा के पहिले लोग स्वराज का नाम लेते भी डरते थे, सरकार के विरुद्ध एक शब्द भी कहने का साहस न होता था, ऐसे लोगों को या तो साहित्य की जानकारी नहीं है या जानबूझकर वे फूँटा प्रचार करते हैं ।"^२

भारतेन्दु युग के साहित्य में जनता के मनोभावों, विचारों आदि की सच्ची अभिव्यक्ति मिली है । अतएव लेखकों के जनवादी दृष्टिकोण का समुचित विकास होने से इस युग की प्रांजलता एवं महत्ता में निश्चित रूप से अभिवृद्धि हुई ।

भारतेन्दु-युग और जन साहित्य

जन-साहित्य के प्रति प्रखर लगाव के कारण ही इस युग के लेखक जनता के अधिकाधिक समीप पहुँचने में समर्थ हो गये हैं और युग-धारा को एक नवनिर्मित

१- डा० रामकुमार वर्मा -- साहित्य चिंतन, पृ० ८८ ।

२- डा० रामबिंदु विलास शर्मा -- भारतेन्दु-युग, पृ० १५ ।

सुनिश्चित दिशा में प्रवृत्तान करने में सामर्थ्य अर्जित कर रहे हैं। भारतेन्दु बाबू
 ने बहुत-सा लोकाहित्य रचा था और लेख लिखकर बहनों को सा और प्रोत्सा-
 हित भी किया था। उसे लोकाहित्य के सभी आंगों की ओर देखते थे, किन्तु
 जिन शब्दों में उन्होंने ग्राम-साहित्य जवा लोकाहित्य की आवश्यकता को व्यक्त
 किया है, वे हमारे लिए आज भी रक्त मैनिफेस्टो के रूप में काम आ सकते हैं।^१

जनवाणी की लोकाहितियों में अत्यधिक प्रभावी ढंग से आबद्ध किया जा सकता
 है। दुर्भाग्य के कारण जब जन-जीवन अस्त-व्यस्त हो गया था, तो 'हिन्दी -
 प्रदीप' में होली-गीत के प्रवाह में प्रकाशित यह गीत जनता के मानसिक दुःखों
 की प्रतिबिम्बि प्रदान करने में कितना समर्थ है --

डफ बाज्याँ भरत निखारी को,
 केसर रंग गुलाल भूलि गयो,
 मोऊँ पूछत नहिं पिचकारी को ।
 बिन धन अन्न लोग सब व्याकुल,
 मई कठिन विपत्त नर-नारी को,
 चहुँ दिशि काज पर्यो भारत में,
 मय उपज्यो महामारी को ।

लोक काव्य के रूप कजली में भारत की व्यापक दरिद्रता, भूख और बेकारी
 की अनिव्यंजना अत्यधिक हृदयस्पर्शी रूप में हुई है।

“ घर में अनाज नहीं, भूख को साज नहीं, मोऊँ सिरताज नहीं,
 कम्हा पुराना - कैसे खेतों करी ।

सास का बिसास नहीं, ससुर की जास नहीं, पंगति को जास नहीं,
 पैयाँ जिलखान, कैसे खेतों करी ।

लोक में नियाब नहीं, पंच में हियाब नहीं, साधुता का भाज नहीं,
 बकित हैरान, -- कैसे खेतों करी ।

बाम्हन ऋतु में, मूढ़ राजपूत में, भुप यमदूत में,

राक्षस मित्रान -- जो सेनां खरी ।

क्या गेली, मया गेली, दुनिया ने दया गेली, खिलकत सब नयी मिली;

स्वारथ भूता न -- जो सेनां खरी ।

धन कहूं रहा नाहीं, अन्न हूं भुराज नाहीं लेतिया ने कीं,

नहू जागे न ठिकान -- जो सेनां खरी ।^१

भारतेन्दु कृत 'अंधेर नगरी' के गीत भी जनगणित शैली का प्रतिनिधित्व करते हैं --

चुरन साहब लोग जो साता^२

सारा हिन्द हजक कर जाता ।

चुरन मुत्तिल वाले खाते,

सब कानून खम कर जाते ।

ले चुरन का डेर, बेचा टके नेर ।^३

इस प्रकार स्पष्ट है कि भावभूमि की दृष्टि से भारतेन्दु युग के लेखक जन-साहित्य से पूर्णतः सम्बद्ध रहे हैं । अपनी विचारधारा को प्रस्तुत करने में जनभाषा को अपनाकर लेखकों ने जनोपयोगी साहित्य के स्वरूप को गौरवान्वित किया है । तुलसी और कबीर की भांति भारतेन्दु ने जनभाषा का आग्रहपूर्ण प्रयोग किया है । अतएव 'भारतेन्दु युग की सबसे बड़ी खूबी यह है कि वह जनता का साहित्य है । उनकी भाषा न दरबारों की है न सरकारी अफसरों और कचहरी के मुहरिरी की । वह जनता की भाषा है, जिसमें अत्यधिक ग्राम-सम्पर्क के चिह्न मिले हों, नागरिक बनाव-सिंघार और टिपटाय का अभाव है । उस पर अवधी और ब्रजभाषा की गहरी छाप है ।'^३ भारतेन्दु ने पेंडल, बेलगाड़ी, रेलगाड़ी आदि पर प्रमण करके

१- हिन्दी प्रदीप -- अगस्त सन् १८८८ ई०, पृ० ११-१२ ।

२- रुद्र आश्रित्य -- भारतेन्दु ग्रंथावली, पृ० १७० ।

३- डा० रामविलास शर्मा -- भारतेन्दु युग, पृ० १५३ ।

देश की वास्तविक स्थिति एवं संस्कृति का अवलोकन किया था। अतएव उनकी भाषा दार्शनिक भाषा की विशिष्टताओं को ग्रहण करने सबसे ही मज्जी है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उचित ही लिखा है, "कि भाषा का निरारा हुआ शिष्ट सामान्य रूप भारतेन्दु की कला के साथ ही प्रकट हुआ।"^१

भाषा के साथ ही शब्दों की दृष्टि से भी भारतेन्दु का साहित्य जन-साहित्य है। सामयिक कवियों ने जनसमूह की समस्याओं को भाव्य तारा अभिव्यंजना प्रदान की है, तभी तो जनचेतना अंग्रेजी सत्ता के प्रति व्यापक रूप से विरोधी हो गयी थी। इस युग में प्रबन्ध काव्य की सर्वना नहीं हो गयी है, जो कुछ है वह मुक्तक रूप में ही है। अतएव दोहा, चौपाई, रीता, कवि, कवैया आदि विर-परिचित लोक शब्दों में काव्य-रचना की गयी है। इनके अतिरिक्त बालका, ठुमरी, गजल, कजली आदि लोक शब्द रूपों को अपनाकर कवियों ने अपनी प्रतिभा सम्पन्नता का परिचय दिया है।

तत्कालीन लेखकों ने विदेशी वस्तुओं के प्रयोग का विरोध किया था। इस विरोध के स्वरूप को प्रस्तुत एवं इसी प्रकार जो लोक शब्दों में प्रभावी रूप में व्यंजित किया गया है। --

भारतीय मत्तल बिना, चलत कछु नहिं काम ।
परदेशी जुलहान के, मानहुं भये गुलाम ॥
बस्त्र, कांच, कागज, कलम, चित्र खिलौने आदि ।
आवत सग परदेश सौं, नितहिं जहाजनि लादि ॥
हत की रुई, सींग अरु बरमहिं, नित जै जाय ।
ताहि स्वच्छ करि, वस्तु बहु भेजत हतहिं जनाय ॥
तिनहिं को हम पाए के, साजत निज आमीद ।
तिन बिन, छिन तुन, सकल दुख, स्वाद विनोद प्रमोद ॥

१- रामचन्द्र शुक्ल -- हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ४४६ ।

एतदर्थ निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि भाव, भाषा एवं शब्द प्रयोग की दृष्टि से भारतेन्दु युग का साहित्य जन-साहित्य की धरोहर में अग्रणी है। भारतेन्दु ने सन् १८७६ ई० के मई मास के 'कवि ववन सुधा' में एक विज्ञप्ति प्रकाशित की थी, जो भारतेन्दुयुग की जनवादी साहित्य के सम्बन्धन में अभिलेख के लिए पर्याप्त है। "भारतवर्ष की उन्नति के जो बनेर उपाय महात्मागण आजकल सोच रहे हैं, उनमें एक और उपाय भी होने की आवश्यकता है। इन विषय के बड़े-बड़े लेख और काव्य प्रकाश होते हैं, किंतु वे जनसाधारण की दृष्टिगोचर नहीं होते। इससे हेतु मैंने यह सोचा है कि जातीय-संगीत की शीटी-शीटी पुस्तकें बनें और वे सारे देश, गांव-गांव में, साधारण लोगों में प्रचार की जाएं। यह सब लोग जानते हैं कि जो बात साधारण लोगों में फैलेगी उसी का प्रचार सार्वदेशिक होगा और यह भी विदित है कि जितना शीघ्र ग्रामगीत फैलते हैं और जितना काव्य की संगीत द्वारा सुनकर वि. पर प्रभाव होता है, उतना साधारण शिक्षा ने नहीं होता। इससे साधारण लोगों के विचार पर भी इन बातों का अंकुर जमाने की इन प्रकार वे जो संगीत फैलाया जाय तो बहुत कुछ संस्कार बदल जाने की आशा है, इसी हेतु मेरी इच्छा है कि मैं ऐसे गीतों का संग्रह करूं और उनको शीटी-शीटी पुस्तक में मुद्रित करूं। इस विषय में मैं, जिनको कुछ भी रचना शक्ति है, उनसे सहायता बड़ा चाहता हूं कि वे लोग भी इस विषय पर गीत व शब्द बनाकर स्वतंत्र प्रकाश करें या मेरे पास भेज दें, मैं उनको प्रकाश करूंगा और सब लोग अपनी-अपनी मंडली में गाने वालों की यह पुस्तक दें।"

जन-साहित्य और लोकतत्व

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि भारतेन्दु-युग का जनवादी साहित्यिक परम्परा से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। जनसाहित्य लोकतत्वा से शक्ति ग्रहण कर एवं संचित करता है, अतः यह कहना अनुचित न होगा कि लोकतत्व ही जनसाहित्य की आधार प्रदान करते हैं। चूंकि जनवादी परम्परा का मूल लोकतत्वा में विद्यमान रहता है अतः लोकतत्वा और लोकसाहित्य के विविध रूपों का विवेक प्रासंगिक होगा।

‘जन’ शब्द का अर्थ साधारण जनता के अर्थ में प्रयुक्त होता है और ‘लोक’ का भी अर्थ साधारण जनसमूह है। इस प्रकार दोनों समानार्थी शब्द हैं। डा० सत्येन्द्र ने ‘लोक’ की परिभाषा इस प्रकार की है, ‘लोक’ मनुष्य समाज का वह वर्ग है, जो आभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पाण्डित्य की चेतना और पाण्डित्य के अहंकार से शून्य है और जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है।^१ महर्षि व्यास ने महाभारत में लोक का प्रयोग साधारण जनता के ही अर्थ में किया है --

अज्ञान तिमिरांधस्य लोकस्य तु विनेष्टतः ।
ज्ञानांजन शलाभाभिर्नैत्रोन्मीलन कारम् ॥^२

इसी प्रकार भावतु गीता में भी लोक शब्द की साधारण जनता के काय-कलापों के संदर्भ में प्रयुक्त किया गया है --

कर्मणोव हि संसिद्धिस्त्यक्ता जनकादयः ।
लोकगुहमेवापि तं पश्यन्कुर्महीति ॥^३

‘जन’ शब्द का प्रयोग भी साधारण जनता के लिए अनेक स्थलों पर किया गया है। ऋग्वेद में भी स्पष्ट रूप से यही प्रस्तुत है --

या इमे दौदसी उमे अहमिदंभुष्टवं ।
विरवामित्रस्य रक्षाति ब्रह्मेदं भारतं जनं ॥^४

‘लोक’ और ‘जन’ शब्द के प्रयुक्त अर्थों में समानता परिलक्षित होते हुए भी दोनों में सूक्ष्म अनेक अंतर हैं। सुविधा के लिए साहित्य की आदिम साहित्य, लोक साहित्य एवं जन साहित्य के वर्गों में विभक्त किया गया है जा सकता है।

१- डा० धीरेन्द्र वर्मा -- हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ६८५ ।

२- आदि पर्व महाभारत, १८४ ।

३- गीता, ३।२० ।

४- ऋग्वेद, ३।५३।१२ ।

आदिम साहित्य के युग में जनसं मानवजाति में एक-रूपता थी, क्योंकि विकास-प्रक्रिया में अभी एक-ता जीवन-यापन कर रहे थे। उस समय शिष्ट और अशिष्ट की भावना का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था। आदि मानव जाति में से जब एक वर्ग मम्यता के आतंक को वर्णन करता हुआ पुरातनता के निर्माण को उतार कर ऊर्ध्वगामी हुआ तो अपनी मूलन ता को महत्ता प्रदान करने के लिए अपने अपने को शिष्ट तथा पूर्वाग्रह से युक्त लोगों को अशिष्ट जनसमूह की संज्ञा से अभिविष्ट किया। इस समय जनसमूह ने अपनी ज्ञानराशि को अभिवृद्ध किया और वैदिक परम्पराओं को विकसित किया। किन्तु वह जेल वाङ्मय रूप से ही विकसित अथवा शिष्ट ही पाया था। आंतरिक रूप से वह पूर्व जनों से किसी न किसी रूप में सम्बद्ध रहा है। अशिष्ट जन समुदाय अपनी आदिम परम्पराओं से ही पूर्णतः सम्बन्धित रहा और उसी में प्रेम, उत्साह तथा आनन्द का जीवन्तता के साथ अनुभव करता रहा। उसे किसी प्रकार की कृत्रिमता का अन्वेषण नहीं मिला।

इस प्रकार जब समाज में लोक-परिपाटी और वेद-परिपाटी का विभाजन हो गया तो जहाँ शास्त्रों की रचना हुई, वहीं लोक जीवन के विकास के साथ लोक-साहित्य की अभिवृद्धि हुई। लोकसाहित्य में लोकतत्त्वों को पूर्णरूपेण प्रतिष्ठा मिली है। इनकी लोकतत्त्वों का आधार ग्रहण करके व्यक्ति विशेष ने जब अपने युग को प्रेरित करने के लिए साहित्य-सर्जना की तो वह साहित्य जन-साहित्य के रूप में उत्पन्न हुआ। अतएव जनसाहित्य किसी विशेष व्यक्ति द्वारा जनता के लिए लिखित लिखा गया साहित्य है किन्तु लोक-साहित्य जनता के लिए जनता द्वारा लिखा गया साहित्य है, जिससे व्यक्तिगत-बीध के स्थान पर सामाजिक-बीध प्रमुखता ग्रहण कर लेता है। इस साहित्य का परम्परित मूल्य इतना सशक्त और व्यापक होता है कि प्रस्तुत साहित्य किन-किन लोगों द्वारा रचा गया है, इसकी जानकारी प्राप्त करना दुर्लभ कार्य ही रहता है।

लोक-साहित्य की परम्परा मौखिक होती है। समय-समय पर उसका वाङ्मय रूप परिवर्धित भी होता रहता है किन्तु आन्तरिक रूप सदैव एक-ता रहता है। जन-साहित्य की परंपरा लिखित होती है, उसके वाङ्मय रूप में परिवर्तन नहीं लाया जा सकता, क्योंकि उसके साथ व्यक्ति विशेष का नाम सम्बद्ध हो जाता है।

वास्तव में लोक-साहित्य के उपरान्त ही स्थिति जन-साहित्य है। भारवेन्दु युगिन साहित्य इस विचारणा के अनुसार जनवादी साहित्य है। वृत्ति जनवादी साहित्य लोकतत्त्वों से ही प्रेरणा ग्रहण करता है। अतएव लोकतत्त्वों के प्रयोग की दृष्टि से इस युग के साहित्य का अध्ययन अपना महत्व रखता है।

लोकतत्त्व का स्वरूप

लोकतत्त्व का तात्पर्य लोकवागी के विभिन्न तत्वों से है। लोकवागी के विभिन्न तत्वों का निरूपण तभी सम्भव है, जबकि लोक का अर्थ, विस्तार एवं उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का स्पष्टीकरण हो जाए। अतएव सर्वप्रथम लोक शब्द से सम्बन्धित भारतीय तथा पार्श्वात्य धारणा का निरूपण उचित होगा।

भारतीय मत

भारतीय मत के निरूपण के लिए वेदों में प्रस्तुत विचारणा से भारवेन्दु तक की विचारणा का बोध यह जानने के लिए आवश्यक है कि विविध प्रांगों में लोक शब्द किन-किन अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। तदुक्तिं तदुपरान्त लोकवागी शास्त्र के विद्वानों द्वारा प्रस्तुत परिभाषा पर ही ध्यान देना अपेक्षित होगा।

भारतीय साहित्य में लोक शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। वैयाकरणों के एक वर्ग ने लोक की व्युत्पत्ति लोकदर्शन धातु में प्रत्यय लाकार की है, जिसका अर्थ देखने वाला होता है। वैयाकरणों का एक दूसरा वर्ग रुक या रोक [वमकना] से लोक के मूल रूप की निरूपित करता है।

ऋग्वेद पुरुषसूक्त में लोक शब्द जीव एवं स्थान दोनों के लिए प्रयुक्त हुआ है।^१ पाणिनी कृत अष्टाध्यायी, पतंजलि कृत महाभाष्य तथा मुनि भरत कृत नाट्यशास्त्र में लोक को शास्त्रेतर, वेदेतर तथा सामान्य जन के गन्धर्व में प्रयोग किया गया है। पाणिनी तथा पतंजलि ने लोक शब्दों की व्याख्या करते हुए स्पष्ट किया है कि वेद तथा लोक में प्रयुक्त हुए इस शब्द के रूप में जिस स्तर पर अन्तर हुआ है। अतएव पाणिनी काल में वेद-परिपाटी एवं लोक-परिपाटी का

रूप सुसंरित हो गया था । गीता में प्रयुक्त 'लोक संग्रह' शब्द का अर्थ भी साधारण जनसमूह के आचरण तथा आदर्श से ही है । इस प्रकार गीता में भी वेद के अतिरिक्त लोक की उच्च स्वीकार की गयी है । भरतमुनि ने कहा है --

यानि सास्त्राणि ये धर्मा यानि शिल्पानि वा क्रिया ।

लोक धर्मप्रवृत्तानि तानि नार्थं प्रकीर्ति कम् ॥^१

इस प्रकार लोक-प्रवृत्ति ही नाटक की सफलता की मुख्य त्नीटी है । यहाँ भी लोक का अर्थ साधारण जनसमूह से ही है ।

प्राकृत तथा अपभ्रंश में प्रयुक्त 'लोक' जनता तथा 'लोक अप्पनाय' शब्द साधारण जनसमूह के कार्य-व्यापार की ओर निर्देश करते हैं ।

संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश के अतिरिक्त हिन्दी में भी लोकशब्द का प्रयोग विविध प्रसंगों में हुआ है । 'हिन्दी संत साहित्य में कहीं तो लोक का प्रयोग मृत्यु लोक तथा पृथ्वी के अन्दर में है, कहीं लोक का अर्थ सारे संसार के अर्थ में भी व्यापक रूप से किया गया है । 'नाव मेरी डूबी रे नारें, ताते चढ़ी लोक बड़ा' ।^२ कहीं लोक शब्द वेद के प्रतिकूल लोकपरंपरा का अर्थ देता है । इस अर्थ में लोक शब्द का प्रयोग संत साहित्य में बहुत बार हुआ है ।^३ कबीर लोक को लौकिक-वैदिक परंपरा में बहता हुआ मानते हैं और मतगुरु को उद्धारकर्ता बताते हैं --

पीछे लाग़ा जाई था, लोक वेद के साथ ।

आगे से सतगुरु मिला, दीपक देया हाथि ॥

औरकानेक स्थलों पर स्पष्टरूप से जनसाधारण तथा लोकसमाज के अर्थ में ही लोक का प्रयोग किया गया है । लोक बोल उक्ताई ही । संतों के लोकलाज, लोका-बार आदि शब्द का सम्बन्ध जनसामान्य से ही है ।

सुलसी साहित्य में लोक शब्द 'स्थान' अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है । 'लोक

१- नागरी पत्रिका -- फरवरी, सन् १९७३ ई० ।

२- बीमप्रकाश शर्मा -- हिन्दी संत साहित्य की लौकिक पृष्ठभूमि, पृ० ६-७ ।

विशोक बनाई बहार ।^१ लोक शब्द का प्रयोग पृथ्वीलोक के अर्थ में भी हुआ है ।^२
 स्थानवाची प्रयोगों के अतिरिक्त लोक का प्रयोग वेद-परिपाटी के विनोम लोक-
 परिपाटी के सन्दर्भ में अनेक बार हुआ है । तुलसी योग्य स्वामी की रीति बजाते
 हुए रहते हैं । --

लोकहुं वेद सुसाहि बरिती ।

विनय सुनत पखिवानत प्रीती ।^३

इसी प्रकार वेद की तुलना में लोक अनेक बार प्रयुक्त हुआ है ।^४ बुरदान ने
 भी लोक शब्द वेद से निम्न जनसाधारण में प्रचलित अर्थ में लिया है । 'नंदनंदन के
 मेह-मेह जिन लोक लोक लीपी ।'

भारतेन्दुशर्मा साहित्य में लोक शब्द अनेक बार प्रयुक्त हुआ है । भारतेन्दु ने
 लोकलज,^५ लोक मयादा,^६ लोक रीति^७ का अनन्त बार प्रयोग किया है, जिसका
 अर्थ सामान्य जनसमूह की मयादा और रीति से ही है । भारतेन्दु के अतिरिक्त
 समस्त साहित्यकारों ने 'लोक' की सामान्य जनसमूह के अर्थ में प्रयुक्त किया है --

शुद्ध लसना लोक उद्धरन सामर्थ

गां पिताधीश कृत अंगिकारी ।

वल्लभी कृत मनुज अंकुत जनन

पैघरन मयादि बहु करुणधारी ॥^८

१- तुलसीदास -- रामचरितमानस, १।५।२।

२- // -- // १।१६।२

३- // -- // १।२७।३

४- // -- // १।२।३

५- ब्रजरत्नदास -- भारतेन्दु ग्रंथावली -- पृ० ४६, ६५, ७०, ३७३, ३७४, २०४,
 १५२, १५६, १८५, २०६ ।

६- ब्रजरत्नदास -- भारतेन्दु ग्रंथावली, पृ० ६६ ।

७- // // // पृ० १७२, ४८१ ।

८- // // // पृ० ७१४ ।

तुमहिं असंख्य लोकसंजन तुमहीं अधिनायक ।^१

अतएव विभिन्न अर्थों में लोक शब्द की भारतीय ग्रंथों में अनिव्याप्ति होने हुए यह निश्चित है कि लोक का अर्थ जनसाधारण के कार्य-व्यापार से है । यह जनसमूह विशाल देश के प्रत्येक भाग में होता है और परम्परा-प्रथित जीवन के आयामों से सम्बन्धित रहता है ।

“लोक” शब्द के उपरोक्त प्रयुक्त अर्थ के विवेचन के उपरान्त अब भारतीय मनीषियों की परिभाषाओं का विश्लेषण अपेक्षित है ।

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार -- “ऐसा मान लिया जा सकता है कि जो चीजें लोकविवेक लोकचिन्ता से सीधे उत्पन्न होकर जनसाधारण की जानबोझित, चालित और प्रभावित करती हैं, वे ही लोकसाहित्य, लोकशिल्प, लोकनाट्य, लोककथानक आदि नामों से पुकारी जा सकती हैं । लोकचिन्ता से तात्पर्य उन जनता के चिन्तन से है, जो परम्परा प्रथित और बौद्धिक विवेकापरक शास्त्रों और उन पर की गयी टीका-टिप्पणी के साहित्य से अपरिचित होता है ।”^२

डा० सत्येन्द्र ने स्पष्ट रूप से कहा है -- “लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो आनिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पाण्डित्य के अङ्कार से शून्य है और जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित है । ऐसे लोक की अभिव्यक्ति में जो तत्त्व मिलते हैं, वे लोकतत्त्व कहलाते हैं ।”^३

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने लोक की गरिमा को प्रतिष्ठित करते हुए लिखा है -- “लोक का अध्ययन बुद्धि का कुतूहल नहीं है । इसे बस एक और नया शास्त्र कहकर टाला नहीं जा सकता । लोक-सम्पर्क के बिना अन्य सब शास्त्र अधूरे हैं । लोक लोक का अमृत निष्पन्द जिस शास्त्र में नहीं मिला, वह फिलाना भी पण्डितान्ता ही निष्प्राण रहता है । जो ज्ञान लोकशिल्प के लिए नहीं वह अधूरा है, वह मानवी चिन्तन का बूझा फल है ।”^४ अतएव शिष्ट साहित्य के निर्माण में लोक तत्वों

१- ब्रजरत्नदास -- प्रेमधन-सर्वस्व, पृ० २३६ ।

२- डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी -- विचार और चिन्तक, पृ० २०६ ।

३- डा० श्रीरेन्द्र वर्मा -- हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ६८५ ।

४- सम्पन्न पत्रिका -- लोक संस्कृति अंक --, पृ० ६५ ।

का प्रभाव रहता है और जितने प्रभावी रूप में लोकोत्तत्त्व होगा, उतना ही साहित्य का प्रभाव-क्षेत्र व्यापक तथा मर्मस्पर्शी हो जाता है।

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने लोक और शास्त्र के अन्तर को रेखांकित करते हुए कहा है -- "लोक जीवन में स्वच्छन्दता है, पर शास्त्रबद्ध जीवन में स्वच्छन्दता नहीं है। स्वच्छन्द शास्त्र में तो नहीं मानता शास्त्र को मानता है। 'शास्त्र' में 'शास्त्र' से आकार अधिक है। शक्ति से शक्ति सीमा अधिक है, व्याप्ति अधिक है, अर्थात् उसे देखकर सोचकर कर्म में प्रवृत्त होना पड़ता है। उसे नीति ने काम लेना पड़ता है, अपने हित का ध्यान रखना पड़ता है। 'हित शान्ति' शास्त्रकृत्य' कहलाता है। पर चाहे 'हित अनहित पशु पंछि जाना' ठीक ही और यह भी ठीक ही क्रिमानस तन गुन ज्ञान निधाना' है किन्तु लोकोत्त पर बड़ा हित-अनहित पर उतना ध्यान नहीं देता, जितना शास्त्र तट पर बड़ा देता है।" ^१ अतएव लोकोत्तत्व जीवनव्यापी है और अपार जनसमूह की प्रकृति का विशिष्ट अंग है।

डा० रवीन्द्र 'भ्रमर' ने 'लोक' शब्द की सीमा रेखा निर्धारित करने के लिए लिखा है -- "साहित्य अथवा संस्कृति के एक विशिष्ट भेद की ओर इंगित करने वाले एक आधुनिक विशेषण के रूप में 'लोक' शब्द का अर्थ ग्राम्य या जनपदीय समझा जाता है। किन्तु इस दृष्टि से केवल गाँवों में ही नहीं बरन् नगरों, जंगलों, पहाड़ों और टापुओं में बसा हुआ वह मानव-समाज जो अपने परम्परा-प्रयुक्त रीति-रिवाजों और आदिम विश्वासों के प्रति आस्थाशील होने के कारण अशिक्षित एवं अल्पसंख्यक कहा जाता है, लोक का प्रतिनिधित्व करता है।" ^२

डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी ने भाषा-प्रयोग की विधि के आधार पर लोक-साहित्य की प्रकृति का विश्लेषण करते हुए लिखा है -- "यदि हम यह विचार करें कि लोक-साहित्य और शिष्ट-साहित्य का विभाजक आधार क्या है, तो पता चलेगा कि अभिव्यक्ति के इन दोनों प्रकारों का प्रमुख अन्तर भाषा प्रयोग की

१- बीणा -- ग्राम संस्कृति बंध -- फरवरी-मार्च १९७१, पृ० २१।

२- डा० रवीन्द्र 'भ्रमर' -- हिन्दी भाषा साहित्य में लोकोत्तत्व, पृ० ३।

विभिन्नता है। लोकसाहित्य में सामान्यतः भाषा का गुणनात्मक [स्त्रियेष्टि] प्रयोग नहीं होता, लोक कवि [या गायक] भावविर्वा का प्रयोग नहीं कर पाता। लोकगीत में जो अधिकतर संगीत के [स्त्रियेष्टि] सहयोग में वैदिक बोधान्त की भाषा रहती है।¹

पार्श्ववाच्य मत

लोक वाच्य के लिए अंग्रेजी पर्याय 'फोल्क्लोर' [Folklore] प्रयुक्त किया जाता है। डॉ० रामस्वरूप बतुर्वेदी ने 'फोल्क्लोर' को ही मान्यता प्रदान की थी। उन्होंने 'फोल्क्लोर' की व्याख्या 'वर्ग्य जातियों में मिलने वाले जांसूक्त वस्तुओं की प्रथाओं एवं रीति-रिवाजों के परम्परागत ज्ञान के रूप में की थी'।² भारतीय भाषाओं के समीक्षकों ने जब भारतीय साहित्य का लोकत्व की दृष्टि से अनुशीलन किया तो 'फोल्' के लिए लोक पर्यायवाची की उपयुक्त माना है। 'फोल्' शब्द ऐंग्लो नैश्चन शब्द 'Folk' का विकसित रूप है। जर्मन में यह 'Volk' रूप में उच्चरित किया जाता है। डॉ० बर्नर ने फोल्क शब्द की प्रयोजना करते हुए लिखा है कि 'फोल्क' से कृत्रिमता से दूर रहने वाली परि जाति का बोध होता है या यदि क्षणिक विलुप्त ज्यों लिया जाय तो तुर्गस्तुन राष्ट्र के भी सभी लोग इस नाम से पुकारे जा सकते हैं। पर 'फोल्क्लोर' के सम्बन्ध में फोल्क का ज्ञा होता है -- 'जांसूक्त लोग'। द्वारा शब्द 'लोर' ऐंग्लो नैश्चन 'Lar' से निःसृत है और इसका ज्ञा है, वह जो सीखा जाए। इस प्रकार 'फोल्क्लोर' का शाब्दिक ज्ञा 'जांसूक्त लोगों की ज्ञानार्जन सामग्री' प्रतिपादित होता है।

टी० शिपले ने 'फोल्क्लोर' के अन्तर्गत सभी प्रकार के लोक गान, लोक कथा, जयविश्वास, स्थानीय गायकों, लोकनृत्य, पहेलियाँ आदि को समाविष्ट किया है। 'फोल्क्लोर' के ज्ञा का विज्ञान जे० एल० मिश्र की परिभाषा में

१- डॉ० रामस्वरूप बतुर्वेदी -- भाषा और संवेदना, पृ० ३८।

२- जनसांख्यिकीय विज्ञान [फोल्क्लोर], भाग १०।

३- टी० शिपले -- डिक्शनरी ऑफ़ फोल्क लोरे [संस्करण १९२२], पृ० १६०।

उल्लेखनीय है -- ऐसे सभी प्राचीन विश्वासाँ, प्रथाओं और परम्पराओं का सम्पूर्ण योग, जो सम्य सम्राज के अल्प-सिद्धिगत लोगों के बीच आज तक प्रचलित है, फोल्कलोर फोल्कलोर है। इसकी परिधि में परियों की कहानियाँ, लोकानुष्ठानियाँ, पुराण-गाथाएँ, अन्धविश्वास, उत्पन्न-रिक्तियाँ, परम्परागत खेल या मनोरंजन बौद्धिक, प्रचलित कहावतें, कलाकौशल, लोककृत्य और ऐसी अन्य सभी बातें सम्मिलित की जा सकती हैं।^१

श्रीमती शार्लेट गोफिया बर्न ने अपनी 'द हैंड बुक आफ फोल्कलोर' में परिभाषा को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया गया है। -- 'यह एक जातिबोधक उच्चरित-क्रिया-वाक्य है -- डाक-बोर्ड-ने-पन्ने-क-सब शब्द की भाँति प्रतिष्ठित हो गया है, जिसके अन्तर्गत पिछड़ी जातियों में प्रचलित अज्ञात अपेक्षाकृत समुन्नत जातियों के असंस्कृत समुदायों में अवशिष्ट विश्वास, रीति-रिवाज, कहानियाँ, गीत तथा कहावतें आती हैं। प्रकृति के चेतन तथा जड़-जगत के संबंध में, भूत-प्रेतों की दुनिया तथा उसके साथ मनुष्यों के संबंधों के विषय में, जादू-टोना, सम्पादन, वशीकरण, ताबीज, भाग्य, शत्रु, राग तथा मृत्यु के संबंध में आदिम तथा अमध्य विश्वास इसके क्षेत्र में आते हैं। और भी, इसमें विवाह, उत्तराधिकार, बाल्य-काल तथा प्रौढ़ जीवन के रीति-रिवाज तथा अनुष्ठान और त्यौहार, युद्ध-आलेख, मत्स्य-व्यवसाय, पशुपालन आदि विषयों के रीति-रिवाज इसमें आते हैं तथा धर्म-गाथाएँ, अवदान [लीजेंड], लोक कहानियाँ, साके [बैलड], गीत, किंवदन्तियाँ, पहेलियाँ तथा लीरियाँ भी इसके विषय हैं।'^२

बर्न महोदय ने 'हैंडबुक आफ फोल्कलोर' में फोल्कलोर के अन्तर्गत आने वाले विषयों का निर्देश करते हुए उसके प्रभाव-क्षेत्र का स्पष्टीकरण किया है। उनकी व्याख्या के अनुसार फोल्कलोर के विषयों को तीन समूहों में विभक्त किया जा सकता है।

[१] वे विश्वास और आचरण-अभ्यास, जो संबंध रखते हैं -- पृथ्वी और

१- स्टैण्डर्ड डिक्शनरी आफ फोल्कलोर, भाग-१ [न्यूयार्क १९४६], पृ० ४०१।

२- डा० सत्येन्द्र -- ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन, पृ० ४।

जाना है, स- वनस्पति जात है, ग- पशुजात है, घ-मानव है, ङ-मनुष्य निर्मित वस्तुओं है, च-जात्मा तथा दूसरे जीवन है, छ-परामातमी व्यक्तियों है जैसे देव-ताजों, देवियों तथा ऐसे ही अन्य हैं, ज-शुद्धी-अशुद्धी, नविष्यता गिर्या, अज्ञान-वाणियों है, क- जादू-टोनों है, -रोगों है ।

[२] रीति-रिवाज -- व-सामाजिक तथा राजनैतिक संस्थाएं, व-व्यक्तिगत जीवन के उद्गार, स-व्यवसाय-घंटे तथा उद्योग, द-तिथियां, व्रत तथा पर्व, य-सैलुद्ध एवं मनोरंजन ।

[३] कथाएं, गीत, कहावतें -- य-कहानियां, अ-जो सच्ची मान ली जाती हैं वा- जो मनोरंजन के लिए होती हैं, र- गीत गीत प्रकार के, त- कहावतें तथा पहेलियां, व-पद्यबद्ध कहावतें तथा स्थानीय कहावतें ।^१

फोल्क्लोर की पारम्परिक जगह में व्यापकता के कारण इसका सीधा सम्बन्ध मनोविज्ञान से स्थापित किया गया है । इसके द्वारा रीति-रिवाज का पारम्परिक अध्ययन गम्भीरता के साथ किया गया है ।^२

भारतीय और पारम्परिक विचारों की 'लोक' की परिभाषाओं में पर्याप्त समानता है । भारतीय विद्वानों ने लोकशब्द के अन्तर्गत जो परिभाषा व्यक्त की

१- डा० सत्येन्द्र -- लोक साहित्य विज्ञान, पृ० ३३-३४ ।

२- [३] " The business of this society (means Folklore society) is to seek to know the folk in and through their lore so that what is outwardly perceived as a body of custom may at the same time be inwardly apprehended as a phase of mind."

- R.R. Merit - (Psychology and Folklore Page 12)

[३] " Folk Psychology-psychology of peoples applied to the psychological study of the belief, customs, convention etc. of peoples, especially primitive, inclusive of comparative study."

a A Dictionary of Psychology by James Drever Page 98.

है, वही पारवात्य विचारों ने फोड़ [folk] की व्याख्या के अन्तर्गत प्रस्तुत की हैं। अतः, लोक की भारतीय तथा पारवात्य विचारणाओं में मतभेद है। लोकी की व्याख्या का केन्द्र-बिन्दु आदिम विश्वास एवं रिवाज-परम्परा है।

नाटक का लोक जन से सीधा जोर गहरा सम्पर्क है। नाट्य-प्रस्तुति शिक्षाओं की ओर का परिधिगत हो कर मानवजन एवं मनोरंजन उत्पन्न करती है। अतएव यह विधा एक बड़े व्यापार अन्तर्गत ही सम्बन्ध स्थापित करने में सक्षम है। भारतेन्दु-रूप के साहित्य में आलोचक लोकतत्त्व का चर्चा करके कहते हैं कि प्रभावी रूप में व्यंजित हुआ है। इस रूप के साहित्यकार आलोचक के व्यापक रूप को लेकर जनता के भावों एवं भावों का परिष्कार करते उसे नव्य चेतना से पुष्ट करना चाहते थे। अतएव नाटकों की उत्पत्ति एवं प्रस्तुति की इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपनाई गई है।

लोकतत्त्व के विविध रूप

भारतेन्दु रूप की लोकप्रियता में लोकतत्त्वों का समावेश ही विशिष्ट स्थान रखता है। अतएव इस प्रश्न का समाधान आवश्यक ही जाता है कि वे लोक-लोक से तत्त्व हैं जिनका आधार ग्रहण करते भारतेन्दु रूप में नाट्य-साहित्य की रचना हुई। लोकतत्त्व की उपयुक्त व्याख्याओं के आधार पर भारतेन्दु-रूपीन नाट्य-साहित्य के लोकतात्विक शृंखलाबद्ध करने के लिए निम्नलिखित तत्त्वों का निर्धारण उचित प्रतीत होता है :--

- १- लोक कथानक तत्त्व
- २- लोक कृति [अभिप्राय] तत्त्व
- ३- लोकभाषा तत्त्व
- ४- लोक रंगमंच तत्त्व

अब, यह अध्ययन आवश्यक है कि उपर्युक्त तत्त्वों की दृष्टि से भारतेन्दु-रूपीन नाट्य-साहित्य की लोकतात्विक सम्भावनाएं कहाँ तक व्याप्त हैं ?

लोक कथानक तत्त्व

लोक का प्राणी अपने उद्गारों की एक आकर्षक तथात्मक परिधान के माध्यम से व्यक्त करता है। लोककथाओं के रूप प्रत्येक देश एवं जाति के जीवन में प्रचलित रहते हैं।

भारोन्डु युगिन साहित्यकार लोकोन्सुकी होने के कारण लोक-कल्याण की ओर उन्हे आकर्षित रहे हैं। अतएव सामयिक-बोध के साथ संलग्न होने हुए भी उनके कथन में प्राचीन परम्परा के प्राप्ति का प्रमुख स्थान रहा है।

धार्मिक कथाओं के मूल में आदिम-मानस (Primitive mind) प्रविष्ट है। कथा में निहित विचार-उद्भावना लोक के प्राणी के मानस में उद्भूत हुए विचारों की ही परिणति है। वास्तव में, आदिम-मानस के उद्गारों में धार्मिक-भावना का समावेश ही नहीं हुआ अपितु उनमें लोक-ज्ञान के ही धार्मिक-भावना की विचार मिला है। वतः "धर्म की लोकत्व का अंश था और धर्मशास्त्रों की उन्ही लोकत्व के आधार पर बनी हैं। लोकशास्त्रों का क्षेत्र बहुत विस्तृत है उसमें धर्मशास्त्रों का समावेश सज्ज ही हो जाता है।"^१ रस्किन ने धर्मशास्त्र की परिभाषा करते हुए लिखा है -- "एक धर्मशास्त्र अपनी सरलतम परिभाषा में एक कहानी है, जिसमें एक वर्ण सम्बद्ध है, ऐसा वर्ण जो प्रथम प्रकट होने वाले वर्ण के विपरीत हो। ऐसी कहानी में ऐसा कोई अनिष्ट वर्ण है, यह उस कहानी की कुछ उन परिस्थितियों के साधारणतः विहित होता है जो आधारणा होती हैं, प्राकृतिक घटनाओं के रूप पर बनी हैं -- पहले यदि मानव समूह ने प्रकृति के इन दिव्य व्यापारों को देखा और उन्हें पूर्ण रूप में समझ का वर्ण माना जसा शब्द के साधारण वर्ण में अस्वाभाविक होती हैं।"^२ रस्किन ने आगे और अधिक स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है -- "प्रायः प्रत्येक महत्वपूर्ण कथा में तुम्हें ये तीन निर्माण तत्व मिलेंगे -- मूल बिन्दु तथा दो साक्षर। मूल बिन्दु (बीज) होता है कि प्रकृतिक वाता में। तुम्हें जसा जानास, जसा मैघ या ताम्र उपरांत उठाता पुरुष रूप अवतार जो एक ऐसा विश्वकर्मात्मक का स्पष्ट रूप ग्रहण कर लेता है कि उन्हे पाप हाथ मिला आप ऐसे ही उस फिर तब जो अपने भाई जसा बहिन के साथ कोई शत्रु और अन्ततः का रूप-प्रत्यय की नैतिक कारण मिला जो अन्त ममान धर्मशास्त्रों में शाश्वत का उपयोगी भाव के सत्य रूप में प्रतिष्ठित होती है।"^३

१- डा० सत्येन्द्र -- लोकसाहित्य विज्ञान, पृ० १६२-१६३।

२- जान रस्किन -- द नीन बाफ की रजर, पृ० २।

३- जान रस्किन -- द नीन बाफ की रजर, पृ० १०।

भारतीय लोकजीवन में अन्धविश्वासों का प्रचलन वैदिक काल के साहित्य से ही मिलने लगता है। अथर्ववेद के अनेक मंत्र इस बात के गवाही हैं कि उक्त काल में भूत-प्रेत, पिशाच, असुर, राक्षस आदि अलौकिक शक्तियों में विश्वास किया जाता था। जादू-टोना, मोझ-उज्वाटन, वशीकरण आदि अलौकिक क्रिया-व्यापारों को लौकिक मान्यता प्राप्त थी। अथर्ववेद में इन तमस्त विषयों से सम्बद्ध मंत्र ही नहीं वरन् उनकी प्रयोग-विधियाँ भी उल्लिखित हैं। प्रस्तुत वेद में इस आशय के मंत्र भी उपलब्ध हैं, जिनसे सुख-सम्पत्ति और व्यापार आदि में सफलता प्राप्त करने की बात कही गयी है।^१

भारतेन्दु-सुभा के नाटककारों ने परम्परागत कथाओं को लोकप्रियता से अभि-मंडित करने के लिए लोककृतियों का प्रचुर प्रयोग किया है, अतएव अभिप्रायों की दृष्टि से नाटकों का अध्ययन पर्याप्त सम्भावना रखता है।

लोकभाषा तत्व

भाषा के माध्यम से ही वैचारिक-स्तर के विविध आयाम प्रस्फुटित होते हैं। भारतेन्दु-सुभा की भाषा जनसाधारण के बीच से ही विकसित हुई है। स्थानीय बोलियों के शब्दों का प्रचुर प्रयोग नाटककारों ने किया है। "भारतेन्दु ने बुन्देलखण्ड की बोली, नागभाषा, पंजाबी भाषा, नई पंजाबी, मारवाड़ी, उड़ीसी प्राचीन कविता, तुलसीदास जी की कविता, वैसवारी की कविता, लंगभाषा की कविता और मैथिली की कविता के उदाहरण दिये हैं।"^२

मुहावरे भाषा की प्राणशक्ति हैं और इनके प्रयोग से भाषा प्रवर्धमान करी रहती है। ग्रामीण-जनों की बातों में पग-पग पर मुहावरों में ही वैचारिक अभिव्यंजना सक्षम रूप में होती है। भारतेन्दु-सुभा के नाटकों में मुहावरों का प्रयोग अत्यधिक क्षमता के साथ किया गया है। अतएव भाषा की सामर्थ्य बढ़ जाने से नाटककार अपने कथ्य को प्रभावी बनाने में सफल हो सके हैं।

१- बिहारीलाल वर्मा -- विश्व धर्म दर्शन, पृ० २३।

२- डा० रामकुमार वर्मा -- साहित्य चिन्तन, पृ० ६१।

सुहावरी के साथ ही कहावतों का भी प्रचुर प्रयोग भाषा के निखारने में सफल है। "कहावत किसी विशिष्ट समुदाय में प्रचलित कोई ऐसा वाक्य है, जिसे लोकानुभव पर आश्रित जीवन की सारभूत समीक्षा कह सकते हैं।" ^१ हिन्दी में लोकशक्ति और उपाख्यान कहावत के पर्यायवाची हैं।

भारतीय समाज के उन्नयन में भारतेन्दु का केवल तत्पर रहे हैं। उन्होंने सदा भाषा के स्वरूप को गम्भीरता के साथ स्वीकार कर लिया था। भारतेन्दु-शुक्ल साहित्य में प्रयुक्त लोकभाषा के प्रयोग के सम्बन्ध में डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है -- "जो लोग साहित्य-गृष्टि करके, भाषा के माध्यम से जनता जनार्दन की सेवा करना चाहते हैं, वे महान् हैं। उनका रास्ता प्रेम का रास्ता है। हमारा यह देश नाना प्रकार की जातियों-उपजातियों में विभक्त सम्प्रदायों और पंथों में उद्भ्रान्त शतच्छिद्र क्लेश के त्रामाण्डल में है। इसे सावधानी से प्रेमपूर्वक समझने की आवश्यकता है। ज्ञान इस पर लादना नहीं है। जितना भी मधुर उस आप इसे ज्यों न दें यदि उस समय इसे स्वरूप को ध्यान में न रखें तो उसने बहकर गिर जाने का भय है।" ^२ लेखकों में इस विचारणा की प्रधानता थी, यही कारण है कि समाज के प्रत्येक वर्ग पर वे मधुर उस आप्लावित करके सामाजिक स्तर को विकसित करने में सक्रिय योग दे सके हैं। भारतेन्दु को लोक-जीवन से अतिशय-अतिशय प्रेम था। ग्रामों के प्रति शिक्षित लोगों की उपेक्षा पर टिप्पणी करते हुए हिन्दी-प्रदीप में उन्होंने लिखा था -- "ये वे ही सेतिहर हैं, जो हमको जिज्ञाते हैं पर गंवार और दिहकानी कह सम्य समान के लोग घिनाते हैं। अपने से अत्यन्त निकृष्ट जिन्हें मानते हैं। बड़ा-बड़ा अलेश उठाय ये बेवारे यदि जन्म न पैदा करें तो उनकी सम्मति की समाकृत सब घरी रह जाय। यही कारण है कि ग्रामीण बोलियाँ से उन्हें अतिशय प्रेम था, यहाँ तक कि उनके नाटकों में उनका [ग्रामीण बोलियाँ] कहीं-कहीं आवश्यकता से अधिक प्रयोग हो गया है। भाषा के साथ साहित्यिक संस्कृति पर गांवों का जो प्रभाव पड़ रहा था, वह भारतेन्दु की रचनाओं में और

१- टी० शिपले -- डिक्शनरी ऑफ़ वर्ल्ड लिटरेरी टर्म्स : जूबन १९५५, पृ० ३२७।

२- डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी -- विचार और वितर्क, पृ० २०८।

उनके तारे युग में फलकता हुआ दिखाई देता है।^१

वास्तव, भारतेन्दु युग की नाट्य-नीति के आधार पर भारतेन्दुयुगीन नाट्य-साहित्य के लोकोन्मुख होने की अनेक सम्भावना व्यक्त होती है।

लोक रंगमंच तत्व

वास्तव में नाट्यक्षेत्र तब तक अपूर्ण ही है जब तक उसकी मंच-प्रस्तुति नहीं होती है। यह उल्लेखनीय है कि भारतेन्दु युग के नाटककारों ने लेखन एवं प्रदर्शन दोनों क्षेत्रों में समान रुचि ली है। भारतेन्दु युग के 'अंधेर नगरी', 'पत्थर हरि-स्कन्द' (भारतेन्दु), महाराणा प्रताप सिंह (राधाकृष्ण दास), भारत भारत (लाल बहादुर मल्ल), जानकी मंगल (शीतला प्रसाद त्रिपाठी) आदि अनेक नाटकों के अनेक बार अभिनीत होने के विवरण प्राप्त होते हैं। 'अंधेर नगरी' का सूत्रधार कहता है कि -- "जहाँ आज की मध्या की धन्य है कि इतने गुणज्ञ और रसिक लोग एकत्र हैं और सबकी इच्छा है कि हिन्दी भाषा का कोई नवीन नाटक रहे। धन्य है विद्या का प्रकाश कि जहाँ के लोग नाटक का चिड़िया का नाम है, इतना भी नहीं जानते थे भला वहाँ अब लोगों की इच्छा धर प्रवृत्त हो गई।" 'जानकी मंगल' नाटक के सन्दर्भ में डा० धीरेन्द्र प्रताप सिंह ने लिखा है -- "यह नाटक विद्वद् रंगमंचीय दृष्टि से लिखा गया है। हिन्दी नाटकों के सम्बन्ध में सामान्य धारणा है कि उनमें रंगमंच का ध्यान नहीं रखा जाता। इस लिए वे अभिनेय न होकर पाठ्य हो जाते हैं। यह धारणा निर्मूल नहीं है, किन्तु भारतेन्दु युग के नाटक बहुत दूर तक इससे अपवाद हैं। 'जानकी मंगल' नाटक के सम्बन्ध में सम्भवतः सबसे बड़ा उल्लेखनीय बात यह है कि यह हिन्दी का प्रथम अभिनीत नाटक है। इस नाटक से तत्कालीन लोकरुचि का भी पता लगाता है।"^२

१- डा० रामविलास शर्मा, भारतेन्दु युग, पृ० १०।

२- डा० धीरेन्द्रनाथ सिंह -- [सम्पादक] -- जानकी मंगल, पृ० १।

भारतेन्दु स्वयं रंगमंच की प्रभावोत्पादकता मंजूर करते थे और वे सदैव एक उत्तम रंगमंच के निर्माण में प्रयत्नशील रहे हैं। "रंगमंच की प्रभावोत्पादकता को समझते हुए भारतेन्दु ने देश की राष्ट्रीय चेतना को जगाने के लिए नाटक का सहारा लिया।"^१ इस प्रकार आधुनिक युग के प्रवर्तन में नाट्य-साहित्य की भूमिका को प्रखर रूप से स्वीकार किया गया है। भारतेन्दु द्वारा जेसूज जनता के समीप पहुंचना चाहते थे, क्योंकि वे मंजूर नहीं जानते थे कि -- "नाटक को अभिजातीय आधार पर संरक्षित करने के प्रयत्न की असफलता निश्चित है और साधारण जन के विना करने के प्रत्येक प्रयत्न ने नाटक को शक्तिहीन ही बनाया है। यह बात खेदजनक है कि नाटककार अपने नाटकों की रचना सामान्य लोगों की रंगशास्त्राओं की छोड़कर केवल अभिजात्य वर्ग की रुचियों के अनुकूल करे। यह बात हर व्यक्ति के लिए अच्छी है, सच्चे नाटककार के लिए तो और भी कि वह जीवन क्षेत्र में जाकर जन-सामान्य से मिले। एक ऐसी सम्पन्न रंगशास्त्रा की स्थापना करना जो जन-साधारण की सहायता की अपेक्षा नहीं करती, अहितकर होगा।"^२ भारतेन्दु युग के नरुद्ध नाटककारों के मनोभावों की प्रामाण्य मिली है और "रंगमंच की दृष्टि से विचार करने पर यह साफ़ दिखाई पड़ता है कि वे जनता के समीप पहुंचना चाहते थे। भाषा की सरलता, जनोपयोगी कथोपकथन, लोकप्रिय गीत-ध्वनियां सभी कुछ अपने परिचायक हैं।"^३ सामान्य-जन के मानस को उद्बलित करने की दृष्टि से उन्होंने जनता के प्रत्येक वर्ग के से सम्बन्ध स्थापित किया और उनकी प्रक्रियाओं के स्वरूप को स्वर प्रदान किया है। डा० बच्चन सिंह ने ठीक ही लिखा है -- "अनेक वर्गों, जातियों और पेशे के लोगों को उनकी प्रधान विशेषताओं के साथ रंगमंच पर ले आना एक ऐतिहासिक कदम है, जो भारतेन्दु के व्यापक दृष्टिकोण का परिचायक है।"^४

भारतेन्दु के पूर्व लोकनाट्य शैलियों का प्रसार भारतीय जनजीवन में प्रचुर रूप में रहा है। अतएव विविध नाट्य शैलियों का प्रयोग नाट्य-प्रस्तुति में लेखकों ने

१- डा० बच्चन सिंह -- हिन्दी नाटक, पृ० ३३।

२- डा० इन्दुजा अवस्थी [अनुवादिका] - नाटक साहित्य का अध्ययन, पृ० ४७।

३- डा० बच्चन सिंह, -- हिन्दी नाटक -- पृष्ठ ३२।

४- वही, पृ० ३१।

किया है। भारतेन्दु की सुपरिचित नाटिका 'वंदावती' में रास-रंगी का पूर्ण प्रभाव परिलक्षित है। भारतेन्दु युग के उत्कृष्ट नाटककार पं० प्रतापनारायण मिश्र के नाटकों की समीक्षा प्रस्तुत करें। हुए डा० रामविलास शर्मा ने लिखा है -- "नाटक 'गीत-शाकुन्तले' में कालिदास की नागरिकता का नाम नहीं है। यह ठेठ देहात में दुष्पन्त-शकुन्तला की कथा का अभिनय करने के लिए लिखा गया है। अतः डांचा न संस्कृत नाटकों का एक विरुद्ध रूप है। अर्थात् कुछ स्त्री पात्रों के गीत ग्राफ़ियों की धुन पर बनाए गए हैं।"^१

भारतेन्दु युग में पारसी थियेटर ने अपना प्रभुत्व देश के एक नई नाग में विस्तारपूर्वक कर लिया था। ये कुछ व्यावसायिक संस्थानों की। इन संस्थाओं के अपने निजी लेखक [मुंशी] होते थे और लोक रुचि तथा कम्पनी के व्यवस्थापक के निर्देशानुसार नाट्य-रचना करते थे। नाटकों पर लोक रुचि की विभूति करने का आरोप लगाया जाता है क्योंकि पारसी थियेटर कम्पनियों के संचालकों ने अधिकाधिक धनार्जन की दृष्टि से धार्मिक-पौराणिक कथाओं पर आधारित नाटकों के माध्यम से वे धर्मप्राण जनता का शोषण किया है। इसी के प्रतिश्रिया स्वरूप भारतेन्दु नाट्य लेखन एवं प्रदर्शन के प्रति सक्रिय रूप से जागृत हुए। डा० बच्चन सिंह के अनुसार -- "पारसी थियेटर की झड़ोन्मुख कुत्सित प्रवृत्तियों के विरोध में भारतेन्दु ने नए नाटकों की दृष्टि तथा नवीन रंगमंच की स्थापना की।"^२ ऐसे एक प्रकार से इन नाटकों ने हिन्दी की एक रंगमंच प्रदान किया है। इन नाटकों पर नाटकी के धूम-धड़ाके का पर्याप्त प्रभाव है। हिन्दी के प्रथम अभिनीत नाटक 'जानकी मंगल' में उन्होंने अपने अभिजात्य की लक्ष्मण चिन्ता नहीं की और लक्ष्मण की भूमिका निर्वाह करने वाले पात्र के अवानक अवस्थ हो जाने के कारण शीघ्र ही लक्ष्मण की भूमिका का अध्ययन करके रंगमंच पर प्रविष्ट हुए और अपने अभिनय के द्वारा उपस्थित समुदाय की आश्चर्यचकित कर दिया।

रंग-काय के प्रति तल्लीनता के इस रूप का अनुकरण भारतेन्दु-युग के प्रायः

१- डा० रामविलास शर्मा, -- भारतेन्दु युग, पृ० ६७।

२- डा० बच्चन सिंह -- हिन्दी नाटक, पृ० २१।

नाटककारों ने किया है। डा० लक्ष्मीनारायण जाल के शब्दों में यह कहना उचित प्रतीत होता है कि --^१ 'असली नाटककार अपने धुम-धिरौण में मानव चेतना की उस उच्चतर धारा का प्रतिनिधित्व करता है, जो संघर्षरत मानवता की स्मार्ह होती है। जो अपनी सूक्ष्म और अस्पष्ट होती है कि मांजुषा मनुष्य को देख नहीं पाता। वही बिलम्ब दिखाने के लिए नाटककार अपनी कृति में उस रंगमंच का निर्माण करता है, जिसे सिर्फ देखकर और अनुभूत कर सम्मत्ता जा सकता है। उसी संवेदना और सत्त्वानुभूति के लिए नाटककार मनुष्य समाज को अपनी रंगशाळा में ले नाकर बैठाता है और मानवजाति को उसकी उप्राणशक्ति तथा प्रकृति-वृत्तियों का अत्यन्त सरलता से सेल-सेल में ही मान करा देता है।'^१ अतएव, भारतेन्दुशुक्लिन लोक-रंगमंच के उपर्युक्त स्वरूप विरूपण के आधार पर भारतेन्दुशुक्लिन नाट्य-साहित्य के लोकोन्मुख होने की पूर्ण सम्भावना अभिव्यक्त होती है।

निष्कर्षित: यह कहना उचित होगा कि भारतेन्दुशुक्लिन नाटककारों का लोक-जीवन से अत्यन्त निकटतम सम्पर्क रहा है। लोकजीवन की प्रभावी दिशा प्रदान करने के लिए नाटककार सदैव प्रयत्नशील रहे हैं। अपने प्रयत्न की सार्थक, सज्जम एवं प्रेषणीय बनाने के लिए उन्होंने लोकतत्वों के उपादानों का प्रचुर प्रयोग किया है, तभी वे नाटक के माध्यम से लोकमानस को अर्वाचीन सांस्कृतिक गरिमा के साथ नवीन्मेषी विचारधारा से सम्पृक्त कर सके हैं। नाट्य-शिल्प के विविध अंगों -- कथानक, प्रयोजन [रूढ़ि], भाषा, रंग-तकनीक आदि की लोकतात्विक स्वरूप से सम्बद्ध करके भारतेन्दुशुक्लिन नाटककारों ने लोकचेतना को ऊर्ध्वगामी बना दिया।

१- नागरी पत्रिका -- मार्च-अप्रैल, सन् १९६८ ई०।

अध्याय - २

भारतेन्दुशर्मा नाट्य-साहित्य में लोककथानक

लोक कथानक का स्वरूप विश्लेषण

लोक कथाओं के माध्यम से लोकमानस में व्याप्त मूल भावना स्थूल रूप में अभिव्यक्ति पाती है। विकास की एक प्रक्रिया में लोक प्रचलित कथानक में लोकमानस के एक या अनेक स्तर समाहित हो जाते हैं, क्योंकि ऐसा कथानक एक दीर्घ-यात्रा के उपरान्त वर्तमान रक्षा में अभिव्यक्ति पाने तक जीवित रहता है। लोकमानस में सहजतः विविध युगों की लोक संस्कृतियों के अवशिष्ट रूप विद्यमान रहते हैं, जो कथानक निर्माण में अपने अस्तित्व को समर्पित करते हैं। नाट्य-साहित्य के द्वारा विविध पात्रों के माध्यम से एक विशिष्ट कथा का स्वरूप निखार पाता है और वह रूप लोक के प्राणी तक प्रतिष्ठा पाता है। अतएव भारतेन्दुयुगीन नाट्य साहित्य के लोकतात्विक विवेचन में लोकमानस में व्याप्त मूल भावना का विश्लेषण अनिवार्य सा हो जाता है। इससे यह स्पष्ट हो जेगा कि भारतेन्दु युग के नाट्य-साहित्य के निर्माण में लोकमानस कहाँ तक व्याप्त है ?

लोकमानस लोकतत्त्व के निर्धारण में सर्वाधिक प्रमुख स्थान रखता है। मनो-विज्ञान के क्षेत्र में एक लम्बी अवधि तक चेतन-मानस को ही मान्यता प्राप्त हुई थी। किन्तु फ्रायड के द्वारा अवचेतन मानस के रूप-निर्धारण ने सर्वथा एक नयी स्थिति समुपस्थित की है। फ्रायड की मान्यता में परिष्कार के उपरान्त भी अवचेतन मानस की सत्ता को अस्वीकार नहीं किया गया है। इसी अवचेतन मानस में परम्प-रित प्रवृत्तियाँ विद्यमान रहती हैं। ये प्रवृत्तियाँ ही व्यक्ति एवं समाज के निर्माण में मूलधार स्वरूप होती हैं। परिणामतः उन्नाधिकार रूप में प्राच्य मानस का स्थान अवचेतन-मानस में ही समाविष्ट हो सकता है। अस्तु, अवचेतन मानस के दो रूपों की स्वीकृति मिली है -- सहज अवचेतन और उपाजितावचेतन। यह सहज अवचेतन ही लोकमानस है। इस सम्बन्ध में रीड महीदय ने स्पष्ट कहा है -- "ऐसा तथ्य, निश्चित रूप से, पूर्व-सृति में संवित विम्ब-प्रतिविम्ब पर निर्भर रहता है। इसी को फ्रायड ने मस्तिष्क की अवचेतन स्थिति कहा है। जिसमें विविध प्रकार

की क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं के साथ ही परम्परित-स्वरूप विद्यमान रहता है, जिसी चेतना की प्रसर-शक्ति मिलती है।^१

इस उल्लेख में प्रयुक्त परम्परित-स्वरूप ही लोकमानस कहा जाएगा। इस लोकमानस में लोक की विविध भावनाएं समाहित रहती हैं।

लोक-कथानक के आधार पर भारतीय-संस्कृति
नाटकों का विभाजन

कथानक की दृष्टि से इन भावनाओं के निम्नलिखित रूप हो सकते हैं --

क- धर्म गाथाएं

ख- प्रेम गाथाएं

ग- लोक-कथात्मक अन्य रूप

धर्म गाथाएं

धर्मगाथाओं में मूल रूप से आदिम मानव [Primitive Mind] प्रविष्ट रहता है। उसमें निहित उद्भावनाएं लोकमानस से ही इन-इनकर जाती हैं। इस सम्बन्ध में डा० सत्येन्द्र का कथन है कि -- "लोकसाहित्य की व्याख्या करने में जब यह विदित हो कि उनके मूल में किसी अधिर्भात तत्त्व का प्रतिबिम्ब है कि आदिम मानव ने सूर्य और अंधकार के संघर्ष की अकनक अथवा सूर्य और उष्ण के प्रेम की अथवा साहचर्य की ही विविध रूपों द्वारा साहित्य का रूप प्रदान कर दिया है,

१- "Such lights comes, of course, from the latent memory of the verbal images in what Freud calls the pre-conscious state of mind or from still obscurer state of the unconscious in which are hidden not only the neural traces of repressed sensations but also those inherited patterns which determine our instinct."

तो उसका यह रूप धर्मगाथा का रूप ग्रहण कर लेता है । तात्पर्य यह है कि लोक-साहित्य का वह अंश जो रूप में प्रकृतः तो होता है कहानी पर जिसके द्वारा अभीष्ट होता है कि जो प्राकृतिक व्यापार का वर्णन जो साहित्य-गृष्टा ने आदिम काल में देखा था और जिसमें धार्मिक भावना का पुट भी है -- वह धर्मगाथा कहलाता है ।^१ ब्रिटानिका विश्वकोश में बताया गया है -- "ये धर्मगाथाएं सांदेश्य होती हैं । इस सन्दर्भ में क्लिपिंग की मान्यता है कि विलुप्त ऐसी कहानियां जिनका उद्देश्य यह है व्याख्या करना है, १- यथायै पद्धति [उदाहरण के लिए इस प्रकार धरती और आकाश में अगाध हुआ], २- प्राकृतिक इतिहास की विशिष्टताएं [उदाहरणार्थ वर्षा क्यों होती है तथा विभिन्न पक्षियों के कार्य-कलाप], ३- मानवीय सम्यक्ता का उद्भव [उदाहरणार्थ सांस्कृतिक देवता की लामकारी प्रक्रियाएं] तथा ४- सामाजिक या धार्मिक रीतियों का उद्भव अथवा पूजा पद्धति के विशिष्ट रूपों^२ का विवरण धर्मगाथा के अन्तर्गत समाहित किया जा सकता है ।

रस्किन ने धर्मगाथा की व्याख्या करते हुए कहा है -- "प्रायः प्रत्येक महत्वपूर्ण गाथा में तुम्हें ये तीन निर्माण तत्व मिलेंगे -- मूल बिन्दु तथा दो शाखाएं ।

१- डा० सत्येन्द्र -- ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन, पृ० २०४ ।

२- " As distinct from these last, myths have a purpose. They are essentially aetiological, or as Mr. Kipling would say ' Just so stories,' Their object is to explain (1) Cosmic phenomena (e.g. how the earth and sky came to be separated;)(2) Peculiarities of natural history (e.g. why rain follows the cries or activities of certain birds;)(3) The origin of human civilization (e.g. through the beneficent action of a culture-hero like Prometheus; or (4) The origin of social or religious custom or the nature and history of objects of worship."

[डा० सत्येन्द्र -- लोक साहित्य विज्ञान, पृ० १६६]

मूल बिन्दु [बीज] होता है किसी प्राकृतिक सत्ता में : सूर्य जथा आकाश, जथा मेघ या सागर ; उपरान्त उसका पुरुष रूप अवतार, जो एक ऐसा विश्वमनीय तथा स्पष्ट रूप ग्रहण कर लेता है कि उसके साथ हाथ मिलार आप ऐसे ही घूम फिर उनके जैसे अपने भाई जथा बहिन के साथ कोई शिशु ; और अन्ततः इस रूप-कल्पना की नैतिकता सारगर्भिता जो अभी महान् धर्मगाथाओं में शाश्वत तथा उपयोगी भाव से सत्य रूप में प्रतिष्ठित होती है ।^१ अतएव यह स्पष्ट है कि धर्म-गाथाओं में आज जो पात्र हैं, वे पूर्व अवस्थाओं में किसी प्राकृतिक उपादान का स्वरूप ग्रहण किए हुए थे । पुनः उनका प्राकृतिक रूप विनष्ट हो गया और उसने धार्मिक कथा का रूप धारण कर लिया । इस प्रकार धर्मगाथा के आधार पर साहित्य निर्मित होता रहा है । जिन कथानकों में धार्मिक आत्मा अवतरित हुई, उन्हें एक विशेष वर्ग द्वारा एक विशेष सम्पत्ति की भांति सुरक्षित कर लिया गया और उन्हीं का आधार ग्रहण कर साहित्य रचा गया । लौकिकता के परम्परित उपादानों के आधार पर अभी विष्णु की महत्त्व दिया गया तो अभी शिव की और इसी महत्त्व-बिन्दु के आधार पर उपलब्ध सामग्री की नूतन स्वरूप प्रदान किया गया । परम्परित उपादानों में ऐतिहासिक तथ्यों का किसी न किसी रूप में आगमन स्वाभाविक-सा हो जाता है । "मावीय भाव विज्ञान में बढ़ता ऐसा होता है कि जो व्यक्ति और घटनाएँ विलुप्त कल्पनाजनित होती हैं, वे समय पाकर ऐतिहासिक मान लिए जाते हैं । इस ऐतिहासिक युग में जयचंद और पृथ्वी-राज का जो सम्बन्ध बताया जाता रहा है, वह कितना काल्पनिक सिद्ध हुआ है । दूसरे शब्दों में जो लोक-कल्पना थी वह इतिहास के रूप में मानी गयी । यदि उस कल्पना को अन्य क्रांष्टियों पर कसर अनैतिहासिक न सिद्ध किया गया होता, तो वह ऐतिहासिक ही मानी जाती । "ट्रेजेडी आव् व्यंग्य हाल" भी लोक विज्ञानों की दृष्टि में एक बुरा राजनीतिज्ञ के दिमाग की सूक्त मात्र है । यद्यपि यह पूर्ण-रूपेण निश्चय नहीं हो सका है, किन्तु किसी भी दिन यह ऐतिहासिक घटना कहानी मात्र सिद्ध हो सकती है । इसी प्रकार राम और कृष्ण के सम्बन्ध में

विद्वानों में अभी तक मतभेद है। यह बिल्कुल सम्भव है कि ये राम और कृष्ण सूर्य के ही नाम हों। राम तो वेदों में सूर्य-वंशी कहलाते ही हैं -- वे सूर्य की परम्परा में हैं। वेदों में सूर्य अथवा वरुण अथवा उषा अथवा इन्द्र का जिस प्रकार वर्णन हुआ है, उससे वे शरीरधारी पुरुष भी माने जा सकते हैं और कालीपरान्त ऐतिहासिक मान लिए जाएं, तो आश्चर्य की बात नहीं होगी। धुनायी 'जिज्ञ' वैदिक 'धीत' ही है, पर यह ऐतिहासिक व्यक्ति की भांति माना जाने लगा था। अतः ऐसी समस्त गाथाएं जो यथार्थ ऐतिहासिक बिन्दु पर खड़ी की गई हों अथवा जिनकी किसी समय में ऐतिहासिक प्रतिष्ठा मिल गई हो, उन पर बनी हों, वे लोक गाथाएं कहें जाएंगी।^{११}

लोकगाथा साहित्य की धर्मगाथाओं का उदय जिन उपादानों से हुआ, उन्हीं से साधारण लोकगाथा साहित्य की गाथाओं का भी जन्म हुआ। धर्म-गाथा और लोकगाथा के उद्भव की अवस्थाएं इस प्रकार निर्धारित करना मान्य होगा।

पहली अवस्था के अन्तर्गत यदि मानव के मानस द्वारा प्रकृति व्यापारों का दर्शन, उनका नामकरण और उनमें अपने जैसे व्यापारों का जानाजान समाहित किया गया है।

दूसरी अवस्था में इस ज्ञान के दो रूप हुए हैं। पहले के अनुसार ज्ञान केन्द्र के रूप में विकसित होकर उन प्रकृति के व्यापारों के वाचक शब्दों के यथार्थ अभिप्राय को अंशतः अथवा पूर्णतः विस्मृत कर दिया और उन प्रकृतिवादी विषयों के देवत्व और अतीतिकत्व से विभूषित कर दिया। धर्मभावना में ब्रह्मा अथवा भय का संवार कर दिया। ऐसा प्रकृति के उन तत्वों और व्यापारों के सम्बन्ध में भी हुआ है, जो मनुष्य की अपने प्रत्यक्ष अनुभव से उसके दैनिक कार्यक्रम में हानि-लाभ पहुंचाते प्रतीत होते थे। दूसरे के अनुसार उन्होंने ज्ञानात्मक विकास करके प्रकृति के विविध व्यापारों से मिलने वाली शिक्षाओं को हृदयंगम किया। उनके

प्रकृति व्यापारों की कथा का रूप दिया और उनसे कोई न कोई उपदेश प्रस्तुत किया है ।

तीसरी अवस्था के अन्तर्गत पहला ज्ञान धर्मगाथाओं के रूप में धार्मिक आस्थानों का आधार बना है । उन्हें मनीषियों ने अपनाकर और भी अधिक बड़ा का पात्र बना दिया है । इसमें से महाकाव्यों तथा धर्मगाथाओं के परिपक्व रूप विस्तार पा सके हैं । यह शिष्ट अर्थात् एक विशेष वर्ग की सम्पत्ति होता बना गया है और इसका रूप स्थिर हो गया है ।

दूसरे प्रकार के विश्लेषित ज्ञान की साधारण लोक ने अपनाया । इसमें प्रकृति के व्यापारों की शिक्षाएं साधारण कल्पना से विविध रूप ग्रहण करती रही । यही साधारण लोकमान्य हुई हैं । इसमें मनोरंजन तथा नैतिक शिक्षा की प्रधानता रहती है । इस साहित्य में कथा-कहानी के रूप में घटनाएं तो सुरक्षित रही हैं किन्तु नामों की रक्षा नहीं हो सकी है । इसकी आन्तरिक रूपरेखा तो पूर्ववत् रही किन्तु वाह्य रूप में अनेकानेक परिवर्तन होते गये और उसमें विभिन्न रंग समाविष्ट होते गये । विकास की प्रक्रिया में यह सर्वसाधारण की सम्पत्ति बनी ।

चौथी अवस्था में मूल लोकमान्य अपने जाति श्रुतों से पृथक् होती चली गयीं । वे विविध मानव समूहों द्वारा विविध भौगोलिक प्रदेशों में ले जायीं गयीं । उन प्रदेशों के भूगोल के अनुसार उस कथा के स्थानों का नामकरण हुआ । ये अधिकाधिक फलने-फूलने लगीं और उनकी शाखाएं प्रशाखाएं ऐसा नया रूप ग्रहण करने लगीं कि मूल से वे पर्याप्त अस्मद्ध हो प्रतीत होने लगीं । अन्ततः वे बिल्कुल ही साधारण लौकिक कहानियों के रूप में परिवर्तित हो गईं ।

पांचवीं अवस्था में ये साधारण लोक कहानियां साधारण जनसमुदाय में प्रचलित हो गईं और साधारण लोकमानस ने इनके समकक्ष स्वरूप पर बिल्कुल लौकिक और स्थानीय विशिष्टता पर आधारित कहानियों की रचना की । साथ ही ऐसी अनेक कहानियों को प्रेरणा श्रोत मिले, जिनका कि उन कहानियों से कहानियां से कोई संबंध ही नहीं रहा है ।

धर्माथाओं और लोकाथाओं के सम्मिलन से पुराणगाथाओं का जन्म माना जाता है। धर्मावना के प्रसार के लिए लोकप्रवृत्ति वा श्रव्यजनक कल्पनात्मक परिधान का प्रयोग किया गया, ताकि कथात्मक प्रवाह से लोकमानस प्रभाव ग्रहण कर सके क्योंकि, "पुराण का पात्र सब कुछ कर सकता है। उसके लिए कुछ भी असंभव नहीं।" इसलिए पुराणों में राजास और देवताओं का राज्य होता है। वहाँ पात्र ऐसे काम कर बैठते हैं, जो संसार में होते नहीं मिलते।^१ राम और कृष्ण से सम्बन्धित साहित्य परम्परा-प्रथित जीवनलीला के विभिन्न मूर्तों को आत्मसात करके निर्मित हुआ है। अनेक पौराणिक उपास्थानों को इनमें समाहित कर लिया गया है और अपने मूल रूप में यह कथा उतनी ही प्राचीनता संजोए हुए है, जितनी प्राचीन स्वयं भारतीय संस्कृति है। क्योंकि, "पौराणिक कथाओं और व्यक्तियों की एक परम्परा होती है। उस परम्परा में जनता अनन्त काल से रमण करती चली आयी है और उसमें रस लेने की अभ्यस्त रही है। अरब जगत की इन गाथाओं और नायकों का उद्धार जब नाटककार पकड़ता है तो उसकी प्रभाव प्रेषणीयता को स्वतः एक बल मिल जाता है। इसलिए लोक-कथाओं पर आधारित नाटक बड़े लोकप्रिय होते हैं।"^२ उदाहरणार्थ, "मानस का कथात्मक परिधान, जिसे उसका प्रबन्ध-विधान भी कहा जा सकता है। इस देश की अनेक कथा-कहानियों में थोड़े-बहुत अंतर के साथ उपलब्ध हो जाता है। इस दृष्टि से नल-दमयन्ती, उषा-अनिरुद्ध, डोला-मारु, पृथ्वीराज-पद्मावती और रत्नसेन पद्मावती की कहानियों का तुलनात्मक अध्ययन उपयोगी सिद्ध हो सकता है।"^३

प्रेमाथाएं

प्रेमकथाओं का क्षेत्र अत्यधिक व्यापक है। प्रेम मानव-जीवन की एक अविभाज्य वृत्ति है। लोक के प्राणी की समग्र अविव्यक्ति प्रेमरस से परिपूर्ण होती है।

१- डा० गोपीनाथ जिनारी -- भारत-दुर्कालीन नाटक साहित्य, पृ० १३७।

२- नया पथ [सम्पादक यशपाल] - मई १९५६, पृ० ४०८।

३- डा० सत्येन्द्र -- ब्रज लोकसाहित्य का अध्ययन, पृ० ५४६।

अतएव लोकमानस की अभिव्यंजना का यह प्रमुख रूप कहा जा सकता है। इन प्रेम-कहानियों की परम्परा अत्यधिक प्राचीन है। "इन कहानियों का विषय वही पुराना होता है अर्थात् किसी राजकुमार का किसी राजकुमारी के अतीति-आनन्द की बात सुनकर उसके प्रेम में पागल होना और घरबार छोड़कर निकल पड़ना तथा अनेक कष्ट भोगकर उस राजकुमारी को प्राप्त करना।"^१ इस कथन को इस प्रकार विवेचित किया जा सकता है -- "कोई राजकुमार किसी राजकुमारी के रूप-गुण की प्रशंसा सुनकर या प्रत्यक्ष या स्वप्न या चित्र में देखकर आकर्षित होता है। उधर भी यही हालत होती है। अन्त में वह उसी सौज में कल पड़ता है। उसे कोई मार्ग-प्रदर्शन भी मिल जाता है। यह अधिकतर राजकुमारी का नेजा हुआ कोई दूत या दूत का काम करने वाला कोई पक्षी या तोता हुआ करता है, कई बार फलागम होते-होते कोई ऐसी मूल उसने होती है, जिसे उसकी उद्देश्य-सिद्धि फिर एक अनिश्चित काल तक के लिए रुक जाती है।"^२ पुनः विगत क्रम विकास पाता है और सफलता प्राप्त होती है। इस प्रकार प्रेम-कथानकों की धारा अविच्छिन्न रूप से प्रवहमान रही है। एतदर्थ, निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि लोकजीवन में धर्मगाथाओं एवं प्रेमगाथाओं की व्याप्ति सहजरूपेण रहती है क्योंकि राम-कृष्ण के कथा स्रोतों से नाटकीय विषय-वस्तु का ग्रहण किया जाना, अभिनय के पूर्व कुछ धार्मिक कृत्यों का होना, भारत के नाट्यशास्त्र के सिद्धांत का ताण्डव और लास्य नृत्य का पुरस्कर्ता स्वीकार करना नाटक के प्रारम्भ में नांदी का प्रवेश आदि नाटकों की धार्मिक प्रभावों से बहुत कुछ सम्बद्ध कर देते हैं। जैन और बौद्ध धर्मों के नाटक सम्बन्धी दृष्टिकोण के आधार पर भी हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं।"^३

लोककथात्मक अन्य रूप

धर्मगाथामूलक एवं प्रेमगाथामूलक भारतेन्दुयुगीन नाटकों के साथ ही लोककथात्मक

१- रामचन्द्र शुक्ल -- हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ७२।

२- गणेशप्रसाद द्विवेदी -- हिन्दी के कवि और काव्य [भाग-३] पृ० ८।

३- डा० बच्चन सिंह -- हिन्दी नाटक, पृ० १०।

अन्य रूपों के नाटक भी विशिष्ट महत्व रखते हैं, जिनमें लोकतत्व अप्रत्यक्ष रूप से समाहित हैं -- इसके अन्तर्गत प्रेमगाथा को प्रभावित करने वाले ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित नाटक, सामयिक सामाजिक धर्म पर आधारित नाटक आत्मात्मिक राजनीति-धर्म पर आधारित नाटक और लोकधर्म नाट्यपरम्परा के रूप को व्यक्त करने वाले नाटक समाहित किए जा सकते हैं।

भारतेन्दु युग के धर्मगाथाभूतक नाटकों की विविध धाराएं

धर्मगाथाभूतक नाटकों के अन्तर्गत निम्न धाराओं के नाटक समाहित किए जा सकते हैं :--

- 【क】 रामकथापरक नाटक
- 【ख】 कृष्णकथापरक नाटक
- 【ग】 कौरव-पाण्डव कथापरक नाटक
- 【घ】 पातिव्रत्य-धर्म कथापरक नाटक
- 【च】 लोकप्रसिद्ध भक्त कथापरक नाटक

धर्मगाथा का आधार ग्रहण कर भारतेन्दुयुगीन नाटककारों ने जो नाटक रचे उसके माध्यम से सामाजिक समस्याओं को हल करने का उद्देश्य प्रमुख था। समाज में धार्मिक-कार्य के आधार पर ही पुनर्जागरण-कार्य सम्भाव्य हो सकता है, इस विचारणा से नाटककार पूर्णतः परिचित थे। फलतः धर्मगाथाभूतक आख्यानों की लेकर अनेक नाटकों की रचना हुई, जिनमें धार्मिक मान्यताओं की पुष्टि, इष्टदेव की लीला तथा लोकानुराजन का समन्वित रूप समाहित हो गया है। राम, कृष्ण, कौरव-पाण्डव, लोकप्रसिद्ध भक्तों की चरित-नायक के रूप में प्रस्तुत किया। इस प्रकार भारतेन्दु युगीन नाटककारों ने धर्मगाथाभूतक नाटकों की धारा में प्रचुर रूप से नाट्य-रचना की है, जिससे लोकतत्व के प्रति उनकी उन्मुखता का व्यापक परिचय मिलता है।

रामकथापरक नाटक

रामकथा के महाकाव्यात्मक रूप एवं पौराणिक-परिधान के कारण ही इस कथा में विविध लोकतत्व समाहित हो गए हैं, जिनसे यह कथा नाग्राह्य होने के कारण लोकप्रिय होती गयी है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम की जीवनीला नाटकों में अवतरित होने से लोकमानस मार्मिक रहस्यों को सुविधापूर्वक ग्रहण कर सज्जे में समर्थ हो सकत सजा है क्योंकि "रामचरितमानस का वैशाल एक कल्पना-मंडित अतीत से लिया गया है।"^१ यह रामकथा काव्य-रूप एवं नाट्य-रूप में लगभग २५०० वर्षों से लोकमानस को प्रेरित और उद्देष्टित करती रही है। युग-बोध के अनुसार कथा-स्वरूप में परिवर्तन-परिवर्द्धन होते रहे हैं किन्तु इसका मूल रूप सर्वथा एक-सा रहा है। वस्तुतः "प्रत्येक युग के आचार्य, कवि और नाटककार इस [वाल्मीकि रामायण] महाग्रन्थ से चालित हुए हैं, कालिदास और भवभूति की रचनाओं पर इसका प्रभाव है और चौदहवीं शताब्दी के लोक-साहित्य में इसका जबर्दस्त प्रभाव है।"^२

'भारतेन्दु-युग' के नाटककारों ने भी लोकचेतना को उज्ज्वल उद्देष्टित करने के लिए रामकथा का आश्रय लिया है। इस युग में अनेक नाटकों की रचना तो मात्र रामलीला के लिए ही हुई है। भारतेन्दु युगीन साहित्यकारों ने यह अनुभव किया कि काव्य-रूप में 'रामचरितमानस' के प्रति जनसमूह आस्थावान है। अतएव रंगमंच पर इसकी प्रस्तुति होकर भावप्रवण जनता के मानस को नवीन्मेषी भाव-नाओं से पल्लवित-पुष्पित किया जा सकता है। परिणामतः साहित्यिकों ने रामकथा के व्यापक रूप को आत्मगत कर उसका नाट्य-रूपान्तर जनता के समक्ष समुपस्थित किया।

लोकधर्मी परम्परा : रामलीला पर आधारित नाटक

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के

जीवनकाल में ही रामनगर [वाराणसी] में रामलीला का व्यापक एवं प्रभावी

१- डा० माताप्रसाद गुप्त -- तुलसीदास, पृ० ३६८ ।

२- डा० खारीप्रसाद द्विवेदी -- हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० १८१ ।

समायोजन होता रहा, जिसकी परम्परा आज तक जीवन्त है। भारतेन्दु लोक-
नायक राम के व्यक्तित्व से घनीभूत रूप में आप्लावित थे। 'श्री रामलीला'
नाटक का प्रारम्भिक पद है --

हरि लीला सब विधि सुखदाई ।

कहत पुनत दैता जिअ जानत दैति भगति अधिकदाई ॥

प्रेम बढ़त अघ नरत मुन्थरति जिय में उपजत जाई ।

याही तौ हरिचंद करत स्तुति नित हरि वरित नडाई ॥^१

इस रामलीला नाटक में बालकांड से अयोध्याकाण्ड तक के संक्षिप्त रूप की प्रस्तुति हुई है। प्रयुक्त गद्य के माध्यम से कथा-प्रवाह के निरन्तर्य को बनाये रखने के लिए उपादेय सूत्रों को संजोया गया है। पद, दोहा, सबैया एवं श्रुति आदि लोक श्रुतियों का समावेश इस रामलीला की विशिष्टता है। ऐसा आभास मिलता है कि रंगमंच पर पात्रों के आगमन एवं भावनुत्पन्न नाटिका के रूप में अभिनय-प्रक्रिया को योग देने के लिए श्रुति प्रस्तुत किए गए हैं। यद्यपि मूलाधार महाकवि तुलसीदास का रामचरित मानस ही है, किन्तु भारतेन्दु ने मानस की कथा को आत्मज्ञात कर सहज लौकिक रूप प्रदान किया है। वास्तविकता यह है कि 'श्री रामलीला' बंपू की विधा में रचित रामनगर में होने वाली रामलीला का सहज-सरस विवरण है।^२ इस भावनाटिका के बालकाण्ड के अन्त में नाटककार कहता है -- "फिर आनन्द से बरात बिदा होकर घर आई। रामियों ने दुलहा-दुलहिन को परहन करके उतारा। महाराज दशरथ ने सबका यथायोग्य आदर-सत्कार किया। अब हम भी श्री जनकलाली नवदुलही की आरती करके बालकाण्ड की लीला पूर्ण करते हैं।"^३ इसी प्रकार अयोध्याकाण्ड के अन्त में नाटककार कहता है -- "फिर भरत जी अयोध्या आए और श्री रामचन्द्र जी को फँस लाने के लिए बन गए। वहाँ

१- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र -- श्री रामलीला नाटक, पृ० १ ।

२- रुद्र काशिध्व -- भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृ० ६ ।

३- वही, पृ० ७३३ ।

उनकी मिलन-रहन-बीजन सब मानों प्रेम की सराद थी । वास्तव में जो भारत जी ने किया सो करना बहुत कठिन है । जब श्री रामचन्द्र जी न फिरे तब पाँवरी लेकर भारत जी ज्योंध्या लौट आए । पादुका को राज पर बैठा कर आप नन्दिग्राम में बनबर्था से रहने लगे । यह भरत जी की आरती करने ज्योंध्याकाण्ड की सीता पूर्ण हुई ।^{१२}

श्री शिवसंकर साहू बाजपेयी कृत 'रामयज्ञ दर्पण' [सन् १८६२ ई०], त्रिज-दास कृत 'रामचरित नाटक' [सन् १८६१ ई०], एवं पं० देवकीनन्दन त्रिपाठी कृत 'रामलीला नाटक' [सन् १८७६ ई०] -- एतन्व पर रामलीला अभिनीत करने की दृष्टि से लिखे गए हैं । इन नाटकों के कथात्मक-सूत्र 'रामचरित मानस' से सीधे सम्बन्धित किये जा सकते हैं । त्रिजदास जी ने अपने नाटक की भूमिका में स्वीकार किया है -- "काशिराज महाराज शिवरी नारायण जी के प्रयत्नार्थ रामलीला करने के लिए रामचरित मानस के आधार पर रचा गया ।" पं० देवकीनन्दन त्रिपाठी ने प्रविष्टि में कितनी सीता ही -- इसका समुचित उल्लेख कर दिया है ।

पं० दामोदर शारंगी सप्रे ने सातों काण्ड पर आधारित सात नाटकों की रचना की है जिनका नाम 'रामलीला नाटक' [१८८२-१८८७ ई०] है । इन सातों नाटकों का कथात्मक-परिधान वाल्मीकि एवं तुलसी की कृतियों पर आधारित है । बालकाण्ड में सीता स्वयंवर में रावण का आगमन होता है और विवाहोपरान्त परशुराम पधारते हैं । राम और जटायु का मिलन सीताहरण के पूर्व ही पंचवटी प्रवेश के समय होता है । रावण को सर-दूषण तथा त्रिशिरा के वध की सूचना शूर्पणखा से पूर्व प्रहस्त राजाज कारा प्राप्त होती है । वाल्मीकि के इन प्रसंगों के साथ ही रामचरितमानस के राम की भांति इन नाटकों में भी राम को परब्रह्म रूप में अवतरित किया गया है । सुलोचना-सती का प्रसंग 'मानस' पर आधारित है ।

‘रामचरितमानस’ पर आधारित बंदोदीन दीक्षित के ‘सीता स्वयंवर नाटक’ [सन् १८९६ ई०] पर भी रामलीला का पूर्ण प्रभाव है। इस नाटक में रामकथा का सीता स्वयंवर सम्बन्धी एक विशिष्ट अंश गृहण किया गया है। इसी प्रकार पं० देवकीनन्दन त्रिपाठी का ‘सीताहरण’ [सन् १८७६ ई०] नाटक भी एक विशिष्ट कथांश पर आधारित है जिसमें नाटककार का प्रमुख उद्देश्य जनता के समक्ष हृदयग्राही घटना को प्रभावी रूप में प्रस्तुत करना कहा जा सकता है।

जैसा कि पूर्व ही उल्लेख किया जा चुका है, लोककथा के माध्यम से इस काल के नाटककार सम्यानुसृत उपयोगी विचारों को जनता तक सम्प्रेषणाय बनाना चाहते थे क्योंकि वे जानते थे कि लोक तक पहुँचने के लिए लोकजीवन से संबंधित कथानकों का आश्रय अपेक्षित है। “विचारों की दृष्टि से देखें तो ये नाटक बहुत प्रौढ़ हैं। ऐसे प्रगतिशील विचार अन्य नाटकों में प्रायः नहीं मिलते। स्त्री का पुरुष के समान अधिकार है, नाटककार इसकी घोषणा करता है। यह घोषणा सीता के मुख से कराई गई है, यह और भी उत्तम हुआ है। श्री चतुरसेन शास्त्री ने बीसवीं शताब्दी में एक उपन्यास ‘वयं रक्षामः’ दिया है। इस उपन्यास की विशेषता है कि इसमें रावण राक्षस - संस्कृति के प्रचार में लगा है। इसी राक्षस संस्कृति के प्रचार के लिए वह आक्रमण करता था। उस काल में दो संस्कृतियाँ एक द्वारे से टक्कर ले रही थीं, एक थी आर्य संस्कृति और दूसरी राक्षस-संस्कृति। कितना आश्चर्य है कि पं० देवकीनन्दन त्रिपाठी ने इस विचार को सन् १८७६ ई० में अपने नाटक सीताहरण में स्थान दिया।”^१ पं० बालकृष्ण मट्ट का ‘सीताहरण वनवास’^२ तीन अंकों का नाटक है। कार के साधारण व्यक्ति द्वारा सीता की निन्दा और लोकापवाद के भय से सीता को राम द्वारा वन भेजा जाना, वहाँ लवकुश का जन्म, राम द्वारा आयोजित यज्ञ में दोनों का आगमन एवं सीता का पृथ्वी में समा जाना यही इसकी संक्षिप्त कथा है। इस नाटक में भी पौराणिक प्रसंगों का समावेश हुआ है।

१- डा० गोपीनाथ त्रिवारी -- भारतेन्दुशालीन नाटक, पृ० १४३-१४७।

२- पं० बालकृष्ण मट्ट -- हिन्दी प्रदीप [पृ० १५-२०] अक्टूबर १८८२।

पं० शीतलाप्रसाद जिप्साठी कृत रामचरित्रावली [सन् १८६८ ई०] एवं 'जानकी मंगल' नाटक [सन् १८७७ ई०], श्री रामापीपल विद्यान्त का 'रामा-निर्णय नाटक' [सन् १८६५ ई०], पं० बलदेवप्रसाद मिश्र का 'नीता वनवास नाटक' [१८६५ ई०] रामकथित धारा के अन्तर्गत अन्तर्भूत हैं-उल्लेखनीय है स्थान रखते हैं। धीरेन्द्रनाथ सिंह ने 'जानकी मंगल' नाटक के पन्दर्वे में लिखा है -- 'मानस के धतुर्यक्त प्रयोग का यह गद्य में नाट्य-रूपान्तर है। यह नाटक अपने अभिनय के आठ साल बाद प्रयाग के ज्ञानमार्तण्ड यंत्रालय ने सन् १८९३ वि० में मुद्रित प्रकाशित हुआ। पुनः इस नाटक का संशोधित संस्करण उदयविज्ञान प्रेस बांकीपुर ने सन् १८८४ में मुद्रित हुआ तथा प्रकाशित किया गया था।..... इसका ध्येय सङ्कल्पों का मनोरंजन तथा जन साधारण को आनन्द देना था। इस प्रकार यह साहित्यिक रचना है और जनोद्बोधक भी।'^१ यह हिन्दी का प्रथम अभिनीत नाटक माना जाता है। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का इस नाटक में जन्मण की भूमिका में उतरना यद्यपि आकस्मिक घटना थी, तथापि नाटक की भूमिका में उनके अवतरण ने नाट्य रसिकों को नाट्यारंजन की ओर आकृष्ट होने में प्रेरणा प्रदान की। परिणामस्वरूप हिन्दी के साहित्यिक रंगमंच का विकासक्रम उत्तरोत्तर आगे बढ़ा। हिन्दी रंगमंच के निर्माण के सौ वर्षों बाद भी यह नाटक रंगमंच के लिए प्रेरणास्तम्भ बना हुआ है।'^२

रामकथापरक भारतेन्दुयुगीन उपर्युक्त नाटकों में नाटककार की सतत चेतना लोकोमानस में व्यापक प्रभाव रखने वाली रामकथा के माध्यम से लोकप्राणियों को उद्बोधित करके नयी समस्याओं के प्रति सचेत करना रही है, जिसमें उन्होंने पूर्ण सफलता प्राप्त की है।

कृष्णकथापरक नाटक

भगवान् कृष्ण की लीलाओं के साथ लोकरंजक विशेषण यह प्रतिपादित करता है कि लोक में कृष्णलीला की व्याप्ति अपार जनसमूह के चित्र को अतुरंजित

१- धीरेन्द्रनाथ सिंह [सम्पादक] -- 'जानकी मंगल', पृ० ३।

२- वही, पृ० १।

करने के साथ ही अपने ही प्राचीन सांस्कृतिक तत्त्व एवं परम्परा ने गंभीरता निर-
रही है। श्रीकृष्ण के अवतारी-रूप से सम्बन्ध रखने वाले विविध पौराणिक
उपाख्यान लोकजीवन में विद्यमान हैं, जिनमें लोककथा के उपादान उपलब्ध होते
हैं।

श्री कृष्ण गोकुल, ब्रज और वृन्दावन में नन्द, यशोदा तथा गोपी-
गोपिकाओं के जीवन-सर्वस्व हैं और इसी वातवरण में उनकी जीलाएं सुगंधकारी
हैं। भारतेन्दुशुक्ल नाटककारों ने विविध कृष्णलीलाओं का आधार तैयार अनेक
नाटकों की रचना की। नाटककारों ने इन जीलाओं के पौराणिक आधार के
साथ उनके लोकसुलभ रूप का आधार लिया है। नाटककार पं० त्रैलोक्यनन्दन
त्रिपाठी ने नन्दोत्सव [सन् १८८० ई०] में श्रीकृष्ण के जन्मोत्सव पर होने वाले
कुल कार्या एवं उल्लास का चित्रण किया है। रास-शैली पर आधारित भारतेन्दु
हरिश्चन्द्र की नाटिका 'चंद्रावली' [सन् १८७६] में कृष्ण के जीवन प्रसंग को
संयोजित करते प्रेम-भावना को पुष्ट किया गया है। भारतेन्दु के इस नाटक का
आधार ग्रहण करके पं० अम्बिकादत्त व्यास ने 'ललिता नाटिका' [सन् १८७८ ई०]
की रचना की। इसमें चन्द्रावली की भांति ललिता श्रीकृष्ण की प्रेयसी हैं।
ब्रजजीवनदास ने 'प्रेमवैल नाटक' [सन् १८८७] में राधाकृष्ण के लोकव्यापी प्रेम
का तरंग चित्रण किया है। किज कृष्णदास ने 'कुल बिहार नाटक' [सन् १८८२]
में राधाकृष्ण के स्त्री प्रेम को दर्शाया है। सूर्यनारायण सिंह की 'श्यामानुराग
नाटिका' [सन् १८८६ ई०] भी कृष्ण की प्रेमरस से जोतप्रीत लीला पर अव-
लम्बित है।

कृष्णभक्ति धारा के कवियों ने रासलीला को काव्याराधना का प्रमुख सूत्र
माना है। भारतेन्दुशुक्ल नाटककारों ने भी इस परम्परित रास-शैली का
प्रभाव ग्रहण कर नाट्य रचना की। लाला खड्गबहादुर मल्ल का 'महारास'
[सन् १८८५ ई०] एवं हरिहर दुबे का 'महारास' [सन् १८८४ ई०] इस परम्परा
का प्रतिनिधित्व करते हैं। रास-चित्रण हरिवंश पुराण पूर्वाह्न के श्वकीसर्व
अध्याय के पन्द्रहवें से पैंतालीसवें श्लोक तक तथा श्रीमद्भागवत् के स्कंध दश अध्याय

उनतीस से बचीस तक पर अवलम्बित हैं। कृष्णमक्ति ने संबंधित कवियों ने भी इसी आशय की स्वीकार कर अपनी प्रतिभा के बल पर कृष्ण की इस सीला की शार्ङ्गिक एवं उन्मयमूलक बनाया है।

मथुरा में श्रीकृष्ण ने कंस का उद्धार किया और तीरकाक रूप में प्रतिष्ठित हुए। पं० देवकीनन्दन त्रिपाठी ने 'कंसवध' [सन् १८७८ ई०] में इसी प्रांग की साकार रूप प्रदान किया है। श्री विष्णुपुराण के अनुसार, 'राज्य के करों को जमा करने के लिए अधिकारी दुध का मखन और घी बनाकर बड़े नगरों में भेज दिया जाता था, जिसे सामान्य जनता की श्रम के अतिरिक्त के दुध का एक छोटा अंश भी मिलना कठिन हो गया था। भगवान् कृष्ण ने जन्मकाल से ही ब्रज ग्रामों में निवास करके इस तथ्य की वास्तविकता की भली प्रकार समझ लिया और कुछ बड़े होते ही जनता में इसके विरोधी भाव फैलाने प्रारम्भ कर दिए। वे सक्रिय रूप से भी दुध और मखन की नगरों में भेजे जाने का प्रतिकार करते थे। उन्होंने कारणों से कंस और उसके अधिकारीगण कृष्ण की से शत्रुता मानने लगे और उन्होंने बल-बल से अनेक बार उनकी हत्या के लिए प्रयत्न किये। पर अपनी लीला-चर प्रतिभा और शक्ति द्वारा उन्होंने शत्रु के गुप्त और प्रकट सभी आक्रमणों को उलझ में निष्फल कर दिया। उनके ये कार्य साधारण जनता में कमत्कारों की तरह प्रसिद्ध हो गए और अंत में जब उन्होंने कंस को मारकर उसके अन्यायी शासन का अन्त कर दिया और छोटे-बड़े सभी लोग दमन और अत्याचारों से मुक्त हो पा गये तो कृष्ण की एक महान् देवी शक्ति के रूप में पूजे जाने लगे।^१ कंस-वध के उपरान्त श्री कृष्ण नंद जी की ब्रज वापस भेजते हैं, इस प्रांग का मार्मिक चित्रण पं० बलदेव प्रसाद मिश्र ने 'नन्द विदा' नाटक [सन् १९०० ई०] में किया है।

मथुरा-प्रवास अवधि में श्रीकृष्ण निरन्तर ब्रज-जीवन का स्मरण करते रहे। गोपियों के समाचारों की जानकारी एवं उद्वेग के निर्गुण ज्ञान के जल्लादी विस्तार

१- श्री राम शर्मा [टीकाकार] -- विष्णुपुराण [प्रथम स्कण्ड], पृ० २१।

को समूह नष्ट करने की दृष्टि से श्रीकृष्ण ने उद्धव को ब्रज भेजा । भारतेन्दु युग में इस प्रसंग पर श्री विद्याधर त्रिपाठी ने 'उद्धव वसीठिका नाटक' [सन् १८८७ ई०] एवं गावडेन गोसाई ने रास-रंजनी पर 'उद्धव लीला नाटक' [सन् १८८६ ई०] की रचना की ।

कृष्ण द्वारा रुक्मिणी के हरण की कथा ने अत्यधिक ख्याति प्राप्त की है । इसी कथा का आधार लेकर पं० देवकीनन्दन त्रिपाठी ने 'रुक्मिणी हरण' [सन् १८७६ ई०] एवं पं० जयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिजीध' ने 'रुक्मिणी परिणय' [सन् १८६४ ई०] नाटक की रचना की । हरिजीध जी के नाटक में नारद का आगमन लोकवृत्ति का सङ्ग परिवर्धन देता है ।

भगवान् कृष्ण ने राम की भाँति ही अपने भक्तों को स्वर्गिक सुख प्रदान किया और मित्र-पक्षा के प्रति सद्भावना व्यक्त की । शत्रु के मानस में निहित शत्रु-भावना का परिष्कार करने के उपरान्त उसको भी अपनी भक्ति-भावना से विभूषित कर लिया । कृष्ण द्वारा द्रौपदी की रक्षा एक लोकप्रचलित घटना है । यह लोक प्राणी को सम्बल प्रदान करने के साथ ही अपने दृष्टिकोण के प्रति घनिष्ठतम रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करने में सहायक होती है । गजराज सिंह ने "द्रौपदी वस्त्रहरण" [सन् १८८५ ई०] में भगवान् के प्रजावत्सल एवं रक्षाक रूप का चित्रण किया है । श्री बन्दीदीन दीक्षित एवं मातादीन के संयुक्त रूप से लिखे गए 'सुदामा चरित्र' [सन् १८७६ ई०] तथा श्री शिवनन्दन तट्टाय के 'कृष्ण सुदामा नाटक' [सन् १८७० ई०] में मित्र-भावना का सङ्ग एवं प्रभावी रूप अवतरित किया गया है । यह प्रसंग भी लोक में अत्यधिक प्रख्यात है । जब भी सच्ची मित्रता निर्वाह का उल्लेख होता है, इस प्रसंग की भाव प्रवणता के साथ जावृत्ति की जाती है ।

भगवान् कृष्ण की संतति को आधार बनाकर भी नाट्य रचना इस युग में की गई । भारतेन्दु जी ने धनंजय विजय [सन् १८७४ ई०] एवं पं० जयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिजीध' ने 'प्रद्युम्न विजय व्यायोग' [सन् १८६३ ई०] नाटक की रचना की । अनिरुद्ध वीर उषा की प्रेमकथा ने नाट्यकारों को प्रभावित किया,

परिणामतः श्रीचन्द्र शर्मा [सन् १९८७ ई०], श्री कालिप्रसाद तन्त्री [सन् १९६१ ई०] व और श्री हरणनाथ [सन् १९६१ ई०] ने 'उषाहरण' नाटक रचे, जिसमें अनिरुद्ध और उषा के लोभ प्रवर्तित प्रेम की ममत्वपूर्ण अभिव्यक्ति प्रदान की गई है।

कृष्णनक्ति धारा के अन्तर्गत उल्लिखित उपर्युक्त नाटक तबसे एक व्यनमक-प्राचीन एवं व्यापक परम्परा का अनुसरण करते हैं। उपरले शास्त्रीय वर्ग ने इन कर ये कथारं बराबर लोकभाषा के साहित्यकारों तक पहुंचती रही हैं और उनमें व्याप्त धर्मभावना के कारण सामान्य जनता के बीच इनका प्रचार और प्रसार होता रहा है।^१

भारतेन्दुयुगीन कृष्णकथापरक नाटकों में लोकजन्म नायक कृष्ण के जीवन के विविध प्रांगों की अभिव्यक्ति मिलती है, जिसमें नाट्यकारों की गहरी मानवीय संवेदना भी वात्सल्यपूर्ण हो गई है। अतः नाटकों का प्रभाव-क्षेत्र व्यापक हो गया है और नाट्यकार अपने अभीष्ट उद्देश्यों को लोकमानस तक सम्प्रेषित करने में सफल प्राप्त कर सके हैं।

कौरव-पाण्डव कथापरक नाटक

कौरव-पाण्डवों की धर्मकथा लोकजीवन की सदैव प्रेरणा प्रदान करती रही है। शौर्य एवं पराक्रम के प्रतीक अभिमन्यु को नायकत्व प्रदान करके श्री शालिग्राम वैश्य ने 'अभिमन्यु' [सन् १९६६ ई०] नाटक की रचना की। आचार्य मट्टनायक ने दर्शक में इस की अवस्थिति मानी है और आचार्य अनिरुद्धगुप्त ने इन मत पर अपने अनाट्य मत द्वारा मान्यता प्रस्तावित की है, अतः नाट्य में रम-परिपाक की दृष्टि से दर्शक वर्ग को ही अनिवार्य रूप से महत्व मिला है। अपनी धर्मपत्नी उषरा और माता सुभद्रा से विदा प्राप्त कर कुमार अभिमन्यु युद्ध-क्षेत्र के लिए

प्रस्थान करते हैं, तो यह दृश्य मनोगत भावों को सख्त रूप से प्रभावित करता है। नाटककार ने राज्य चित्रण द्वारा इन स्थितियों को कर्तुण-रस से जीतप्रीत कर दिया है। रणक्षेत्र में अभिमन्यु काँवरों के व्यूह में उलझ जाने के कारण आक्रामक स्थिति का सामना करने के साथ ही अपने पारिवारिक प्रिय जनों का स्मरण करता है। इस सख्त कारुणिक स्थिति के साथ ही वीर और रौंड़ रस जो भी संकुचित स्थान मिला हो, जो कथानक के विकास में मूल परम्परा को रक्षा करते हुए विकास में साधक हुई है। अम्बराजों के गीत, देववाणी और राजास-राजासी के प्रसंगों के समावेश से दर्शकों को जिज्ञासा-वृद्धि विकसित की गयी है, ताकि कथा के मन को सुविधापूर्वक आत्मसात किया जा सके।

अभिमन्यु के उपरान्त महाभारत में द्रौपदी की चारित्रिक गरिमा का महत्वपूर्ण स्थान निर्धारित किया गया है। द्रौपदी के चरित्र ने जनमानस को अत्यधिक प्रभावित किया है। यह प्रसंग मान्यता रखता है कि कष्ट की अवधि में भगवान निश्चित रूप से अपने भक्त की रक्षा करते हैं। राम प्रभु लाल ने 'द्रौपदी वस्त्र हरण' [सन् १८६४ ई०] में इसी प्रसंग की आकण्ठिक स्वरूप प्रदान किया है। महाभारत के काव्यांशों का प्रयोग करके नाटककार ने अपने कथानक का विकास किया है। पौराणिक प्रसंगों की अवतारणा में आकाश-मार्ग ने व्यास का वागमन अम्बराजों का वागमन एवं वाकाशवाणी प्रमुख हैं। बाबू लक्ष्मी-प्रसाद ने भी 'द्रौपदी' [सन् अज्ञात] नाटक में इसी कथानक को उल्लेख स्थान दिया है। अर्जुन महाभारत के एक आदर्श तथा प्रभावोत्पीदक महापुरुष हैं। उनकी चारित्रिक गरिमा को अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए श्री शांतिग्राम बंश्य ने 'अर्जुन मम मर्दन' [सन् अज्ञात] नाटक की रचना की। पं० बालकृष्ण भट्ट कृत 'वृद्ध-नला' नाटक लोकमानस की वीर-भावना से परिपूर्ण करने में सहायक है। युद्धक्षेत्र में पराजित होने के उपरान्त अज्ञातवास की अवधि में पाण्डव तृप्तवेश में महाराज विराट के यहाँ आश्रय प्राप्त करते हैं। अर्जुन वृद्ध-नला के नाम से एक नपुंसक पात्र के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त कर लेते हैं। युधिष्ठिर का भट्ट के नाम से महाराज विराट के परामर्श-सहयोगी बन जाते हैं। भीम, नकुल और सहदेव का क्रमशः बल्लभ, अश्वपाल और गोपात नामकरण हो जाता है। एक दिन

कौरव विराट् नगर पर आक्रमण कर देते हैं। युद्ध के लिए प्रस्तुत कुमार उत्तर के मन से मय निष्कासित कर वृहन्नला आश्वस्त करता है और जब उसके मय की स्थिति प्रबल रूप धारण कर लेती है तो वह अपना वास्तविक नाम अर्जुन बता देता है। मयंकर युद्ध में कौरव जब पराजित होकर भागते हैं, तो भीष्म अर्जुन की आशीर्वाद प्रदान करते हैं।

महाराज विराट् जब त्रिजार्जुन से युद्ध करने के उपरान्त वापस आते हैं तो पुत्र के युद्ध-गमन का समाचार पाकर दुःखित होते हैं। कंक मट्ट आश्चयान देते हैं कि वृहन्नला की उपस्थिति के कारण विजयसुक्त रहे। इसी बीच विराट् अप्रत्याशित विजय का समाचार पाकर अत्यधिक प्रसन्न होते हैं। कंक मट्ट समझाते हैं कि विजय-श्री का श्रेय वृहन्नला की है। राजा विराट् क्रुद्ध होकर जुए के पास से कंक की आघात पहुंचाते हैं। क्षतने में कुमार उत्तर उपस्थित हो जाता है और पिता की अद्वैतशिता की भर्त्सना करता है। सारी स्थिति से अलग होने के अलग होने के उपरान्त विराट् अपनी भूल स्वीकार करते हैं और अपनी पुत्री उत्तरा का विवाह अर्जुन के साथ सम्पन्न करते हैं। इस नाटक में अर्जुन का चरित्र पूर्णतः विकास पा सका है। मट्ट जी ने परम्परा से प्राप्त महाभारत की इन कथा को चार अंकों के इस नाटक द्वारा लोकप्रिय बनाने का स्तुत्य प्रयास किया है। कथा के वही शुद्ध रूप को ही मट्ट जी ने संरक्षणा प्रदान किया है क्योंकि 'अपनी ओर से अपने काल की समस्याओं को भी उस [वृहन्नला नाटक] पर आरोपित करने का यत्न उन्होंने नहीं किया है।'^१

क्यों के चरित्र को श्री विष्णु गोविन्द शिवादेकर ने 'कपी-पर्व' (मन् १८७६ ई०) में अभिव्यंजना प्रदान की है।

महाभारत के कौरव-पाण्डव से सम्बन्धित उपयुक्त नाटकों में मारतेन्दु युग के नाटककारों ने महाभारत की परम्परा से प्राप्य कथा के स्वरूप का किया है, जिसमें लोक का प्राणी चारित्रिक गरिमा के साथ ही प्राचीन संस्कारों के सूत्रों की आत्म-सात करने में सफल हो सका है।

पातिव्रत-धर्म कथापरक नाटक

लोक जीवन चरित्र पत्रिका नारियों के जीवन-वृत्त से प्रेरणा ग्रहण करता रहा है। भारतेन्दुश्री ने प्राचीन आदर्शों के माध्यम से युगिन वातावरण को प्रांजल बनाने का प्रयास किया है। सत्यवान-सावित्री की कथा ने भारत-की एक असीमित दिशा प्रदान की है। भारतेन्दु का सती प्रसंग प्रताप [सन् १८८३ ई०] अपूर्ण होते हुए भी यह परिलक्षित करता है कि वे इस नारी-चरित्र की लोक तन्त्र सम्प्रेषित सम्प्रेषित करने के लिए प्रयत्नशील थे। बाबू कन्हैयालाल के 'शीत-सावित्री' [सन् १८९७ ई०] ने भारतेन्दु के अभियान की पूर्ति की। इसमें प्रस्तावना, भरतनाभ्य आदि शास्त्रीय-परम्पराओं का अनुसरण न कर सावित्री के जीवन-प्रसंगों की असीमितता से परिपूर्ण किया गया है। यमराज, नारद, आकाशनाथ, गौतम का तपोबल सभी की समुपस्थिति है।

श्री जेवराज के 'सावित्री नाटक' [सन् १९०० ई०] में पौराणिक प्रसंगों को गीष्म रूप प्रदान किया कि गया है, क्योंकि यम के वरदान का ही लोकविश्वास के अनुकूल प्रयोग किया गया है। अतः नाटककार लोकतत्त्व से अपने को मुक्त नहीं कर सका है। इस नाटक के सन्दर्भ में यह कहना उपयुक्त होगा कि सावित्री के चरित्र के माध्यम से नाटककार युगिन विचारधारा को लोकमानस में प्रविष्ट कराना चाहता है।

सावित्री की ही भांति 'सती सुलोचना' से सम्बन्धित कथा के आधार पर नाट्य रचना की गई है। श्री बलदेव जी जगहिर ने सुलोचना सती [सन् १८८७ ई०] की रचना की। इस नाटक में नाटककार ने सुलोचना की कथा का मात्र वाह्य रूप ग्रहण किया है और सामयिक विचार प्रक्रिया को अधिकाधिक स्थान दिया गया है। पौराणिकता के प्रवेश के आधार पर यह निश्चित है ही कि यह नाटक लोकोन्मुखी है। नाटककार ने सूत्रधार के द्वारा विचार व्यक्त किया है -- "प्रिय, कहो ही सुनाया था कि अन्तुल्या जगहिर की अनेकानेक पतिव्रता विदुषी वीर भारत की अटल निज धर्म पर ही वो अलग रहकर सब कुकर्मों ने परम आनन्द पातिव्रत

धर्म से मुक्ति की पाई है -- गृहण करना वही शिक्षा तो ^{होगी} मार्गदर्शक वह ।"

भारतेन्दु युग में पतिव्रता दमयन्ती की कथा ने काव्य एवं नाटक दोनों विधाओं को समानगति से प्रभावित किया है। पं० बालकृष्ण भट्ट का 'दमयन्ती स्वयंवर'^१ नाटक हर्ष महर्षि हर्ष के नैषध महाकाव्य पर आधारित है। इस कथे के नाटक में स्थान-स्थान पर मूल काव्य का अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। इस कथानक में भट्ट जी ने अपनी ओर से कुछ न समाविष्ट करके कथा के मूल रूप की रक्षा की है। भट्ट जी ने भीम द्वारा यह उन्देश दिया है -- "दमयन्ती से। -- धन्य है तेरा सांभाल्य। तूने अपने सतीत्व के प्रताप ने अपना लीया हुआ प्राणधन पुनः पाया।"^२

श्री सुदर्शनाचार्य ने 'अनर्घ नल चरित्र' (सन् १८६३ ई०) में नल-दमयन्ती के काम्पत्य-जीवन के वृक्षग्राही चित्र अंकित किए हैं।

पौराणिक देवताओं में परम्परा से हनुमान का लोकजीवन में विशिष्ट स्थान रहा है। हनुमान के पिता पवन और माता अंजना -- पौराणिक पात्रों को समाविष्ट कर श्री कन्हैया लाल ने 'अंजना सुंदरी नाटक' (सन् १८६६ ई०) की रचना की है। लोक में पर्याप्त महत्व प्राप्त करने वाले पातिव्रत धर्म की गरिमा एवं प्रतिष्ठा ही नाटककार का लक्ष्य है। सीता और दमयन्ती के समकक्ष ही अंजना को विवाहोपरान्त और कष्ट सहन करने पड़ते हैं, किन्तु अन्ततोगत्वा दोनों का शुभ-मिलन होता है। वन में ही हनुमान जी का जन्म होता है। इस पौराणिक नाटक की भूमिका में नाटककार ने लिखा है -- "शील सावित्री नाटिका" जो कि मेरी प्रारम्भिक रचना है -- इस कथा ने लोकमानस के बीच अपार प्रतिष्ठा प्राप्त की है। भारतीय युवतियों के लिए इस कथा के प्रसंग अनुकरणीय रहे हैं।

१- धनंजय भट्ट 'सरल' (सम्पादक) -- दमयन्ती स्वयंवर ।

२- वही, पृ० ७४ ।

अतएव, लोकमानस के समस्त अजना-सुंदरी कथा का नाट्य रूपांतर मैंने प्रस्तुत किया है ताकि वह अधिक की प्रेरक रूप में गृहीत हो सके।^१

हरितालिका तीज व्रत पतिव्रता नारियों का प्रमुख पर्व है। इस अवसर पर शौभाग्यवती पातिव्रत धर्म से सम्बन्धित कहानियों का अध्ययन-श्रवण करती हैं। साथ ही अपने पति के मौलमय जीवन की अभिलाषा दृष्टिकेव के समस्त व्यक्त करती हैं। ताता सङ्गवहादुर मल्ल ने श्री लोक-पर्व की 'हरितालिका नाटिका' [सन् १८८७ ई०] में समुचित स्थान प्रदान किया है। पातिव्रत धर्म कथापरक नाटकों में भारतेन्दु युगिन नाटककारों ने जिन पतिव्रता नारियों के यश की अभिव्यंजित किया है वे भावप्रवण लोक-प्राणी की पुरातन सूत्रों से सम्बद्ध करने में सहायक रहे हैं साथ ही सुबोध के अनुसार अनुकूल उसे सदाय दिशा मिली है।

लोकप्रसिद्ध भक्त कथापरक नाटक

भारतेन्दुयुगिन नाटककारों ने भक्तों की लोकप्रचलित कथाओं का आधार लेकर अनेक नाटकों की रचना की। जिन भक्तों की कथाओं ने भारतेन्दु युग के नाटककारों की प्रेरणा दी उनमें प्रह्लाद, ब्रह्म, गोपीचन्द, भर्तृहरि, नहुष, हरिश्चन्द्र आदि उल्लेखनीय हैं।

१- " Since the publication of my primary work ' Shil Savitri Natika' having found that it has met the appreciation of the men of leading and light as an instructive story for the young women of India, I have been cherishing innumerable new ideals for the betterment of the moral condition of the fair-sex, and in order to lay them public as an interesting drama, I have selected this story so that it may be both novelty and didactic."

दैत्यराज हिरण्यकश्यप के उपरान्त प्रह्लाद का राज्याभिषेक हुआ और उन्होंने उत्पतिष्ठा पूर्वक राज्य किया । इस प्रतिष्ठापूर्ण पद की प्राप्ति उन्हें विष्णु भगवान की भक्ति से हुई थी । प्रह्लाद की भक्ति का लोकजीवन में परम्परा से विशिष्ट स्थान रहा है । जलख विवेच्य-युग के लेखकों का ध्यान स्वाभाविक रूप से प्रह्लाद के उज्ज्वल चरित्र की ओर आकृष्ट हुआ । भारतेन्दु युग में भक्त प्रह्लाद के जीवन-वृत्त का आधार ग्रहण करके पाँच नाटक रचे हुए -- श्रीनिवासदास कृत 'प्रह्लाद चरित्र' [सन् १८८८ ई०], श्री जगन्नाथशरण कृत 'प्रह्लाद चरितामृत' [सन् १९०० ई०], श्री महाराजदीन कृत 'प्रह्लाद चरित्र' [सन् १९०० ई०], श्री मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या कृत 'प्रह्लाद नाटक' [सन् १८७४ ई०] और श्री रामगया प्रसाद दीन कृत 'प्रह्लाद नाटक' [सन् १८८२ ई०] । इन सभी नाटकों में नाटककारों ने भक्त प्रह्लाद की प्रख्याति को अभिव्यक्ति दी है ।

प्रह्लाद के जीवन-वृत्त में सम्बन्धित उपर्युक्त नाटकों में पर्याप्त स्वरूपता है । नाटककारों का लक्ष्य उसे लोकप्राणियों के समक्ष भक्त प्रह्लाद के कथा-प्रवाह की नाट्य रूप में प्रस्तुत कर उन्हें भाव-विश्वल और धर्म के प्रति जागृत कराना करना रहा है । 'प्रह्लाद चरितामृत' में नाटककार ने 'विनयपत्रिका' के पदों का उपयोग किया

१- स यथा निहती रौद्री हिरण्यकशिपुर्नृप ।

अभिषिक्तस्तदा राज्ये प्रह्लादो नाम तत्पुत्रः ॥ १

तस्मिन्तच्छासति दैत्यैः देवब्राह्मणपूजके ।

मूर्ध्नि नृपतयो क्लृप्तं यन्तः श्रद्धया निवृत्ताः ॥ २

ब्राह्मणाश्च तपोधर्मतीर्थयात्राश्च कुर्वते ।

वैश्याश्च स्वस्ववृत्तित्याः शूद्राः शूद्राण्यारताः ॥ ३

नृसिंहेन च पाताले स्थापितः शूद्राः तौ ध दैत्यराह ।

राज्यं ककार तत्रैव प्रजापालनं तत्परः ॥ ४

[श्रीराम शर्मा :टीकाकारः -- देवी भागवत पुराण, पृ० २३१]

हैं और 'प्रज्ञाद चरित्र' की प्रस्तावना विष्णु लोक के चारपार जय-विजय की आप देने से सम्बन्धित है, जो स्वयं एक कथा का रूप प्रस्तुत करती है। 'प्रज्ञाद नाटक' [मौलालाल विष्णुलाल पंड्या] में ब्रिटिश शासन पर व्यंग्य भी लेखक का विशिष्ट ध्येय है। इस प्रकार ये नाटक एक ही कथा पर आधारित होते हुए नाट्य-शिल्प की प्रभावशीलता की दृष्टि से दिशावदीक स्थान रखते हैं।

मारोन्डु युग में ध्रुव के जीवन की भी नाटकों द्वारा व्यक्त किया गया। श्री दामोदर शास्त्री के 'बाल रत्न' या 'ध्रुवचरित्र' [सन् १८८६ ई०] ने बालकों के मानस में ध्रुव के बाल-जीवन के कथा-वैशिष्ट्य की प्रविष्टि कराने का प्रयास किया है। मंगाराम कृत 'ध्रुव तपस्या' [सन् १८८५ ई०] नाटक में पौराणिक प्रसंगों का समावेश प्रचुरता के साथ हुआ है। नाटककार की यह प्रबल इच्छा है कि अपार जनसमूह किसी न किसी प्रकार ध्रुव के समान अविकल भक्ति में तल्लग्न हो जाए। श्री शालिग्राम वंश्य ने 'मोरध्वज' [सन् १८८८ ई०] की भूमिका में उल्लेख किया है कि "इस नाटक में भक्ति, प्रेम, वीरता, करुणा, मयानक, कनि वीभत्स, अद्भुत, शान्ति आदि सब ऐसे कलकार गए हैं कि मानों वे आपस में वार्त्तित हैं। इस नाटक के लिखने से मेरा अभिप्राय है जो हमारे प्राचीन राजे धर्म धारण करते थे, उस समय की इस समय के मिलाने से महान् अन्तर विदित होता है, कतएव इस समय वनबद्धता, वीरता, शस्त्रविद्या, ती भारतवर्ष से सर्वत्र नष्ट हो गयी है अरु दिन रही सही भी नष्ट होती चली जाती है, अब आशा करता हूँ कि इस नाटक के देखने से कुछ कुछ मनुष्य अपने पुरुषार्थों के कर्तव्य और वनबन्धता को स्मरण करके किचिन्मात्र ही उनके लालन-पालन में अटिबद्ध होंगे तो उस समय मेरा भी मनोरथ और परिश्रम सफल होगा।" मोरध्वज के निघन के उपरान्त माता-पिता एवं पत्नी के विलाप में निश्चित रूप से दर्शकों के मानस की करुणा सब से जोखप्रोत कर दिया होगा।

संत गोपीचन्द और मर्तुहरि को पौराणिक महापुरुष की श्रेणी में स्थान मिल गया है। पुराण-साहित्य में इनका उल्लेख नहीं मिलता है, किन्तु जनगाथा-ओं में इन, महापुरुषों के निर्माण प्रचुरता के साथ मिलते हैं। यह महत्वपूर्ण तथ्य

चूँकि स्थानक पौराणिक है, अतः कुछ हलचल घटनाओं को नाटककारों ने प्रयुक्त किया है। इस कथा-प्रांश के माध्यम से नाटककार लोकसमूह के समक्ष भक्ति एवं सत्यनिष्ठा के स्वरूप तथा प्रभाव को स्पष्ट करना चाहते थे। अतः लोकवाणी के तत्वों को समाविष्ट करना अनिवार्य ही गया।^१ किसी साहित्यकार को जब भी जनता के निकट जाने की आवश्यकता पड़ी है, जब उसने लोकजीवन को किसी प्रकार का धार्मिक, सामाजिक अथवा कोई अन्य उपदेश देना चाहा है, तो उसने अपने साहित्य को लोकवाणी के तत्वों से अभिमण्डित करके उसे लोकप्रिय बनाने का प्रयास किया है।^२

भक्त प्रस्ताव की भांति ही भक्त धर्म का यश भी लोक जीवन में व्याप्त है। लोक का व्यक्ति पारिवारिक धार्मिक एवं नैतिक मानदण्ड उत्कृष्ट बनाने के लिए बहुधा इस कथा का आश्रय लेता है।^३ बालकों के जीवन परिष्कार में इस कथा का महत्वपूर्ण योग रहा है। भारतेन्दु युग के नाटककारों ने भक्तप्रवर महापुरुषों के विवरण प्रचुरता के साथ मिले हैं। यह महत्वपूर्ण तथ्य है कि यदि किसी व्यक्ति ने कोई लोकोपयोगी कार्य किया तो लोक का प्राणी उसके कार्यरूप को आश्चर्यजनक परिधान से पूर्ण करके भावी पीढ़ी के समक्ष प्रस्तुत करता है, ताकि उच्चादर्श

१- डा० रवीन्द्र 'भ्रमर' -- हिन्दी भक्ति साहित्य में लोकतत्व, पृ० ६।

२- मनस्वस्त्यस्मिते तस्मिन्विष्णो मैत्रेय योगिनः।

न शशाङ्क धराभारमुत्तीढं मूल चारिणी ॥ ८

वामपादस्थिते तस्मिन्नामादित्य मैदिनी ।

द्वितीयं च न नामादित्येदीक्षिणातः स्थित ॥ ९

पाकाङ्गष्टेन लङ्घयिष्य सम्पी य यदा वसुधां स्थितः ।

तदा समस्ता वसुधा क्वाल सह पर्वतैः ॥ १०

नद्यो नदाः समुद्राश्च स क्षात्रं परमं ययुः ।

पृथ्वाभाक्भरा क्षात्रं परं जगुर्महासुने ॥ ११

--श्रीराम शर्मा [टीकाकार] -- विष्णुपुराण खंड-१, पृ० १२६।

की इस प्रसंग के माध्यम से आत्मसात किया जा सके। इस आधार पर यह कहना उचित प्रतीत होता है कि पौराणिक महापुरुषों की सर्वप्रथम लोक में मान्यता मिल चुकी थी, इसके उपरान्त उनके जीवन-कृत्य पर आधारित साहित्य रचा गया। प्राचीन अवदान में इतिहास के ही ध्वंस विस्तृत होने से नहीं बच रहे, वरन् आधुनिक युग के भी पुरुषों के कृत्य अद्भुत रूप में प्रस्तुत हैं। भारत में ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है, जिनमें एक साधारण-सा व्यक्ति किसी असाधारण घटना के कारण पूज्य बन गया है।^१

लोकगाथा तथा पुराणगाथा की वस्तुतः इसी विवेच्य महत्ता के कारण पौराणिक गाथाओं की उत्पत्ति लोकगाथा से मानी गयी है। क्योंकि 'धर्मत्व का लोकवाचों से गहरा सम्बन्ध है। धर्म की नींव लोकविश्वास है। यह लोकवाचों से गुंथा हुआ ही विकास पाता है। धर्म का वास्तविक मूल लोक-वाचों में सन्निहित आदिम मूल विश्वास ही होता है।'^२ अतः यह कहना सार्थक होगा कि धर्मत्व के मूल और विकास को बिना लोकत्व के निरूपित नहीं किया जा सकता है।

संत गोपीचन्द के जीवन पर आधारित तीन नाटकों की रचना भारतेन्दु झा में हुई। कण्ठाजी क्षामदार के 'गोपीचंद नाटक' [सन् १८६६ ई०] में स्थानीय बोली का प्रयोग किया गया है। डा० गोपीनाथ तिवारी ने भी इस नाटक का उल्लेख इस प्रकार किया है -- 'पौराणिकता बहुत है -- १-जलंधर छाई में घोड़े की लीद से कई दिन तक ढका रक्कर भी जीवित रहा, २-गोरख ने कहा -- आम नीचे आ। आम की स्या शक्ति जो आज्ञा न माने, तुरन्त नीचे आ गया। कानिफ ने कहा -- आम ऊपर जा। बैवारा आम ऊपर उठा गया, ३-कच्चे धागे पर गोरखनाथ चढ़ गये, ४-लोहे का पुतला हुंकार और शप ने भस्म हो गया। मुसलमानी दरबानों की नाई चौबदार जोर से पुकारता है। 'जास्ते कद', मुलाकात

१- डा० सत्येन्द्र -- लोकसाहित्य विज्ञान, पृ० २००-२०१।

२- वही, पृ० ७१।

ले कदं, तफावत से बाजू से निगा रखी मेहरबान ।^१ सत्ताराम बालकृष्ण गरनायक ने 'गोपीचन्द' [सन् १८८३ ई०] में इसी कथानक का आश्रय लिया है ।

अभी तक के प्राप्त विवरणों एवं खोज के उपरान्त भारतेन्दु युग में मात्र एक नाट्य-लेखिका का विवरण उपलब्ध होता है और वे थीं -- श्रीमती लाली । श्रीमती लाली का 'गोपीचन्द' नाटक [सन् १८६३ ई०] का कथानक प्रौढ़ एवं परिष्कृत है । कथा में उत्सुकता सर्वत्र बनी रहती है । दृश्य-योजना उनकी रंगमंच के प्रति निष्ठा की व्यक्त करती है । पौराणिकता का निर्वाह प्रारंभ से अंत तक किया गया है । नाटक के प्रारम्भ में ज्ञाश पर महादेव पार्वती, वीरभद्र, मणिन्द्र-नाथ, भूतपति और भृंगी वादामिन्न विराजमान रहते हैं । कुन्दनसेन तोता के रूप में परिवर्तित हो जाता है । मात्र उंडे के संकेत से ही मयभीत होकर यमपुरी के नर का मथावह दृश्य समुपस्थित हो जाता है, जिसमें सर्प, बिच्छू, गीध आदि प्रकट हो जाते हैं । अंकावतार में इन्द्र, यम, वरुण, तिलोत्तमा, उर्वशी और गंधर्व का आगमन होता है । श्रीमती लाली ने इस नाटक की भूमिका में स्पष्ट करते हुए लिखा है -- "इस नाटक की कथा सर्वसाधारण की विविल है और इस उपाख्यान के संगीत अनेक महाशयों ने बनाये हैं कि जिनका खेल होती के समय मेरठ, मुरादाबाद, अमरोहा, संमल और बदाऊं आदि नगरों में हुआ करता है । बम्बई की गुजराती नाटक मण्डली भी इस उपाख्यान के खेल की बड़ी उत्सुकता से करती है ।" इस नाटक में धर्म की जाड़ में छानि का चित्रण करके कूठे यो गिर्यों की पील लोल कर योग पर सर्वाधिक बहल बल दिया गया है, "माया रूपी मय से मोहित हुए मनुष्य भक्ति रूपी अमृत की उत्सुकता की नहीं समझते । तन की योगी का वेश देने की अपेक्षा मन की योगी का वेश देना सख्य गुण उत्तम है ।" नाट्य-लेखिका ने लोकधर्म के सख्य एवं स्वस्थ रूप की जनमानस के समस्त जनमानस में व्याप्त कथानक के आधार पर प्रस्तुत किया है । यही कारण है कि वह अपने उद्देश्य में सफल हो सकी है ।

१- डा० गोपीनाथ तिवारी — भारतेन्दुकालीन नाटक साहित्य, पृ० १५६ ।

भर्तृहरि के जीवन-प्रान्ति का आधार ग्रहण कर श्री श्यामसुन्दरलात दीक्षित ने 'महाराज भर्तृहरि' [सन् १८७८ ई०] नाटक की रचना की।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पिता श्री गोपालचन्द्र उपनाम श्री गिरिधरदास का 'नहुष'^१ नाटक हिन्दी का प्रथम नाटक माना जाता है। राजा नहुष की कथा महाभारत के उद्योग सर्ग तथा अनुशासन सर्ग पर्वों में विस्तृत रूप में है। कथासार यह है कि चंद्रवंशीय राजा नहुष राजा जाये कु पुत्र हैं। उन्होंने अपने तप, यज्ञ आदि द्वारा उस समय इन्द्रत्व प्राप्त कर लिया था, जबकि वृत्रासुर को मारने से इन्द्र को ब्रह्महत्या लगी तथा इन्द्राग्न रिक्त हो गया था। इन्द्राग्नि श्वी पर मोहित होकर जब प्राप्त करने की इच्छा उत्पत्ती हो गई, तब श्वी ने यह प्रस्ताव रखा कि वह सप्तर्षि को रथ में जोतकर जब आया, तभी वह नहुष को स्वीकार करेगी। राजा नहुष ने यथावत् किया, किन्तु शीघ्रता के कारण जगत्स्य ऋषि ने क्षाम दे दिया और वह उर्ध्व रूप में हो गया। नहुष गर्व रूप में दस सङ्घु वर्ष तक पृथ्वी पर आसीन रहे। नहुष के अनुनय-विनय पर ऋषि ने कहा कि जब तुम्हारे वंश में युधिष्ठिर नामक राजा होगा, तब उन्हें की कृपा से तुम्हें मुक्ति प्राप्त होगी। वनवास के समय सपने में भीम को पकड़ लिया। युधिष्ठिर ने जब भीम को मुक्ति प्रदान करने के लिए प्रश्न किया, तब उनके समक्ष सम्पूर्ण वृक्ष प्रस्तुत कर दिया। श्वी के अनन्तर मुक्ति पाकर वे स्वर्ग चले गये। इस नाटक में प्रस्तावना तथा छह अंक हैं। देवी भागवत पुराण में भी नहुष को इन्द्रपद प्राप्त एवं नहुष का पतन के अन्तर्गत यही कथा उपलब्ध होती है,^२ जो कथा के लोचनचलन एवं प्राचीन स्वरूप का स्पष्टीकरण करती है।

१- ब्रजरत्नदास [सम्पादक] -- नहुष नाटक, पृ० २१ से १०१ तक।

२- आस्ति प्रमुक्तास्तस्य श्रुत्वा वान्यमस्तत्कारम्।

अंगीचक्षुश्च भाषित्वात्कृत्या परमर्णयः ॥ ४२

अंगीकृतो य तदाकथ्य मुनिमिस्तत्त्वदक्षिभिः ।

मुदं प्राप नृपः कामं पीलेःभीकृतमानसः ॥ ४३

-- शेष अक्षर पृष्ठ पर -----

नहुष की भाँति ही पौराणिक व्यक्तित्व हरिश्चन्द्र का प्रमुख स्थान है । एक सीमा तक यह कहना सार्थक होगा कि हरिश्चन्द्र के व्यक्तित्व ने जनमानस को अधिकाधिक प्रभावित किया है । महात्मा गाँधी ने अपनी 'आत्मकथा' में हरिश्चन्द्र के प्रति श्रद्धा व्यक्त की है । उनकी पत्नी हरिश्चन्द्र का नाटक देखने से ही उनकी हृदयभूमि में सत्यप्रेम का पौधा बोया गया था, जो समय और परिस्थिति से वृद्धि को प्राप्त होता हुआ अन्त में उमस्त भारतीय समाज को अपनी प्राण-दायक शाय में लाने में समर्थ हुआ ।

माझण्डेय पुराण तथा देवी भागवत पुराण में हरिश्चन्द्र की कथा का विवरण प्राप्त होता है । 'हरिश्चन्द्र और विश्वामित्र का उपास्थान' तथा हरिश्चन्द्र के 'उत्थ की परीक्षा' के अन्तर्गत माझण्डेय पुराण में यह दिखलाया गया है कि मनुष्य सत्यव्रत का पालन करते हुए कहाँ तक दृढ़ता रख सकता है ? और फिर उसी के आधार पर कैसे उच्च से उच्च स्थिति प्राप्त कर सकता है । इस उपास्थान में राजा हरिश्चन्द्र की जैसी घोर दुर्दशा दिखलाई गई है और विश्वामित्र को जिस नृशंस रूप में चित्रित किया गया है उसने अस्वाभाविकता जा गई है, किन्तु कथा रूप में करुण-रस के समावेश हो जाने से आत्मविह्वल हो

पिछले पृष्ठ का शेष ----

आरुह्य क्षिविकां रम्यां संस्थितस्त्वरयां निवतः ।

वाहान्कृत्वा मुनीन्दिव्यान्सर्पं सर्पेति ताव्रवीत् ॥ ४४

कामार्तः सौ स्पृशन्मूढाः पादेन मुनिमस्तकम् ।

कशया ता यामास पञ्चाणशराहतः ॥ ४५

तं शशाप मुनिः क्रुद्धः कशाघातमनुत्सरम् ।

सर्पां भव दुराचार वने घोरनपुर्महान् ॥ ४६

बहुवर्णसंख्याणि तत्र क्लेशौ महान्भवेत् ।

एवं शप्तः स राजर्षिः स्तुत्वा तं मुनिसत्तमम् ॥ ४७

त्वर्गात्प्रातः स ह्यसौ सर्परूपधरो भवत् ।

वृहस्पतिस्ततो गत्वा तरसा मानसं प्रति ॥ ४८

श्रीराम शर्मा :टीकाकारः -- देवीभागवत पुराण, पृ० ५०२ ।]

जाते हैं^१ और कहाँ तक वास्तविकता है ? कितना कथांश है ? इस और ध्यान करने का अधिक अवसर नहीं मिल पाता है । बाबू गोपालराम गहमरी ने अपनी 'हुम की यात्रा' शीर्षक लेख में प्रसंगवश लिखा था -- "बयालीस वर्षों पहले की बात है, जब काशी के बाबू हरिश्चन्द्र ने बलिया में 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक स्वयं हरिश्चन्द्र बनकर रखा था, जिसमें हिन्दी के सुलेखक -- 'दुस्खी वाला' लेखक बाबू राधाकृष्ण शरीले हिन्दी लेखक और रविदत्त शुक्ल जैसे कवि ने पाठ लिया था..... उसकी महिमा यूरोपियन लेडियॉं तक ने गई थी । उस समय के क्लैक्टर साहब की मेम ने आंगुओं से भरा रुमाल निचाड़कर जज साहब की माफत भारतेन्दु जी ने आग्रह किया था कि रानी शैव्या का श्मशान विलाप अब धीरेज बुढ़ा रहा है-- सीन बदला जाय तो इस पर सत्य हरिश्चन्द्र बने हुए भारतेन्दु ने स्वयं आवरणकट किया था और दर्शक मण्डली में करुणा के मारे ब्राहि ब्राहि मच गई थी ।"^२

१- कष्टं शैव्यमेणह्नि बालो यमितीरथम् ।

रूरीदुःखान्तप्रीतिमुच्छिमभिज्जामव ॥ १६२

सार्धतप्रत्यमिज्जायतामवस्थामुपागतम् ।

मुच्छिता निपमा गार्ता निष्पेष्टाघरणितले ॥ १६३

चेतः सम्प्राप्य राजेन्द्रो राजपत्नी चतौसमम् ।

विलेपतुः सुसन्तप्ता शोकं मारातिपीडिता ॥ १६४

-- श्री राम शर्मा -- [टीकाकार] -- मार्कण्डेय पुराण,
पृ० १४६ ।

२- गोपाल राम गहमरी -- 'हुम की यात्रा' -- 'आज' अप्रैल २८,
सन् १९२७ ई० ।

‘माकण्डेय पुराण’ में इस कथा अर्चण द्वारा होने वाले लाभ का भी विवरण दिया गया है।^१ भारतेन्दु ने अपने नाटक ‘सत्य हरिश्चन्द्र’ [सन् १८७५ ई०] की भूमिका में चण्डकौशिक के नाटक का उल्लेख किया है। वास्तव में इस नाटक में चारित्रिक दृढ़ता के माध्यम से भारतेन्दु अपने लिए एक आदर्श रख रहे थे, उनकी वेदना को स्मरण करके वह अपने हरिश्चन्द्र नाम के व्यंग्य को समझा रहे थे। ‘सत्य हरिश्चन्द्र’ नाटक में सूत्रधार ने उचित ही कहा है --

‘जो गुन नृप हरिवंद में, जाहित मुनियत जान ।

सो सब कवि हरिवंद में, लखहु प्रतच्छ सुजान ॥’^२

श्री कुनीलाल ने ‘सत्य हरिश्चन्द्र’ [सन् १८८६ ई०] एवं कलाशनाथ बाजपेयी ने ‘विश्वामित्र’ [सन् १८६७ ई०] नाटक की रचना की। इन दोनों नाटकों के माध्यम से नाटककार हरिश्चन्द्र के प्रभावशाली व्यक्तित्व की जनता के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

१- तत्फलं क्षिणं नैव संयात्मा अणोति यः ।

श्रुत्वा तु पूजयेद्भक्त्या पुराणं त्रिजोचनम् ॥ २८१

गोभूहिरण्यस्रैश्च तथै मान्नेन जेभिने ।

ये नैवं यत्कृतं पुण्यं तच्छक्यं मयोदितम् ॥ २८२

अही ति तिष्ठामाहात्म्यमहीदानफलं महत् ।

यदा गतो हरिश्चन्द्रः पुरीकेन्द्रत्वमाप्तवान् ॥ २८३

एतत्ते सर्वमाख्यातं हरिश्चन्द्रविवेष्टितम् ।

यः शृणोति दुःखार्त्तसुखं महदाप्नुयात् ॥ २८४

स्वर्गाधी प्राप्नुयात्स्वर्गपत्रार्थी पुत्रमाप्नुयात् ।

भार्याधी प्राप्नुयाद्भार्या राज्यार्थी राज्यमाप्नुयात् ॥ २८५

-- श्रीराम शर्मा [टीकाकार] -- माकण्डेयपुराण, पृ० १६१

२- इस दोहे की रचना ‘जानकीमंगल’ नाटक के लेखक पं० शीतलाप्रसाद त्रिपाठी ने की थी।

बाबू लक्ष्मीप्रसाद का 'उर्वशी' [सन् अज्ञात] एवं देवकीनन्दन त्रिपाठी का 'लक्ष्मी सरस्वती मिलन' [सन् अज्ञात] भी उल्लेखनीय पौराणिक नाटक हैं, जिसमें पौराणिक चरित्रों की मान्यता प्राप्त हुई है।

लोकप्रसिद्ध भक्त कथापरक भारतेन्दुशैली के नाटकों में लोकमान्य के दृष्टिकोणों की चारित्रिक-नरिमा भाषिक रूप से प्रस्तुत हुई है। लोकजीवन के विविध आयामों को ये लोकप्रसिद्ध भक्त अनेक स्तर पर संस्पर्श करते रहे हैं अतएव ये कथारं नाट्य-रूप में अत्यन्त सजीवता ग्रहण कर उठी हैं और भारतेन्दुशैली के नाटककार सजग होकर अपने उद्देश्यों को व्यक्त करने में समर्थ हो गये हैं।

भारतेन्दुशैली के प्रेमाथामूलक नाटकों की विविध धाराएं

प्रेमाथामूलक नाटकों के अनुशीलन के उपरान्त भारतेन्दुशैली के प्रेमाटकों का लोकमान्य में महत्वपूर्ण स्थान निर्धारित किया गया है। प्रेमाथामूलक नाटकों में प्रयुक्त प्रेमाथाओं के माध्यम से प्राचीन परम्परागत पात्रों के जीवन-चक्र को जन-समुह के समक्ष समुपस्थित कर जहाँ नाटककारों ने जनमानस को अनुरंजित - प्रभावित किया, वहीं प्राचीन प्रेम-कथानकों के आधार पर निर्मित नाटकों द्वारा नाटककारों ने प्राचीन-परम्परागत लोकिक कथाओं को आश्रय प्रदान किया है। प्रेमाथानकों का मूल इस देश की प्राचीन लोकप्रचलित कहानियाँ ही हैं।

ऐतिहासिक और धार्मिक तथ्य भी प्रेमाथा को प्रभावित करते हैं। इतिहास का कोई महापुरुष जब अपने सत्कार्यों के कारण लोकप्रसिद्धि प्राप्त कर लेता है, तो उसके जीवन-चक्र को कल्पनामंडित एवं आश्चर्यजनक विवरणों से आभूषित कर लोक का व्यक्ति एक प्रेरक कथा निर्मित कर लेता है और वह कथा अपने विशिष्ट कृतत्वदीय गुणों के कारण लोक में अनन्तकाल तक जीवित रहती है। इसी प्रकार धार्मिक व्यक्तियों के जीवन प्रसंगों को प्रेमाथानक सूत्र से सम्बन्धित करके प्रेमाथाओं का निर्माण कर लिया जाता है। विवेक्यशैली में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'चंद्रावली'

नाटिका' में जहाँ एक ओर धार्मिक तत्वों की सन्निहित किया है, वहीं प्रेम-कथात्मक सूत्रों की भी विस्तारित किया है क्योंकि प्रेम जीवन की एक अविभाज्य वृत्ति है। परत कथानकों में उसकी अन्विता स्वाभाविक हो जाती है।

प्रेम की सुखान्त और दुःखान्त दो विभागों में रूपायित किया गया है। भारतेन्दु युग में दोनों विभागों के अन्तर्गत नाट्य-रचना हुई है।

सुखान्त प्रेम-नाटक

भारतेन्दु युग में सुखान्त प्रेम नाटकों की ओर नाटककार सजग रहे हैं। स्वयं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'प्रेम जागिनी' [सन् १८७५ ई०] अपूर्ण नाटक, चन्द्रावली [सन् १८७६ ई०] और 'विद्यासुन्दर' [सन् १८८६ ई०] तीन प्रेमनाटकों की रचना की। 'विद्यासुन्दर' को भारतेन्दु जी ने आध्यात्मवाद माना है। बंगाल में लोक-प्रचलित कथा के आधार पर इस नाटक की रचना हुई है। इस प्रेमकथा में नाटक-कार ने कृतकत्वपूर्ण प्रसंगों को विशेष रूप से मान्यता प्रदान की है। सुन्दर कृष्ण-वेश से वाटिका में जाता है और हीरा मालिन के यहाँ रहता है। एक विशेष माला गूँथकर नायक नायिका के पास भेजता है। माला में गोपनीय रूप में सुष्य-निर्मित धनु-शर रख दिया जाता है। वाटिका से राजमहल तक नायक सुरंग बनाता है और सजासक नायिका के समक्ष उपस्थित हो जाता है। नायक सन्यासी का वेष बनाकर राजसभा में जाता है। नायक जब पकड़ा जाता है, तब गंगाभाट यह रहस्य खोलता है कि यह सन्यासी तो एक राजकुमार है। इस नाटक में भावी प्रेम-नाटकों को प्रभावित किया है।

भारतेन्दु के 'विद्यासुन्दर' नाटक से प्रेरणा ग्रहण कर श्री विन्ध्येश्वरी प्रसाद त्रिपाठी ने 'मिथिलेश कुमारी' [सन् १८८८ ई०] नामक प्रेमनाटक की रचना की। विद्या के समान मिथिलेश भी प्रण करती है कि जो उसे शास्त्रार्थ में पराजित कर देगा, उसी के साथ वह विवाह करेगी। आ-प्रत्यक्षां का चित्रण इसमें भी लोककथाओं की भाँति किया गया है। इसका नायक भी राजकुमारी के महल में पकड़ा जाता है। 'विद्यासुन्दर' में नायक सन्यासी का रूप धारण

करता है, तो इस नाटक में पुनर्जाति का । इस प्रकार यह अनुकरणात्मक नाटक है ।

लङ्कावहादुर मल्ल कृत 'रेरति क्षुमायुधे' [सन् १८८५ ई०] में विद्यासुन्दर, चन्द्रावली एवं अभिज्ञानशाकुन्तलम् से प्रभाव ग्रहण किया गया है । प्रेमतत्त्व के साथ ही इस नाटक में पौराणिकता का भी समावेश किया गया है । जानाश्वाणी होना एवं देवताओं का आशीर्वाद प्रदान करना प्रमुख स्थल हैं ।

'रेरति क्षुमायुधे' के आधार पर कजर प्रसाद ने 'मातृकी कांत' [सन् १८९६ ई०] शीर्षक नाटक की रचना की । धर्माथा के प्रसंगों के समावेश में नाटककार ने शकुन्तला नाटक की कथा से सहयोग मिला लिया है । नारद नायक को अभिशाप्त करते हैं कि -- "जिसके ध्यान में मूर्ख तू भूला है, वही तुझे भूल जायगी ।" तत्काल ही नारद अपना अभिशाप निष्फल भी कर देते हैं । इस प्रकार नाटककार प्रेमकथा को विकसित करने के साथ ही धर्माथा तत्त्व को प्रतिष्ठा प्रदान करने के प्रति भी जागरूक है । अतएव प्रस्तुत नाटक में प्रमुख कथानक 'लोक' के कल्पना विलास से उत्पन्न मनोरंजक कहानियों से भिन्न नहीं है ।

श्री अमान सिंह गोटिया और पं० जागेश्वरदयाल ने संयुक्त रूप से 'मदनमंजरी' नाटक [सन् १८८४ ई०] की रचना की । भूमिका में लेखक-द्वय ने स्वीकार किया है कि, "जब मैं काशी में था तब श्रीयुक्त बाबू हरिश्चन्द्र की बनाई हुई बहुत सी पुस्तकें पुस्तकें देखीं तो मन में उत्पन्न हुआ कि मैं भी बाबू साहब की सहायता से इस पुस्तक को प्रचलित करूं ।" नाटक की कथा के अध्ययन के उपरान्त यह निष्कर्ष निकलता है कि भारतेन्दु द्वारा विद्यासुन्दर में स्वीकृत प्रेमकथा का ही अनुकरण किया गया है ।

उपर्युक्त समस्त नाटक का उद्देश्यप्रधान हैं । भरतमुनि ने नाटकों का उद्देश्य उपदेश तथा रस माना है । --

लोकोपदेशजननं नाट्यमेतद्विष्यति ।^१

१- भरतमुनि -- नाट्यशास्त्र, अध्याय १, श्लोक १३ ।

विनीतजननं कावे नाट्यमेतद्भविष्यति ।^१

नाटककारों ने लोकप्रचलित प्रेमकथानकों का आधार ग्रहण कर नाट्यरचना की है, किन्तु इसी के साथ उन्होंने धृति-स्वरूप और सुशिक्षा के परिणामस्वरूप भावी परिवर्तनों की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया है। उन्होंने यह भतीभांति जानकारी प्राप्त कर ली थी कि वर-वधू की अनिच्छा से उत्पन्न हुए विवाह के कारण जीवन कितना नारकीय बन जाता है। स्वयं भारतेन्दु का जीवन-दर्शन इसका प्रमाण है। उनकी धर्मपत्नी अशिक्षित थीं। वे साहित्य, कला, संगीत के मर्म से अनभिज्ञ थीं और दूसरी ओर इन ललित कलाओं के प्रति भारतेन्दु का आत्मिक अनुराग था। अतएव उनके लिए मानसिक अन्न अन्तर्हस्त स्वाभाविक हो गया। 'प्रेमयोगिनी' नाटक के माध्यम से भारतेन्दु इसी विचारणा का विश्लेषण करना चाहते थे। इस नाटक में वृत्रधार ने इस दिशा में विचार व्यक्त किया है -- "हा सज्जन शिरोमणो ! कुछ चिन्ता नहीं करेरा [हरिचन्द्र] तू जाना है कि कितना ही भी दुख हो उसे कुछ ही मानना लोभ के परित्याग के समय नाम और कीर्ति तन का परित्याग कर दिया है और जगत् से विपरीत गति चलते तूने प्रेम की टक्काल खड़ी की है। क्या हुआ जो निर्दय ईश्वर तुम्हें प्रत्यक्षां आकर अपने अंक में रखकर आदर नहीं देता और सब लोग तेरी नित्य एक नई निन्दा करते हैं और तू सगारी वैनव से संचित नहीं है, तुम्हें हमसे क्या, प्रेमी लोग जो तेरे और तू जिन्हें सारबत है वे जब जहाँ उत्पन्न होंगे तेरे नाम को आदर से लेंगे और तेरी रहन-सहन को अपनी जीवन-पद्धति समझेंगे [मित्रों से आसुं गिरते हैं] मित्र ! तुम तो दूसरों का अपकार और अपना उपकार दोनों भूल जाते हो, तुम्हें हमकी निन्दा से क्या, इतना चिन्त क्यों फुल्लव्य करते हो। स्मरण रखो ये कीड़े ऐसे ही रहेंगे और तुम लोक बहिष्कृत होकर भी उनके सिर पर पैर रख के विहार करोगे।"^२ भारतेन्दु की ओर उनके सहयोगियों ने इसी लिए ऐसे नाटकों की रचना की, जिनके माध्यम से वर-वधू

१- भरतमुनि -- नाट्यशास्त्र, अध्याय १, श्लोक ११७।

२- रुद्र का शिष्य -- भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृ० १६८।

दोनों एक दूसरे के संबंध में पूर्व जानकारी प्राप्त करते, आपसी व्यवस्थापन करके तब विवाह-सूत्र में जाबद हों। ऐसे विवाहों को सामाजिक मान्यता भी प्राप्त हो, क्योंकि भारतीय संस्कृति की दीर्घकालीन परम्परा इस तथ्य का प्रमाण है कि गन्धर्व विवाह की स्वयंवर की अवधारणा बहुत प्रेष्ठ कहा गया है। इसी परम्परित मान्यता की भारतेन्दुशैलीन नाटककारों ने महत्व प्रदान किया है। "भारतेन्दु जी के 'विवाहसूत्र' और 'सती प्रताप' नाटकों की परम्परा में लिखे गए नाटकों में नाटककारों का उद्देश्य गन्धर्व-विवाह रहा है। इन नाटकों में नायक-नायिका एक दूसरे को देख कर आसक्त होते हैं। वे परस्पर विवाह-सूत्र में सामाजिक-विवाह से पहले ही बंध जाते हैं। नाटककारों का उद्देश्य है कि वर-कन्या एकदूसरे को देख कर पसंद करें, माता-पिता की प्रेमराज्य में क्या आवश्यकता है।"^१

श्री शालिग्राम कृत 'माधवानल कामकंदला' (सन् १८८८ ई०) का आधार महाकवि आलम कृत 'माधवा नल काम कंदला' (रचना काल १५६१ ई०) कृति है। सुफ़ी कवि आलम ने लोकप्रचलित कहानी का आधार ग्रहण किया। "इन कहानियों की परम्परा बड़ी पुरानी है। इनकी एक लिखित साहित्यिक-धारा गुणाढ्य की बडकहा से आरम्भ होकर प्राकृत, अपभ्रंश और जादि हिन्दी के चारण काव्यों से गुजरी हुई सफ़ियों के प्रेमास्थानों तक अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित रही है। सुफ़ी कवियों ने इन लोक-प्रचलित कथानकों का ही आश्रय लेकर अपनी बात जनता तक पहुंचाई है।"^२ यही उद्देश्य श्री शालिग्राम का भी है। आलम के कुछ बनेक दोहों को उसी रूप में नाटककार ने ग्रहण किया है। पात्रों द्वारा अनेक स्थलों पर छन्दमय एवं कामकंदला का उर्वशी अप्सरा के रूप में अवतरण लौकिक कथाओं के स्वरूप से सीधा सम्बन्ध स्थापित करता है।

भारतेन्दु की परम्परा में उल्लिखित सौदेश्य नाटकों के अतिरिक्त 'माधवानल कामकंदला' का विशिष्ट स्थान है। क्योंकि नाटककार ने कथा-रूढ़ि का आधार

१- डा० गोपीनाथ तिवारी-- भारतेन्दुशैलीन नाटक साहित्य, पृ० १७०।

२- डा० रवीन्द्र प्रमर -- हिन्दी भक्ति साहित्य में लौकिकत्व, पृ० ५८।

गृहण करके नाटक की कथावस्तु को जाकर्षण स्वरूप प्रदान किया है। इसी परंपरा पर आधारित पं० विश्वरीजन गोस्वामी का नाटक 'मयंक मंजरी महा-नाटक' [सन् १९६१ ई०] की रचना की। नाटककार लोकतत्त्व ने अपने को उन्मुक्त नहीं कर सका है। अपने प्रेम को मालमय एवं स्थायित्व प्रदान करने की दृष्टि से नाटिका माला-गौरी का स्मरण करती है। शकुन्तला के गन्धर्व-विवाह की जानकारी जब ऋष्व ऋषि को मिली, तो उन्होंने आशीर्वाद प्रदान किया और शकुन्तला को पतिगृह पहुँचाने की समुचित व्यवस्था करा दी। रुक्मी ने अपनी वह्नि रुक्मिणी का विवाह उसकी इच्छा के विरुद्ध अत्यन्त करने का प्रयास किया, उसका प्रतिकूल क्या हुआ? इस तथ्य की ओर ध्यान जाकर्षित करने वाला संवाद है -- "रुक्मी ने रुक्मिणी के विरुद्ध विवाह का आयोजन करके कैसा संकट पाया था?" इसी प्रकार लोक्मानस को अभिभूत करने वाले राम और सीता से सम्बन्धित प्रसंगों का उल्लेख किया गया है। भक्त प्रह्लाद ने भगवान के नामस्मरण एवं भक्ति के लिए अपने पिता हिरण्यकश्यप के अन्यायों का सामना किया और अंततोगत्वा सफलता अर्जित की, इसका भी उल्लेख है।

श्री सिलावन लाल का 'प्रेम सुन्दर' [सन् १९६२ ई०] भी इसी परंपरा का अनुगमन करता है। इस नाटक की कथावस्तु का संक्षिप्त रूप इस प्रकार विवेचित किया जा सकता है -- "एक नायक है, एक नायिका है। प्रथम मिलन में ही दोनों के मन में एक दूसरे के प्रति अटूट प्रेम-भावना उद्भूत होती है। दोनों विरह-वैदना के कारण व्याकुल हो जाते हैं। दोनों के मार्ग में बाधाएं उपस्थित होती हैं। बाधाओं का वे साहस के साथ सामना करते हैं। सच्चे प्रेम के कारण दोनों का मिलाप हो जाता है। -- इस सहज मूल कथा के आधार पर यह निश्चित हो जाता है कि 'प्रेम सुन्दर' का कथानक भी परम्परा प्रकृत लोक कथानकों से भिन्न नहीं है। 'प्रेम सुन्दर' की संवाद-योजना पर 'चंद्रावली' का प्रभाव भी परिलक्षित होता है।

श्री निवासदास के 'तप्ता संवरण' [१९६३ ई०] के प्रथम अंक में तप्ता तथा संवरण का साक्षात्कार होता है। दूसरे अंक में दोनों में वार्तालाप और

गीतम का आगमन होता है। संवरण के प्रणाम न करने पर गीतम रुष्ट होकर शाप देते हैं कि वह जिसे ध्यान में है, वही उसे भुल जायेगी। प्राचीना एवं प्रणाम करने पर आशीर्वाद प्रदान करते हैं कि अंग स्पर्श करने पर वह शाप भिड़ जाएगा। तीसरे अंग में तप्ता सखियाँ सक्ति विरहिणी रूप में जाती हैं, पत्र लिखती हैं, जो गिन बनती हैं, पर संवरण के जाने पर उसे पञ्चिमान नहीं पाती हैं। चौथे अंग में संवरण मित्र सहित आता है और विरहा धिन्ध के कारण मूर्च्छित हो जाता है। तप्ता आती है, सुल पर ले वस्त्र हटाती है, अतः शाप का निराकरण हो जाता है और मिताप हो जाता है। पांचवें अंग में वशिष्ठ जी की अनुकम्पा से सूर्य भगवान आते हैं और सुपुत्री तप्ता का संवरण के साथ विवाह सम्पन्न करा देते हैं। भारतेन्दु की विचारणा के अनुसार ही पांचवें अंग में माता-पिता द्वारा विवाह की स्वीकृति प्रदान की गई है। अतः इस नाटक का लोक-वैतना के साथ ही युग-वैतना की समाविष्ट है।

भारतेन्दु युग के नाटककारों की यही विशिष्टता है कि युग-वैतना की अभिव्यंजित करने के लिए लोक-वैतना का अवलम्बन ग्रहण किया है। ऐतिहासिक काल में हिन्दी साहित्य जन जीवन से अलग हो गया था। भारतेन्दु की इस बात का श्रेय है कि उन्होंने साहित्य और जीवन का सम्पर्क स्थापित कर इस विच्छेद की गहरी खाई को पाट दिया।^१

सुखान्त प्रेम-नाटकों में भारतेन्दु युगीन नाटककारों का प्रमुख उद्देश्य सामाजिक सुधार रहा है। 'अभिज्ञान शाकुन्तल' और 'उष्णा-अनिरुद्ध' की प्रेमकथाओं का लोकव्यापी रूप ही उपर्युक्त प्रेमनाटकों में समाहित है, अतः कथा-प्रवाह का नाट्य रूप सहजः उद्बोधनीय हो गया है।

दुःखान्त प्रेम नाटक

भारतीय विचारणा के अनुसार सुखद प्रेम प्रसंगों की ही सर्वत्र स्मरण किया गया है। इसीलिए अटिलता एवं अनैक व्यूहों के होते हुए भी यहां आशावादी

१- डा० किशोरीलाल गुप्त — भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि, पृ० २।

दृष्टिगोण प्रमुख रहा है। भारतेन्दुयुगीन दुस्सन्त नाटकों श्रीनिवास दास के 'रणधीर प्रेममोहिनी' [सन् १८७७ ई०] का उल्लेख प्रमुख रूप में हुआ है।

रणधीर और प्रेममोहिनी का प्रेम अत्यधिक व्यापक है। नाटककार ने दोनों के वारिरित्र वैशिष्ट्य को उभारा है और वियोगावस्था का प्रभावी चित्रण किया है। शालिग्राम वैश्य ने 'लावण्यमती सुदर्शन' [सन् १८६० ई०] में 'रणधीर प्रेममोहिनी' से प्रेरणा ग्रहण की है। इस नाटक में धर्म कथा के तत्वों को प्रविष्ट किया गया है और पवित्र-प्रवर्तित प्रेम-कथाओं का आधार लिखा गया है। राक्षस नायक को उठा कर ले जाता है। नारिका-युक्त मानवी भाषा प्रयुक्त करते हैं। सुजोवनक चिता में प्रवेश करता है। तब एक महापुरुष प्रकट होकर सच्चा अन्तर्ध्यान हो जाता है।

'लावण्यमती सुदर्शन' का यथावत् अनुकरण श्री जवाहरलाल वैद्य ने 'कमल मोहिनी भंवर सिंह' [सन् १८६६ ई०] नाटक में किया है। इस नाटक में भी नायक एवं नायिका एक दूसरे का स्वप्न में दर्शन करके प्रभावित होते हैं। नायिका की सखी योगिन बनकर नायक को लाती है। प्रेम-मार्ग में कठिना-व्याप्त उपस्थित होती है। सखी नायक को एक स्थान पर रोककर नायिका को लेने जाती है। नायिका उस स्थल पर पहुँचती है। नायक के गोपनीय ढंग से लोप होने पर नायक के माता-पिता चतुर्विध होते हैं। नायिका अपने पिता के पास उमावार भिजवाती है कि नायक सामान्य युवक नहीं अपितु राजकुमार है। इसी बीच बधिर द्वारा नायक का प्राणान्त हो जाता है, ऐसी स्थिति को सहन न कर सकने के कारण नायिका भी प्राण त्याग देती है। प्रयास यह होता है कि नायक को बचा लिया जाए किन्तु असफलता मिलती है, क्योंकि राजा के बचाव सम्बन्धी आदेश के पूर्व ही नायक को फाँसी हो जाती है। नायिका के माता-पिता भी शोक-वन्तस्त होकर विलाप करते हैं और प्राण त्याग कर देते हैं। प्रस्तुत नाटक सुश्रुतापूर्वक दुस्सन्त नाटक में परिवर्तित किया जा सकता है। यह नाटककार का अनुकरण-आत्मक-संकल्प ही है कि उसने फलागम को दुस्सन्त बना दिया है। इसमें

कथा-पारंपरिक लोककथात्मक स्वरूप से भिन्न नहीं है। भारतेन्दु युग के संयोगात्मक नाटकों में प्रेम की अनिवार्य एवं व्यापक सत्ता की प्रतिष्ठा प्रधान की गयी है, तो वियोगात्मक-नाटकों में प्रेम की सर्वथा त्याज्य तथा अशुभ फलदायी सिद्ध करने का प्रयास किया गया है।

श्री बालमुकुन्द ने 'गंगोत्री' [सन् १८६७ ई०] नाटक में कथानक को कौतुहलपूर्ण बनाने का प्रयास किया गया है। 'रणधीर प्रेमपीहिनी' के कथा प्रसंगों का इस नाटक पर प्रभाव है। इस नाटक की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशिष्टता यह है कि नायिका निम्न-वर्ग की युवती है। भारतेन्दु जी का यही प्रयास था कि निम्न वर्ग के लोगों की भी नाट्य साहित्य में स्थान मिले, ताकि नाट्य-विधा लोक-जीवन में अधिकतम प्रतिष्ठित हो सके। प्राचीन शास्त्रीय परम्परा में उच्च वर्ग की ही पात्रता मिली थी, जिसे नाट्य-साहित्य में अवरोध रहा है। भारतेन्दु ने इस तथ्य की मतीभांति स्वीकार कर लिया था। तभी तो वे, "अनेक वर्गों, जातियों के लोगों की उनकी प्रधान विशेषताओं के साथ रंगमंच पर ले जाना" चाहते थे। श्री बालमुकुन्द ने भारतेन्दु की इस विचारणा का प्रतिफलन प्रस्तुत नाटक में किया है।

सुखान्त प्रेम नाटकों की भांति ही भारतेन्दु युगिन सुखान्त प्रेम नाटकों में भी सामाजिक समस्याओं के विविध पक्षों का जाका-त्कार नाटककारों ने किया है। इन नाटकों का कथा-रूप भी लोककथात्मक स्वरूप से भिन्न नहीं है।

भारतेन्दु युग के लोककथात्मक अन्य रूपों पर आधारित नाटक

ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित नाटक

पूरी कथन की पुनरावृत्ति अप्रासंगिक न होगी कि ऐतिहासिक तथ्य भी प्रेम गाथा को प्रभावित करते हैं।^१ प्रत्येक देश में अनेक प्रकार की लोक कहानियाँ

प्रचलित होती हैं। इनमें कुछ एक का सम्बन्ध इतिहास से भी जुड़ा रहता है। ऐसी ऐतिहासिक या इतिहासाश्रित कहानियाँ अपने मूल रूप में उतनी ही लोकाकर्षक और आत्मनिष्ठ होती हैं, जितनी कि सामान्य प्रकार की लोक कथाएँ। इनमें केवल ऐतिहासिक व्यक्तियों का नाम भर रहता है, बाकी सब कुछ कल्पनाश्रित। परम्परागत लोकिक कथारूपों और कथानक-रूपों के परिधान में ये नाम अपना ऐतिहासिक निजत्व खो चुके होते हैं और आत्मनिष्ठ एवं निजधरी कल्पना कथानायकों से भिन्न नहीं जान पड़ते।^१ अतएव रोमान्सपूर्ण ऐतिहासिक कथानकों पर विचार करना न्यायपूर्ण होगा कि ऐतिहासिक तथ्यों के साथ ही कथानक कहाँ तक लोकान्मुख है? क्योंकि, 'हम देश के कवियों ने इतिहास लेखन की ओर कम ध्यान दिया है। उन्होंने जब कभी इतिहास प्रसिद्ध पात्रों को अपनी रचना का आधार बनाया है, तो उनके सम्मुख कवि-कल्पना का पथ काफी प्रशस्त रहा है। परिणामस्वरूप वे पात्र या तो देवत्व की भूमिका में प्रतिष्ठित हो गये हैं या काल्पनिक निजधरी कथा-नायकों के रोमान्सी प्रतीक बन गए हैं।'^२

भारतेन्दु युग में यद्यपि ऐतिहासिक नाटकों की रचना कम हुई है, तथापि उपलब्ध नाटकों के आधार पर यह कहा जा सकता है -- 'ऐतिहासिक नाटक लिखने के दो ढंग हैं। एक ढंग है कि नाटककार किसी ऐतिहासिक प्रसंग या चरित्र से प्रभावित होकर उसकी नाटक में स्थान देता है। दूसरा ढंग है कि नाटककार पहले से एक विचार या दृष्टिकोण अपनाए होता है, और उसी की पुष्टि के लिए इतिहास से पात्र या प्रसंग ढूँढ़ कर नाटक लिखता है। भारतेन्दुकालीन नाटककारों ने दूसरे ढंग को अपनाया है।'^३ इस प्रकार ऐतिहासिक पात्रों और प्रसंगों के प्रयोग से नाटक ऐतिहासिक नाटकों की श्रेणी

१- डा० रवीन्द्र प्रमोद -- हिन्दी भक्तिसाहित्य में लोकतत्व, पृ० ६०।

२- डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी -- हिन्दी साहित्य, पृ० ६८।

३- डा० गोपीनाथ तिवारी -- भारतेन्दुकालीन नाटक साहित्य, पृ० २२६।

में नहीं लाया जा सकता है। आलोच्य युग के 'सती प्रताप', 'मीराबाई' नाटकों का इस दृष्टि से अनुशीलन विशेष महत्व रखता है।

भारतेन्दु सचि हरिश्चन्द्र ने 'सती प्रताप'^१ में पातिव्रत धर्म के महत्व की निरूपित किया है। प्रथम दृश्य में नाटककार ने पातिव्रत-धर्म का गौरव-गीत प्रस्तुत किया है --

“जग में पातिव्रत सम नहिं जान ।
नारि हेतु कौन धर्म न कुजो जग में यासु समान ।
असुया, सीता, सावित्री उनके चरित्र प्रमान ।”

सावित्री-सत्यवान की धर्म कथा में लोकमानस को सर्वत्र उल्लिखित करती रही है। पार्वती, सीता आदि नारियाँ का श्रद्धाभाव से स्मरण किया जाता है। प्रस्तुत नाटक में सावित्री द्वारा नाटककार ने कहा है -- “सर्व सम्पत्ति की मूल कारणस्वरूपा देवी पार्वती भगवान् भूतनाथ की परिचर्या इस वैष्णव से क्यों करतीं ? सती कुलतिलका देवी जनकनंदिनी की अयोध्या के बड़े-बड़े स्वर्ग विनिन्दक प्रासाद और शही दुर्लभ गृह-सामग्री ने भी वन की पर्णकुटी और पर्वतशिला अतिप्रिय थी क्योंकि सुख तो केवल प्राणनाथ की वरणा परिचर्या में है।”^२ लावनी, हृष्य आदि के प्रयोग ने लोकोन्मुखता स्पष्ट होती है। नारद भगवान् के प्रति लोक में असीम श्रद्धा है। नारद का नाटक में अवतरण एक विशिष्ट महत्व रखता है। प्रस्तुत नाटक में नारद के माध्यम से नाटककार ने संदेश प्रस्तुत किया है -- “राजन् ! तुम्हारे पास सत्यधन, तपोधन, धैर्यधन अनेक धन हैं, तुम क्यों दीन हो ? और आज हम तुमको एक अति शुभ संदेश देने के लिए आए हैं। तुम्हारे पुत्र का विवाह-सम्बन्ध हम की स्थिर किए जाते हैं। सावित्री के पिता को भी समझा जाए है

१- रुद्र काशिकेय -- भारतेन्दु ग्रंथावली, पृ० २३३ ।

२- वही, पृ० २४० ।

कि उनकी कन्या सावित्री अपने उज्ज्वल पातिव्रत धर्म के प्रभाव से सब आपत्तियों को उल्लंघन करके सुखपूर्वक कालयापन करेगी और अपने पवित्र चरित्र से दोनों कुल का मान बढ़ाएगी। तुमने भी यही कहने जाये हैं कि सब संदेह छोड़कर विवाह का बन्धन पक्का करो।”^१ इन कथन के माध्यम से नाटक की भावी घटनाओं का संकेत मिलता है और इस अपूर्ण नाटक के सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि नाटककार ने ऐतिहासिकता के आधार पर युग-बोध का सामंजस्य प्रभावशाली रूप में किया है, अतः नाटक ऐतिहासिकता की सीमा को पार करके लोकप्रिय बन गया है।

‘मीराबाई’ नाटक [सन् १८६० ई०] में पं० बलदेव प्रसाद ने अकबर और राणा कुम्भा की समकालीन बनाकर नाट्य-रचना की है। प्रस्तुत नाटक में धर्म कथा से सम्बन्धित तत्वों का प्रचुर रूप में समावेश है। तलवार का टूट जाना, मीराबाई का गड्ढे में जीवित रहना, कृष्ण के साथ अदृश्य होना, कृष्ण का मूर्ति में से बाहर आकर दुन्दरी मीरा का सामीप्य ग्रहण करना और महाराणा कुम्भा का मुर्च्छित होना आदि अनेक प्रयोगों का समाविष्ट करके नाटककार आश्चर्यमंडित परिधान से प्रस्तुत नाटक को युक्त करने के लिए तत्पर है।

सामयिक सामाजिक धर्म पर आधारित नाटक

भारतेन्दु युग में ‘सामयिक सामाजिक धर्म’ से सम्बन्धित नाटक तत्कालीन सामाजिक कुरीतियों पर तीव्र प्रहार करते हैं। प्रत्येक जागरूक साहित्यकार जहाँ एक ओर लोक कथानकों का आश्रय ग्रहण करता है, वहीं दूसरी ओर युगिन समस्याओं में से कथानकों का चयन करता है। अस्तु, इस विचारधारा के अंतर्गत

१- रुद्र काशिकीय -- भारतेन्दु ग्रंथावली, पृ० २४२।

समाहित भारतेन्दु युगीन नाट्य साहित्य सा-धर्म ने प्रेरित कहा जा सकता है। लेकिन धर्म और सा धर्म में विभेद यही है कि लौकिक-धर्म में परम्परा-प्रवाह की उपस्थिति रहती है, तो 'युग-धर्म' में सामयिक मूल्यों के आधार पर निमित्त तथ्यों की अभिव्यंजना रहती है। प्रथम के अन्तर्गत राम, कृष्ण, नहुष, हरिश्चन्द्र, ध्रुव, प्रह्लाद, सावित्री, सम्यंती आदि ने सम्बन्धित कथानकों को समाहित किया जा सकता है, तो द्वितीय के अन्तर्गत आर्य समाज, ब्रह्म समाज, थियोसोफिकल सोसाइटी के प्रवर्तकों का स्थान है। आगामी अध्याय में 'कथा रुढ़ि' के अन्तर्गत इन नाटकों पर भी विचार किया जायगा क्योंकि मात्र कथानक की दृष्टि से 'सामयिक सामाजिक नाटक' लौकोन्मुख नहीं हैं किन्तु कथा-रुढ़ि की दृष्टि से स्थान-स्थान पर लोक-प्रचलित रुढ़ियों के उपयोग की सम्भावना व्यक्त होती है। भारतेन्दु के 'अंधेर नगरी' की विवेचना करते हुए डा० दशरथ बोफा ने ठीक ही लिखा है कि -- "इस नाटक में ग्रामीण जनता में नै जाग्रोपान्त जितना हास्य-विनोद पाया, उतना ही राष्ट्रीयता का पाठ भी अनजाने सीख लिया। अन्यायी राजा को अंत में टिकटी पर चढ़ाकर भारतेन्दु जी भविष्य में भारत उद्धार की ओर संकेत करते हैं। बनेले इस नाटक में जितना उपकार ग्रामीण जनता का किया, उतना कदाचित् क्वावधि किसी अन्य नाटक ने किया हो।"^१

सामयिक राजनीति पर आधारित नाटक

'सामयिक समाज' के साथ ही तत्कालीन राजनीति के विरोध में भारतेन्दु युगीन नाटककारों ने नाट्य-रचना की है। सत्ता के अधिकारी वर्ग की नीतियों एवं जनता के मनोभावों के आधार पर निमित्त नीतियों में किसी न किसी स्तर पर वैषम्यता रहती है। भारतेन्दु युग में अंग्रेजी शासन का प्रभुत्व रहा, जिनका

१- डा० दशरथ बोफा -- हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, पृ० १८१-८२।

प्रमुख उद्देश्य आर्थिक शोषण था, अतएव भारतेन्दुयुगीन साहित्यकारों ने समग्र औज़ी शासन का विरोध किया।^१ राजनीतिक साहित्य वर्णों तक जागे-पीछे रखा जाता रहा और युग-चेतना को उत्तने मद्धिम न होने दिया। भारतेन्दु से लेकर, जिनका उद्देश्य ही लोकसाहित्य की रचना करना था, गदाधर सिंह तक जो अपने ठोस अनुभव के कारण लेखकों की श्रेणी में जा मिले -- सभी ने उस युग की संवारा है। कुछ ने जान-बूझ कर, कुछ ने बिना जाने सरकार की नीति और देश-विदेश में फैले हुए साम्राज्यवाद की पशुता को लोगों पर प्रकट कर दिया। दरबारी संस्कृति को इन सब बातों से भारी धक्का लगा और साहित्य ने जनता के मन को उधर से हटा कर नए आन्दोलनों की ओर लगाया।^१ अतः इस आधार पर अनेक नाटकों की रचना हुई, जिसमें युग-बोध का प्राजल स्वरूप प्रबल रूप में मुखरित हुआ है। भारतेन्दुयुगीन साहित्यकार जनसमूह के मानस को प्रेरित-उत्तेजित करना चाहते थे। अतएव कथानक को प्रभावी रूप देने के लिए लौकिक रूप रूढ़ियों का प्रचुर प्रयोग भी हुआ है जिनपर आगामी अध्याय में विचार किया जायगा।

शरत्कुमार सुतोपाध्याय के भारतोद्धारक नाटक में धर्मकथा का रूप प्रस्तुत हुआ है। आकाशवाणी-प्रसंग तथा देवी सरस्वती का प्रकट होकर वरदान के प्रसंग को नाटककार ने उपस्थित करके नाटक को लोकोन्मुख बनाने का प्रयास किया है, अतएव इस दृष्टि से राजनीतिक नाटकों का अध्ययन अनिवार्य ही जाता है।

लौकिकी नाट्य-परम्परा पर आधारित नाटक

लौकिकी नाट्य परम्परा के माध्यम से असीम काल से लोक का प्राणी अनुरंजन के साथ ही सद्शिक्षा प्राप्त करता रहा है। भारतेन्दु के पूर्व लोक-

१- डा० रामबिलास शर्मा, -- भारतेन्दु युग, पृ० १६।

जीवन में विविध लोक धर्मों नाट्य परम्पराएं विकसित हो रही थीं। 'भारतेन्दु' के नाटककारों ने लोक में व्याप्त नाट्य-परम्पराओं से प्रेरणा ग्रहण की और कथानक तथा रंगमंचीय शिल्प की विस्तार प्रदान कीं। 'भारती हरण' नाटक में इस और ध्यानाकर्षण अपेक्षित है -- "एक यह कि रत्नों का मनोरंजन हो और दूसरा यह है कि नाटक रचना ऐसी हो कि जिससे श्रोताओं की प्रकृति, कित्, मन की उमंग किंवित् भी नीच श्रेणी की न होने पावे।"^१

लोक-नाट्य परम्परा से प्रभाव ग्रहण कर 'अमानत' ने सन् १८५३ ई० में 'एन्ड्रसभा' की रचना की। 'एन्ड्रसभा' की लोकप्रियता से प्रभावित होकर पारसियां ने थियेट्रिकल कम्पनियों की स्थापना की, जतः रात-शैली का इन नाटकों पर पूर्ण प्रभाव है। इस परम्परा के अन्तर्गत लिखे गए नाटकों का विरोध इसलिए हुआ कि इन नाटककारों ने लोकतत्वों का आश्रय तो लिया किन्तु उसका स्वरूप कुत्थित कर दिया, क्योंकि इनका प्रमुख उद्देश्य मनोरंजन था। अदाचित् इसीलिए 'एन्ड्रसभा' के विरोध में भारतेन्दु ने 'बंदर सभा' की रचना की।

“सभा में वास्तों बंदर की आमद आमद है।

गधे और फूलों के अफसर जी आमद आमद है।

पाजी हूँ मैं काम का बंदर मेरा नाम।

बिन फुजूल बूढ़े फिर मुझी नहीं आराम ॥

सुनो रे मेरे डेव के दिल को नहीं करार।

जल्दी मेरे वास्ते सभा करो तैयार ॥”^२

भारतेन्दुयुगीन नाटकों की अभिवृद्धि में नाटक के इस विरोधी स्वरूप के कारण युगीन साहित्यकार लोकप्रयोगी दृष्टि से नाट्य-रचना में सजग रहे हैं।

१- देवकीनन्दन त्रिपाठी -- भारती हरण [सन् १८६८ ई०], भूमिका।

२- हरिश्चन्द्र चन्द्रिका -- खण्ड ३३, जुलाई, सन् १८७६ ई०।

वैदेह नाटकों का भारतेन्दु-शुा के उत्तरकालीन साहित्यकारों पर प्रभाव परिलक्षित होता है।

भारतेन्दुशुािन उपर्युक्त नाटक लोककथात्मक विविध रूपों से समन्वित रहे हैं। ये नाटक ऐतिहासिक तथ्यों, सामयिक समाज, सामयिक राजनीति तथा लोकधर्मी नाट्य परम्परा के रूप में से सम्बन्धित रहे हैं और इनके मूल में लोक तत्वों की विविध स्तरों पर प्रतिष्ठा मिली है।

भारतेन्दुशुािन नाटककारों के समस्त लोक ज्ञानकों की एक व्यापक पृष्ठ-भूमि उपस्थित थी। चूंकि नाटककार लोकमानस को प्रेरित-उत्तेजित कर उसे आ-बोध से संयुक्त करना चाहते थे, अतएव लोक-कथाओं की ऐजस्विता की ग्रहण करना उनके लिए सहज स्वाभाविक ही गया था। लोककथा के सम्मोहक एवं प्रभावी स्वरूप से संवेदनशील सम्बन्ध रहने के कारण ही नाट्य-शिल्प का आन्तरिक स्वरूप प्राञ्जल हो सका है और अनेक लोकतत्त्व स्वतः समन्वित हो गए हैं। इस प्रकार लोक-कथाओं के प्रति नाटककारों की प्रगाढ़ आस्था ही भारतेन्दु-शुा की लोकवेतना से अधिकाधिक आवेष्टित कर सकी है और विविध स्तरों पर लोकतत्वों का प्रस्फुटन संभावित हो सका है।

अध्याय - ३

भारतेन्दु युग का साहित्य में लोक-दि

लोककवि का स्वरूप

लोक कथानकों में बार-बार प्रयुक्त होने वाले समानार्थी विचारों अथवा घटनाओं को लोककवि की संज्ञा से सम्बोधित किया जाता है। ये विचार या घटना-तन्तु प्रभावी एवं सुसम्बन्धित कथानकों के निर्माण एवं विकास में योग प्रदान करने में सक्षम होते हैं। उदाहरणार्थ किसी नारी का धरती में समा जाना^१ एक घटना ही समझी है, किन्तु यही घटना अनेक कथानकों में विभिन्न लक्ष्यों की पूर्ति के लिए जब प्रयुक्त की जाती है, तब यह घटना एक कवि का रूप धारण कर लेती है। हमारे देश के साहित्य में कथानक की गति और घुमाव देने के लिए कुछ ऐसे अभिप्राय [कवियों] बहुत दीर्घ काल से व्यवहृत होते आए हैं, जो बहुत थोड़ी दूर तक यथार्थ होते हैं और जो आगे चल कर कथानक कवि में बदल गए हैं।^२ आधुनिक समीक्षा के पारश्वात्य विद्वान् टी० शिपले ने अभिप्राय [कवि] का अर्थ -- "किसी कृति की कोई रूपगत विशेषता" -- के रूप में निरूपित किया है। उनकी धारणा के अनुसार कवियों का तात्पर्य -- "उस शब्द अथवा उस विचार से है, जो एक ही ताने में ढले जान पड़ते हैं और किसी एक कृति अथवा एक ही कवि की भिन्न-भिन्न कृतियों में एक जैसी परिस्थितियाँ अथवा एक जैसी मनःस्थिति और प्रभाव उत्पन्न करने के लिए एकान्विक बार प्रयुक्त होते हैं।"^३

१- 'रामलीला नाटक', 'सीताहरण नाटक', 'मदनमंजरी नाटक', 'बृहन्नला', 'सती चरित्र', 'रणधीर प्रेम-मोहिनी', 'सत्य हरिश्चन्द्र' आदि नाटकों में यह कवि प्रयुक्त हुई है।

२- डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी -- हिन्दी साहित्य का आधिकारिक, पृ० ७४।

३- टी० शिपले -- डिक्शनरी ऑफ बर्ड लिटरेरी टर्म्स, पृ० २७४ [लन्दन, १९५५]।

अनिषात्त्व का शिष्ट तादित्य में प्रयुक्त जग-रुद्धि का सुख्याः तौ-
तादित्य और तौ-रुद्धि में सम्बन्धित होती हैं। भारोन्दु-रुद्धि के
नादरुद्धि में तौ-रुद्धि के रूप में प्रकट होता है, अतः उनके
नादरुद्धि में रुद्धि का उक्त रूप में अनिषिष्ट होता अनिषिष्ट हो
जाता है।

विषय के दृष्टि में तौ-रुद्धि में दो वर्गों में १५ प्रकार
विभाजित किया जा सकता है --

अ- घटना-प्रधान

ब- विचार अथवा विश्वास प्रधान

[अ] घटना प्रधान

श्रेणी :- घड़े का आलेख के समय किति मिले वन में घड़ना, घात
मुक्त आना, भावनापर पर किति घड़ना नारी का भावनापर अथवा
गड़ना अथवा के समय घड़ना में किति हो जाना, नारी अथवा अथवा का
घड़ना और कथकतक के कथकतक के नायक-नायिका के प्राणरक्षा
किति घड़ना अथवा रुद्धि -- का वर्ग के कथकतक कथकतक होती है।

[ब] विचार अथवा विश्वास प्रधान

श्रेणी :- स्वयं में किति घड़ना का किति नारी का अथवा किति
नारी का किति घड़ना का किति नारी का किति घड़ना अथवा अथवा, कथ-
कथ का कथ-कथ का कथ का किति परिवर्तित होता यदि विचार का
विश्वास के कथकतक रुद्धि का वर्ग के कथकतक कथकतक होती है।

भारतीय ज्ञान के अनिष्टाओं के अध्ययन में और अनिष्टाओं के
और स्टीम ने ध्यान आकृष्ट किया। उन्होंने अनिष्टाओं की घड़नाओं का
नाम दिया। उनके अनुसार -- "घड़ना" बाह्य किति मनीषित अथवा न ही
अथवा गड़ना अथवा के समान है, अतः वह किति एक कथकतक में कथकतक

जो और जमाने की बातें इस बाहुल्य का कारण के समान बिना उपयुक्त घटनाओं के होना है।^१ वास्तव में भारत में अमेरिकन और-एशियन गीतावली के जमाने की २१ वीं, ४० वीं और ४९ वीं शताब्दी में भारतीय जमाने की ३१ वीं पर महत्वपूर्ण बातें लिखी हैं। येंकर बनीकन ने 'द बीज काव ड स्टोरी'^२ के नई भाग के अन्त में भारतीय जमाने की ३१ वीं पर महत्वपूर्ण बातें लिखी हैं। इस किताब का प्रकाश है :--

[१] प्रिया की 'दीहद जमाना' की सुविधा के लिए प्रिय बारा दुआर और कठिन कार्य का किया जाता।

[२] परभाव-प्रवेश का कार्य जिस द्वारे व्यक्ति के निर्वाचन का कृत करार है प्रविष्ट हो जाता।

[३] पद-पदार्थों का राधापति के वा री गुप्त रूप से पुनः प्रविष्टि रहस्य की जान लेना।

[४] जिस व्यक्ति का जिस व्यक्ति के प्रभाव-निवेदन और काफ़ी होने पर प्रतिहार की भावना है बराबर का होना-प्राप्ति।

[५] जिस प्रेत, राधापति या किन्तु-पद से जिस व्यक्ति का वह वादा करना कि बहुत कार्य सम्पन्न करने के उपरान्त वह अवश्य वादा करना, संप्रति उनके प्राप्ति व कि जावे एवं उनकी सुविधा की जान।

[६] भविष्य कृत स्वप्न का कार्य स्वप्न के माध्यम से जाने वाली घटनाओं और उन-कृत परिस्थितियों का जान।

[७] जिस कठिन कार्य की सम्पन्न करने के परभाव जिस राधापति काये राज्य और राजकुमारी की प्राप्ति।

१- टेम्पल एण्ड स्टोरी -- 'वाल्ड और विरीन', पृष्ठ १२१।

- [८८] प्रस्तर सुर्तियों का प्रमुख रूप में जेबिया को माना ।
- [८९] शरीर, धर्म, मानस, ज्ञान, और हृदय नामक पाँच दिग्गज अधि-
कारियों द्वारा राजा का बन ।
- [९०] पूजा-पाठ, मन्त्र-मन्त्र ज्ञान का अनुष्ठान द्वारा मन्त्राधीन्य ।
- [९१] गरुड़ एवं अन्य किसी विजात पक्षी के पीठ पर बैठ कर या ऊँचे
पंखों के सहारे उड़कर एक स्थान से दूसरे स्थान जाता एक स्थान से दूसरे
स्थान की यात्रा करना ।
- [९२] समुद्र-यात्रा, जलमार्ग-दुर्घटना और साधकत्व के सहारे ज्ञान की
अन्य प्रकार से बहकर गायक-नायिका के प्राणरक्षा ।
- [९३] घोड़े का मार्ग चुनना, किसी उजाड़ नगर या जंगल में पहुँचना और
वहाँ किसी स्त्री के पीठ का प्रेम-व्यापार का विचार ।
- [९४] यात्रा या किसी अन्य कार्य में आरम्भ करने से पूर्व हठात्मक शक्ति और
उन्नत विचार ।
- [९५] प्रेम-व्यापार ज्ञान किसी अन्य अवसर पर ज्ञान-यात्रा द्वारा विज्ञान में
मग्न होकर या किसी अन्य प्रकार से ब्रह्म प्राण-स्थान की धमति ।
- [९६] किसी वृद्ध द्वारा लोहे से बना फल लाया जाना जिसे हाथों पर बूझ
जाता हो वाद ज्ञान रूप व्यक्ति सुन्दर हो जाय ।
- [९७] सत्यक्रिया या सतक्रिया काण्ड किसी निरिच्छा प्रयोजन के सिद्धि
के लिए किसी व्यक्ति द्वारा सत्य बचन की वादति : जो लोहे
क्यानायक रहे कि यदि मैं जीवन में किसी का अपकार न किया हो
तो मेरा मृत पुत्र जीवित हो जाय ।

- 【१८】 त्रिणि रङ्ग-व्यक्ति त्रिणि द्वारे व्यक्ति, पद या वस्तु में प्राण जाना ।
- 【१९】 त्रिणि व्यक्ति तारा त्रिणि परादे त्रिणि के पास छोड़े वणि त्रिणि के वेष धारण करते जाना -- रूप परिवर्तन ।
- 【२०】 पुरुष त्रिणि रूप में और त्रिणि त्रिणि पुरुष रूप में बदल जाना -- त्रिणि परिवर्तन ।
- 【२१】 वायव्य और त्रिणि नाथानी के न तन्त्र-मन्त्र के रूप में छुड़ ।
- 【२२】 अभिज्ञान या वशिष्ठाजी -- जंठि या त्रिणि अन्य वस्तु के नाथ के प्रिय तारा प्रिया जगता प्रिया तारा प्रिय की पहचान ।
- 【२३】 कपयुग्म भवण जगता सम्पन्न दान या विद्रु दान के माध्यम से प्रेमी-त्वपि ।
- 【२४】 त्रिणि जगता या त्रिणि रङ्ग-व्यक्ति वक्त और श्रोता के रूप में जाने जाने पुनः-पुनः, पश्चात-वर्तमान या तीनों जगता पक्ष ।
- 【२५】 अभिज्ञाप कर्त-वरदान, जादू-टोना, तन्त्र-मन्त्र आदि के विविध प्रयोग ।
- 【२६】 त्रिनिवाहक के रूप में हो, ज्योति, बुद्ध या अन्य पक्ष ।
- 【२७】 जागृतावस्था ।

त्रिनि-कड़ियाँ त्रिनि-ज्ञानों की विशिष्ट जाँ हैं । यह त्रिनि-ज्ञान ज्योति त्रिनि-कड़ियों के समन्वय से त्रिनि-ज्ञानों के रूप में ग्रहण करती है, जगता कड़ियों में त्रिनि-ज्ञानों की अनुभूति एवं ज्योति-पक्षों के रूप में समझा दिया रहती है । उपर्युक्त त्रिनि-कड़ियाँ जगता-रूप के विशेषण के उपरान्त ही निरूपित की गई हैं । यह दृष्टि से जगता-विशेष के वास्तविक अनुसंधान से यह स्पष्ट होता है कि वास्तव-जगतात्मक रूप नामक घटनाओं से सम्बन्धित होने के बाद ही जगता के कार्य

आधार का आवागमनना जो गति प्रदान करने के लिए तीव्र-कड़ियों का वाहिकारों के लिए हीना का प्रयोग किया है।

भारतेन्दु युनि नाटकों में तीव्र-कड़ियों के विविध रूप

भारतेन्दु-युनि के नाटकारों ने तीव्र आत्मन तत्वों को प्रचुर रूप में प्रयुक्त किया है। अतः तीव्रता के आन्तरिक बल को प्रजन एवं पुष्ट करने वाले अनिष्टाचरों (कड़ियों) का विचार आना-विह्वलन है उपनयन होता है। अत्यन्त की वृद्धि की दृष्टि से भारतेन्दुयुनि नाटकों में अत्यन्त तीव्र आत्मन कड़ियों का निम्नलिखित वर्गों में विभाजन उचित प्रतीत होता है :--

- १- तीव्रविचारों के सम्बन्धित कड़ियाँ।
- २- अमानवीय शक्तियों के सम्बन्धित कड़ियाँ।
- ३- वैयक्तिक जगत् अथवा अतीति प्राणियों के सम्बन्धित कड़ियाँ।
- ४- पशु-पक्षियों के सम्बन्धित कड़ियाँ।
- ५- अनिष्टाचर-वरदान और तन्त्र-मन्त्र के संबंधित कड़ियाँ।
- ६- अन्य कड़ियाँ।

तीव्रविचारों के सम्बन्धित कड़ियाँ

तीव्रभाव में माना प्रकार के विचार प्रवृत्ति को जानें हैं, जिनमें सामान्य रूप से अंधविश्वास कला उपयुक्त होता। इस प्रकार के विचारों के आधार पर भारतेन्दु युनि नाटकों-वाक्य की प्रमुख आत्मन-कड़ियाँ निम्नलिखित हैं :--

- अ- स्वप्न द्वारा भावी घटनाओं की सूचना
- ब- इस दुनियाँ का माध्यम से अविद्य की रूपरेखा

ग- अस्त्राँ न विरण

व- जातज्ञाणः

[3] स्वप्न द्वारा नाकी पञ्जाबी के जन्म ----- हा इति के जन्मों को चना प्रमाणित है, उनमें मुख्य है -- नायक या किसी अन्य पात्र द्वारा स्वप्न देता जाना और उनके मा को नाकी पञ्जाबी का स्वप्न प्रमाणित होता है। यह भारतीय ज्ञाननों के अत्यधिक प्रमाणित इति है। 'विवा विनोद नाटक' में विवा के वही जन्म कहती है -- 'आज रात्रि ही एक स्वप्न ही होता है, जिसे अतीतपन की हमनी हमी में तभीव सम्पादन करता है।..... रात्रि ही स्वप्न में होता है कि आर्य प्यारी राजकुमारी की बात लेकर कि ज्ञान में देव पूजन की बातें हैं और पूजन करते वक्त समय एक ही स्वप्न हुआ बार बार जा रहा हुआ है और वही राजकुमारी की.....' और यह घटना वस्तु की जाती है, जबकि बार पर उनका वीक्षता है और प्रथम पित्त में प्रतीत्यति हो जाती है। फिर नायक-नायिका का प्रेम-व्यापार विगत जाता है और उधर नायिका का अनुबन्ध नाता-पिता द्वारा 'निम्न' दुखी व्यक्ति के पास की जाता है। नायक विनोद अपने मित्र से कहता है -- 'रात्रि में एक स्वप्न ही बहुत निरुद्ध होता है।.... स्वप्न होता है कि विवा निम्न अमर मूढ़ के पास पहुँची है, यद्यपि वह वही बार नहीं है, किन्तु विवा कर दी गयी है।' यह स्वप्न वस्तु प्रमाणित होता है। नायिका वृत्तान्तों के साक्षरता के कारण बताते एक बूढ़े राजा ने विवाह-वृत्त में बांध की जाती है। नाटककार का यह उद्देश्य था कि ऐसी परिस्थिति में आत्म-परिचय वास्तव में और अपने प्रेमी के पास चली जाएं, अन्ततः हा नाटक में चली जाता है।

'वस्तु हरिश्चन्द्र' में रानी शैव्या स्वप्न देती है, जिसे विवरा वर

१- गोपातराम गहमरी -- विवाविनोद नाटक, पृ० १३ ।

२- वही, पृ० ४७ ।

जबकी तबोही के समान करी है -- बरि । तब की ही तुरे-तुरे खप्प देते हैं कि जब वे तो के उठीं हं नीचा लंप रखा ह । मन्नाह् लुग नी । महाराजा जी जी मीने तारे जंग में कम जगह देता है और अपने जी बाव लीते और रोडिआख जी देता है कि जी तपि जाड लाया है ।^१ गुरुजी के पास तबोही द्वारा उन बहुत खप्प जा मन्नावार पहुँचाता है और वे वा-जाकन जात रोडिआख जी डाजि जुग पर रभाकन्धन बाधित खप्प लाजि जा उपक्रम करो हैं । तब-क्रम में जब रानी जा हरिखन्द ने बाधा लगर डीगा है, जी रानी कहते हैं, 'पिरी रात्रि मी दुइ दुःखप्प देते हैं, जिनसे तिम प्याहुल की रखा है ।'^२ वास्तविकता यह है कि दुःखप्प हरिखन्द ने नही देता है । वे बताते हैं -- खप्प तो हुआ हमने नही देता है । हाँ, यह देता है कि एक छोटी ब्राह्मण विज्ञा जाधन करने जी तब महाविाजों जी लीं ता है और जब में लीं जानकर उनही बवाने गया हं तो वह मुकनी वे रुष्ट की गया है और फिर जब बड़े दिनस ते मीने उठी मनाया है तो उमने मुकने तारा राज्य माँगा है । मीने उठी प्रत्यन करने के कि तारा राज्य दे दिया है ।^३ और का तब-क्रम यहीं से प्रारम्भ होता है । नाटक का सम्पूर्ण विज्ञा और कन्त ही खप्प कीन पर आधारित है । ए प्रकार भारोन्दु ने का नाटक में खप्प-कड़ि जी समुचित विस्तार प्रदान किया है ।

'कल्पवृक्षा नाटक' में खप्प तारा भावी-नीति प्रस्तुत किया गया है । खप्प में कल्पवृक्षा की पत्नी चत्कामा खप्प में फुल्लों से लदा वृक्षा देती है और उसकी प्राप्ति में बाधाजों की समुपस्थित पाती हैं ।^४ भावी क्रम में ऐसा ही होता है । रुक्मिणी हाराता जी पारिजात मिल जाता है, जिनसे चत्कामा

१- रुद्र नास्तिय -- भारोन्दु ग्रंथावली, पृ० २३५ ।

२- वही, पृ० २४८ ।

३- वही, पृ० २४८ ।

४- लक्ष्मणदास मल्ल -- कल्पवृक्षा नाटक, पृ० ३० ।

विश्वो द्रुपित हो जाये है । विद्वान् लक्षापति है निः शान्ति होने में और
नरकभासा में मन फौजानता पण होना है ।

[illegible]

‘जैनता पुंरि’ नाट्य में जोर अर्थात् जो प्रभावपूर्ण ज्ञान प्राप्त है।
जैनता पुंरि की कांत माता ने कहा है -- वास्तवता । क्या तुम, जो
तुम स्वयं देता है कि जिनका धर्म रक्षा है। रात्रि में जैन राहु ने
चन्द्रमा के प्रकाश की पुंरि ने ग्रहण किया हुआ प्रतिष्ठित न करे चन्द्रमा का पुंरि
जाता कर उसे वास्तविकता से निजान दिया।”² जो स्वयं का परिणाम यह
जोता है कि जैनता की बात मननार्थ द्वारा स्थापित नहीं की अर्थात् गार कर
देता है।

‘प्रेम सुन्दर’ में नायिका सुन्दर स्वप्न में लगी होती है। पर कौन कौन है। उसकी पीठ पर हाँटा गड़ा होता है। हाँटा निकल जाने पर लोभ ननुष्य रूप में परिवर्तित हो जाता है। वह स्वप्न के सुगार उसे युवा-प्रेम प्रेषित हो जाता है।

१- शिवनन्दन सहाय -- सुभाषा पण्डित नाट्य, पृ० ३३ ।

२- स्त्रीया ज्ञात -- वंशना सुंदरि, पृ. ७३ ।

२- खिताबन लाल -- प्रेमचंद, पृ० २२ ।

‘रणवीर प्रेममोहिनी’ नाटक में प्रेममोहिनी स्वप्न में ही रहती है।
 ज जाग जाती है। उनके प्रति पति प्रेम-विभूत हो जाते हैं, जो घर जाती
 है किन्तु वह जहाँ जाती है उड़ जाता है। प्रेममोहिनी उनके मित्रों में
 व्याकुल हो जाती है और आँख खुले पर नहीं हो जा सारंग होती रहती है।
 नमिष में ही रहता प्रेमी रणवीर ज वः तानिष्य प्राप्ता होती है।^१

‘यौवन-यौगिनी’ में मायावती रात्रि में डेर पर स्वप्न का विवरण
 प्रस्तुत करती है -- “ज रात हो चुकी है मैं जो अपने प्रागपति हो जाती हूँ
 और उन जहाँ मैं जाँचती हूँ तो देखती हूँ कि, मानों मैं बण्डित हूँ
 जहाँ पर हर जगह है, पैरों उरी मल, नय नई यौगिनी होती और मनो-
 भावना पूरी होती। तो क्या मैं यौगिनी हूँ ? ना, मैं हूँ
 हूँ ? क्या जयराज के लिए यौवने यौगिनी हूँ ? यौगिनी होने से
 यदि उनको पाऊँ तो होने में कुछ फर्क नहीं है।”

रामकथा के सम्बन्ध में नाटकों का स्वप्न विषय सम्प्रदाय है।
 भारतीय स्वप्न में देखती है कि एक ज्ञाता उन्हें उपदेश दे रहा है कि वे नारद
 के वक्ता का पात्र हो जहाँ वन में जाकर बसना रहे। माता जी की
 आज्ञा प्राप्ता कर वे का स्वप्न के अनुसार बसना करती हैं। विष्णु में पिता
 जी वही हो वीर और दुःखी देखती हैं और उनके अनुसार ज्ञातान्तर में वल्लभ
 के स्वयंवासी होने की पुनरा भित्ति है।^२

इसी प्रकार के स्वप्न-वर्णन के अनेकानेक उल्लेख भारतेन्दुचरित नाटकों में
 उपलब्ध होते हैं। उनके माध्यम से नाटककार का उद्देश्य नौक के प्राप्ति का
 क्या-प्राप्त के प्रति विश्वास जागृत करना नाकी घटनाओं का प्रस्तुतीकरण
 रहा है।

१- श्रीनिवासदास -- रणवीर प्रेममोहिनी, पृ० २७।

२- गोपाजराम गहमरी -- यौवन यौगिनी, पृ० २३।

३- कामोदर शास्त्री कप्रे -- रामकथा नाटक, पृ० ५३।

[ब] धुन-धुनों के मा-स ने नविष्य की रूपरेखा

धुन-धुनों के प्रति नील-

प्राणी के गहरि जाया रही है जोर की प्रतिवा रवि नवान्न रहा है ।
 धुनों के मा-स ने नाटकारों ने नविष्य की रूपरेखा प्रस्तुत की है । नारिणी
 का बालें आँस और बालें जुआ का फड़कना धुन-धुन रूप में खिलारा गया है ।
 उनके विनाय में पुरुष के दाहिनी बाँस एवं दाहिनी जुआ का फड़कना धुन
 माना जाता है । 'विश्वविनाय नाटक' में विश्व के बालें आँस फड़काने हैं
 और मोड़ों के उपरान्त के उनके लगे उनके लम्बा राजकुमार का पूर्ण विव-
 रण प्रस्तुत करती है ।^१ 'श्रीदामा नाटक' में 'मौलन जाज का धुन तो
 नील है परा है -- बावन पैसा का बदन बना ।' एवं 'अनुष्ण -- प्यारी
 जाज तो मेरी दाहिनी बाँस फड़कती है और मन की दूर-दूर गया-गया कर
 रहा है, दूर फाँस चुनावना ।'^२ लम्बे धुन-धुनों द्वारा नविष्य की रूपरेखा
 निर्धारित करते हैं ।

'कद्रावती' नाटिका में कद्रावती कद्रावती त्रिजिता की बात धुन-
 कद्रावती करते बालें का का फड़कना देत हर प्राय ही प्राय कहते हैं -- 'जो
 यह कामय में जगता धुन क्यों होता है । हाथ जाता भी गया ही दुरी यस्तु
 है जोर प्रेम की मनुष्य को ऐसा जगता कर पैसा है । मजा वह जहाँ जोर में
 जहाँ -- पर जोर की मरीगे पर फुलता जाता है कि जगता धुन हुआ है तो
 करर जावगे ।'^३

'वत्स हरिकण्ड' नाटक में हरिकण्ड की दाहिनी जुआ फड़कती है,
 जाति मालमय धुन होता है । इन अक्षर पर हरिकण्ड नीचे हैं कि न जाने
 क्या तीनहार है ?^४

१- गोपालराम गहमरी -- विश्व विनाय नाटक, पृ० २४ ।

२- राधाचरण गोस्वामी -- श्रीदामा नाटक, पृ० १७ ।

३- व्यक्तित्व ज्ञेय (संवादक) -- श्रीकद्रावती नाटिका, पृ० ७० ।

४- रुद्र नाथिकेय -- नारतेंदु गृन्थावली, पृ० २०४ ।

‘वमयन्ती सयंर’ में वमयन्ती के तारें बाँध करती है, किसी उँची गाने के प्रथि विशेष जो गाता है कि जो न पटना उपस्थित नैयें, उनके कला में डीगि ।

173 अमलुनी का विवरण

अमलुनी तारा नाकी अंशों का विवरण प्रस्तुत करने के लिये अल-बर्गान के माँति के उल्लेखीय रहे हैं ।

‘तली प्रताप’ नाटक में नायिकी के कार्य बाँध करती है जबकि वास्तविकता उँची गाने की है । यह का अमलुनी के माँति के वास्तविकता की रीखा जाती है, किन्तु वह नहीं रहता है ।² नायिकी उँची गाने में अमलुनी के वास्तविकता के विवरण लेकर हुँडे निजाती है जो उँची सुक्ति जाती है । का प्रकार अमलुनी द्वारा पटनाओं के विवरण परिलक्षित होती है ।

‘शील नायिकी नाटक’ में नायिकी जाती है --³ ।⁴ । गाता यह अल अलुनी की रहे हैं, मेरी गुना माँति फाँटती है, अंश माँति बाँधता है ।⁵ यह अलुनी वास्तविकता के अंशों को जाने के लिये उपस्थित होने के पूर्व-गुना है रहे हैं ।

‘सत्य हरिश्चन्द्र’ नाटक में राजाशास्त्र के अंशों को जाने पर हरिश्चन्द्र अत्यधिक शोकग्रस्त हो जाते हैं और गाते हैं कि मैं मडा आता और बड़ा पापी हूँ । अति बीव धरती गिरती है, उँची गाने वह अलुनी जाता है -- ‘क्या प्रत्यक्ष जा गया ? नहीं । यह बड़ा भारी जातुन हुआ है ।’⁶ वास्तव में

१- पं० बाबूजी नरुड -- वमयन्ती सयंर, पृ० २१ ।

२- राधाकृष्ण दास -- तली प्रताप, पृ० ३६ ।

३- अंशोक्तता -- शील नायिकी नाटक, पृ० ३० ।

४- रुद्र का शिष्य -- सत्य हरिश्चन्द्र, पृ० ३६ ।

यह जानु नहीं है, अपितु जग-प्रसाद में लुहा-वृत्ति की अनिवृत्ति होती है और नाभी प्रसिद्ध की सम्भावना ही नव व्याकुल हो उठता है। हा जानु के पुनर्जाण में परिवर्तित हो जाने की नाटकीयता में इस प्रकार प्रकाश आ जाता है। रामे पूर्ण एक क्षण पर हरिश्चन्द्र काट कर लगी है -- नारायण । नारायण । मेरी तुम ही क्या निता नया । मेरा जगती रहता हूँ । [आगे जाँचता कड़कता] जी समय में यह बात असम्भव नहीं हुआ ? [आश्चर्य हुआ तो कड़कता] मेरे पार माँ की यह फाँस तुम नहीं । न जाने क्या तीन शर है, वा कम क्या तीन शर है, जो शीना का भी हो चुका । कम जो प्यार और तीन बता होती । हा जगन ही नाभी धजायी के प्रति विनम्रता बढ़ा है और जग का निता नया रूप ही होता है ।

रामायण की आधार छाना करने वाले नाटकों में लोक-प्रसिद्ध व्यक्तियों का वर्णन अत्यधिक प्रभावी रूप में किया है। भरत ननिहाल में विमान हैं और व्यक्तियों में 'राम वन गमन' एवं 'दशरथ मरण' की ही लुब्धकता पञ्चारं हो जाती है। रामे वे पूर्णतः अनिष्ट हैं किन्तु उन्हें जो असम्भव हो रहे है, उनमें वे अनुमान ब्रज का रहे हैं कि जग में तीन जीनाहुत है। अतः जो ही वे नगर में प्रसिद्ध होते हैं जो विचार प्रसिद्धा वाणी की वातावरण की लोभपूर्ण बना रहे हैं और तीर कुंठाव बैठकर बीत रहे हैं।^१

जंग जगड में राम-रावण छुट है जगज विनिषण राम ही रावण की नाभि में व्याप्त जगज का रहस्य बताते हैं और राम उठा लोषण करने के लिए बाण बताते हैं, तब गदश, विचार और लो राने को है। पक्षि गण नामुक्ति रूप से ब्रजवाते हैं। पुच्छत तारा उदित होता है और निशार्थ विशाखों के बरिह-पुच्छवक्षित-होते बरती है०००

१- रुद्र काशिक्य -- वल्य हरिश्चन्द्र नाट्य, पृ० ३० ।

२- (क) रामायण विमान्त -- रामायणोक्त नाट्य, पृ० १३ ।

(ख) देवकीनन्दन विमाठी -- रामलीला, पृ० २२ ।

मैं अपना व्यवसाय छोड़ नहीं देता ।

[illegible]

नाशानगर रामायण में विनीषण की उक्ति है -- जहाँ मैं जाता हूँ, वहाँ मैं जायाँ हूँ, वहाँ मैं जायाँ हूँ, वहाँ मैं जायाँ हूँ । अग्नि में मैं जलाना ही निम्न की रानी है । ज्वाला भी धूमरहित नहीं होती । अग्निशक्ति में मैं भी नहीं हूँ, मैं हूँ, मैं हूँ । विष्णु-नागर जादि उत्पन्न होते हैं । मोड़ों के सुन्दर केतु हैं । जीव बारम्बार लज्जित होते हैं । विष्णु-नागर राव के रावें रहते हैं । यहाँ एक जगत् जीव-धाम है । अन्तर्गत है ।

१- ६४१ बानो र शास्त्री ज्ञे -- रामनारायण नाइक, पृष्ठ २४ ।

(६) ज्वाना प्राद -- शीत ज्वाना ना ५०, ५० ११ ।

[१३] अन्योक्तं न वै प्राम -- गी. भा. अ. १३, ५० सू. ।

२- ७० वायुदेवतारण कुवाडा -- वर्षावर्षित : २४ तां सुविता वल्लभ, पृ० ६१ ।

२- वानोवर आल्मी तप्रे -- नाटककार रामायण, पृ० २२-२३ ।

इस अपराध के रूप में जीर्णोद्धार में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण मानी जाती है।
 इस बारे में व्यक्ति सुन-अपराधन में सम्मानना के व्युत्पन्न ने उक्त जाता है
 और वह यह जानने दुष्टि नहीं होती, वह ज्ञान-मार्ग की आरम्भ करता है।
 नारोन्डु ने 'भारत हुँदा' में इस अपराध का निर्माण तकनीकीपूर्ण किया है।¹

[3] आत्मशोध

नामि दुर्दैवता के प्रति तब रक्षी के लिए जाता
 कि वह एक न कि ज्ञान के लिए आत्मशोध का वास्तविकता में नहीं
 ने प्रयोग किया है। जीव-प्रतिष्ठ विचारों के द्वारा आत्मशोध का
 अर्थ है 'केवलाण' अर्थात् वह व्यक्ति जो ज्ञान में स्वतः सुवर्ण हो गई
 हो और किसी सत्यता में किसी प्रकार का संदेह नहीं किया जा सकता हो।
 आत्मिकता का सुवर्णता में ज्ञान की यह सूत्र आत्मशोध द्वारा ही प्राप्त
 होती है कि 'जुंदा' का विचार ही गया है और वह जीव ही माना करने
 जाती है।²

वस्तुतः नारोन्डु-का ने नाटकों की जीवदृष्टि अत्यधिक आपस
 की, ज्ञान का का ने नाटकों में जो कुछ का प्रयोग आत्मिक ही गया
 है। 'जीव वाचिकी'³ 'होमदीय वस्त्र' ⁴ 'रति सुमाधु' ⁵ 'रति सुमाधु' ⁶ कादि
 जीवने नाटकों में आत्मशोध का प्रयोग नारोन्डु-सुनि नाटकों की ने
 किया है।

- १- नारोन्डु हरिश्चन्द्र -- भारत हुँदा नाटक, पृ० २७।
- २- ६० बी० शिव -- वंशुः द्रामा [आत्मकीर्ति] -- १९४८, पृ० २०२।
- ३- कल्याण ज्ञान -- जीव वाचिकी, पृ० २२।
- ४- अहम बहादुर मल्ल -- रति सुमाधु, पृ० ३७।
- ५- राम प्रताप -- होमदीय वस्त्र कर्ण, पृ० १६।
- ६- पं० बाबूराव मट्ट -- कल्याण स्वयंर नाटक, पृ० २८।

‘नव्य हरिवन्द्य’ नाटक में नैपथ्य में अति सूचित है, जो कि जागृत-
वाणी का है एक रूप है। तुम हरिवन्द्य। तावधान। यदि अन्तिम परे ५१
३। तुम्हारेपुत्रा जगताहो मेरु विंशतु पक्षी-न जागृत में नैपथ्य में वंद्य
तुम्हारा सुख है रो है। जागृत वंद्य वंद्य में नैपथ्य अतिन दुःख जिने जो
नहीं हुआ था। नैपथ्य वंद्य विंशतु विर नैपथ्य वंद्य। अन्तिम में नैपथ्य
करी।^१ या वाणी तुम हरिवन्द्य पक्षी-न ऊपर ५१ है और करो
है --^२ करे। यह गीत है २। तुम्हारे जागृत में अन्तिम में नैपथ्य अतिन
न है है। पिता में तावधान है। तुम दुःखों जो फल है जागृत में नैपथ्य
पुत्रा जगता।^३ या पुत्रा या वाणी के मा-या में नैपथ्य वंद्य वंद्य
में अन्तिम रकी में प्रजापति विंशतु उपजाव्य हो है। ‘नव्य हरिवन्द्य’ में कि
जागृत में पुष्प-वृष्टि होती है, जो कि जागृतवाणी का एक रूप है। नव्य
हरिवन्द्य पुष्प-वृष्टि होती है पक्षी-न कता है --^४ करे। यह जागृत में
पुष्प-वृष्टि की है २। नैपथ्य पुष्पा-या नैपथ्य जागृत जागृत होगा। जो एक
जागृत जो जागृत है। ३। वंद्य वंद्य पर रकी निरता हुआ। ऊपरकार, ऊपरकार
जिना करो करो और जिना जागृत अन्तिम विंशतु वंद्य वंद्य है।^५ यह जागृत
जागृत पक्षी-न जो पुष्पवाणी करता है। ‘प्रजापति वन्द्य’ में जागृत-
वाणी होती है --^६ है राजा। तुम्हारे मा या वाणिजागृत जागृत है है।^७
‘नव्य मंथरी’ नाटक में जागृतवाणी होती है, जिसे मंथरी जो जागृतवाणी
प्राप्त होता है --^८ है पुत्री। तुम्हारे जागृत कर, मेरा वंद्य वंद्य वंद्य
अन्तिम में नैपथ्य विंशतु।^९ जो वंद्य वंद्य में जागृतवाणी होती है, जिना
विंशतु जागृत प्रजापति करो तुम कता है --^{१०} है पुष्पि नि जागृत फल पर,

१- रुद्र काशिय -- नव्य हरिवन्द्य नाटक, पृ० ३१।

२- वंद्य, पृ० २२५।

३- वंद्य, पृ० २२५।

४- प्रजापतिवात -- प्रजापति वन्द्य, पृ० २२।

५- गीटिया जगता विंशतु -- नव्य मंथरी, पृ० ३५।

यह सुन्दर घरे जयों जानों ने तुने कि नारा पा तब तो गयी । अग्नि ने तारा
ब्रह्माण्ड बना बना । वो ही जातक में की सुधार कि मे मारा गया ।

रामजी ने वनस्थिता नाटकों में जीउ ज्यों पर जातजाणों का उप-
पान हुआ है । राजा ब्रह्मभानु जीव दे रहे हैं और कि तब जातजाणों
की है कि -- "कुम्भुन्द जयों-जयों पर वो जाँ, वे डा भीषण तो ब्रह्म न
हैं, लौंकि डावें पाँ मिता है, तो ही ब्रह्मण का ।" जातजाणों
का वनस्थ नावी पटित होने पावे सम्पूर्ण ज्ञान ही है । ब्रह्मण का
जातजाणों के आधार पर ही राजा की अपराधी उद्धार को समितान
ही है पार जातजाणों के राजा के रूप में बनने का है । का प्रजार
रहने उद्धार जीव ज्ञान का ही गति प्रदान करता -- दोनों कादिक जातजा-
णों द्वारा वनस्थ होती है । "विता बन्धन" नाटक जयों धनुष-पा में
जातजाणों होती है, "वे सुनि ! तिम ! देताजी !!!" बन करी
कुम्भारे की मनुष्य रूप पर जयों जयों उचित वरन उद्धार सुनिष्ठ में जातार हुआ
कर्म और उचिति ने बड़ी रूप का की है उनही की प्राम के पर दे रखा है
वे कश्यप जातजाण रूप ने जयोंध्यापुरी में नरराज की विमान है । निम
रघुनाथ केष्ठ के पर में जाके जातार की । कभी गति जातार मेरु नारद के
बनन रूप वनस्थ जयों और सम्पूर्ण विमान कर कया का सुम वन देता निडर
होत । का जातजाणों ने जयोंजी की जयार वनस्थ प्राप्ति होता है
और नावी पटनार्जों की विधित् पुनरा उपस्थ होती है ।

१- देवजी नन्दन जिमाठी -- मे वप, पृ० ३७ ।

२- देवजी नन्दन जिमाठी -- रामजीता नाटक, पृ० ७ ।

३- कन्दोकीन की शिव -- विता बन्धन नाटक, पृ० २ ।

अमानवीय शक्तियों के सम्बन्धित शक्तियाँ

भारतेन्दुशर्मा ने नाटकों में लोभ-लालचों के बुरा-प्रवृत्त, राक्षस-राक्षसि, भेरी-जपरा जाति अमानवीय शक्तियों के उत्तेज प्रचुरता की प्रशंसा की है। इनका इन विभिन्न प्रकार से उपलब्ध होना है :—

- (अ) लोनायक के रूप में
- (ब) लोनायिका के रूप में
- (ग) प्रपंच रचना करने वाले मायावी के रूप में
- (द) नायक या नायिका की लालचाना करने वाली शक्ति के रूप में

अतएव भारतेन्दुशर्मा ने नाटकों में अमानवीय शक्तियों के लालचाना विभिन्न उपलब्ध आधार पर उचित प्रतीत होता है।

(अ) लोनायक के रूप में

लोनायक अपने नायक के लालचों की अपवृत्ति करने के लिए तत्पर रहता है। साहित्य में ^{राक्षस की} प्रायः लोनायक के रूप में लोनायक का गवा है। किन्ति राक्षस द्वारा किन्ति लोनायक का अपहरण एक प्रचलित अभिप्राय है। रामकथा में सीता का अपहरण एक सर्वप्रसृत घटना है। राम के नाक, वल, पौरुष और विविध कार्यकारी लोनायक का समन्वय जाति होती घटना से सम्बन्धित हो जाता है। 'सीताहरण' नाटक में राक्षसों के विषय में शर्मा जी राम के लक्ष्य हैं -- 'महाराज यहाँ की प्रकृति के मनुष्य अधिक हैं, एक तो मानवों के मिलते हैं, परन्तु तुल्य मनुष्यता की ओर नहीं रुकते हैं। इन्हें पिट्ट रूप हैं, न तो मानवों के मिले, न जायायों के मनुष्यों के मिले। वे लोनायक के लोनायकों से उत्पन्न हैं। महाराज क्या कहें, जो काम बन के फल नहीं कर लक्ष्य, वे लोनायक के लालच कर डालते हैं। इसी से हम लोग उन्हें राक्षस कहते हैं, विशेषकर इनका उपलब्ध रात की अधिक होता है। इसी से उन्हें निशाचर भी कहते हैं।' ^१ रामकथा की ही

गाँधि कृष्णजी ने तन्वन्ध्या नाटकों में की इस अभिप्राय की अनिवार्य प्रशंसा हम भी प्रस्तुत करें हैं।^१ श्री कृष्ण राक्षसों का उधार करते उनके द्वारा अपहरण की गयी स्त्रियों का उधार करते हैं।

[ब] सुननायिकाओं के रूप में

गीत में ऐसी अनेक गीतज्ञानक प्रवृत्ति रहती है, जिनमें कोई राक्षसी या अप्सरा अपने रूप का परिचय कर राजकुमार के समक्ष विवाह का प्रस्ताव प्रस्तुत करती है। अतः ही वह अपनी उद्देश्य में सफलता प्राप्त कर लेती है और राजकुमार के हत्या कर डालती है और अपने आकर्षण प्राप्त कर राजकुमार द्वारा उपेक्षित एवं काँझित की जाती है। वीताकरण में कृष्णजी तुन्दरी है। राम ने अनुपम रूप की निहार कर उसका स्त्री कित्त डोल जाता है। उसने अपना रूप और जवा-ज-वारा। राम की वह अपना नाम क्रिस्त्र तुन्दरी बताती है। वह राम के ने प्रणय-निश्चय मांगती है। राम कहते हैं कि मेरी जी मर्त्य है। क्रिस्त्र-तुन्दरी तत्काल उठर बैठती है -- "तो क्या भय है ? एक बीर लड़ी। राम बहुविवाह पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं -- "तुम ऐसी मूर्ख राजा नहीं शाग मेका ने गमान लिखीं की पालें।"^२ निराश होकर उसने लक्ष्मण से प्रणय-निश्चय मांगी। लक्ष्मण बोले -- "हम तो दाय हैं। हम पर वह बाहू-मिथुणा उठर लेती है -- "कैसे क्या हुआ ? क्या दाा लोग पत्नियाँ नहीं रखते। लक्ष्मण ने ईर्ष्या-कक्षा की -- "तुम अपने की तुन्दर कमरुकी है। मेरा क्या दोष ? अपनी लिखाँ अपने की रूपगर्विता समझती हैं। पर तुन्दरता तो लनी है, जबकि देखी वाला भी तन्दरता की तराहना की। हम पर वह क्रिस्त्र-तुन्दरी जाग-बकूला हो जाती है। राम का गूढ़ संकेत मिलने की लक्ष्मण स्वर बदल कर बोले -- "तुन्दरी तुमसे हमने ली की है। जहा प्यार। तुम्हारी नाजिना बड़ी उचम है। तुम्हारे ये लाल स्मोत क्रिस्त्र की नींद डालते हैं। तो तुम

१- पं० देवकीनन्दन खिमाठी, -- सं-बध, पृ० २०।

२- डा० गीपीनाथ तिवारी -- भारतेन्दुसाहित्य नाटक साहित्य, पृ० १४७।

को प्यारी, इस बात तुम को पड़ी। बात तुमने ने सिध जो की वह नयन
ने पास गयी, जलन ने नाह नाह की।^१ इस प्रकार खनायिका [राधाजी]
ने जगनन ने कहा जो नाटकीय एवं भवविनाशिक रूप ने विभाज होता है। इस
रूप को प्राणों वल्ल रूप ने आत्मागत कर होता है और जग-विजय में विजया
भाव खनायिका को जाता है।

नाट्य-प्रदर्शन को देखते जाते हुए जगता ने प्रथम अभिजाणा यह होती है
कि यह जग-पुत्री को भी-भांगि नमक ने और दुरी यह कि शरीर-आधार
का विभाव उसके नमक की, जाति विना कि प्रयत्न ने नाट्य ने प्रति
जातात्त्व्य स्थापित किया जा रहे। जग प्रकृत होता है कि रासना के
जीर्णमलकारी स्वभाव ने विभाव में प्राचीन साहित्यकारों ने इस प्रकार ने प्राणों
को नमस्त्रिक खनायिक करके नाट्य-शिल्प को प्रभावित करे जो प्रयोग किया।

(ख) प्रपंच रचना करने वाले मायावी के रूप में

भारतेन्दु सा के जी ४ नाटकों

में जी ४ में व्याप्त स्थानकों ने अनुप्राणित साहित्य में किमि मायावी द्वारा
प्रपंच रचना या विप्लव उपलब्ध करने की कड़ी जो प्रयोग किया गया है। जग-
नर के विचार एवं अभिव्यक्ति मोड़ देने के लिए जगनवीर्य अभिजातों का प्रयोग
परम्परागत साहित्य में प्रचुर रूप में हुआ है। रासना के सम्बन्धित नाटकों में
भारीन ने सम्बन्धित उपाख्यान की अभिप्राय ने अन्तर्गत जा ता है। वह स्वर्णी-
मृग का रूप धारण करके ऐसी प्रपंच रचना करता है कि जीता अपने जगन में
बैठी रहती है और रासना उन्हें दुरी ने जाता है।^२ 'पूजा' और 'जगपुत्र'
जादि के बुध्दन्त की की जी ४ में जाते हैं। ये सब की रासना है और विभिन्न
प्रकार के इतिहास वेश धारण करके अभिजातों को मारने का आक्रमण प्रयोग करो
हैं और स्वयं मारे जाते हैं।^३

१- डा० गोपीनाथ तिलारी -- भारतेन्दुनाटकीय नाट्य साहित्य, पृ० १४८।

२- पं० बलदेवप्रसाद मिश्र -- जीतावनवाच नाटक -- पृष्ठ ३७।

३- डा० रवीन्द्र 'अर' -- हिन्दी साहित्य में जीकात्व, पृ० ६५।

इति प्रकार मारोन्हु-मुनिन और नाटकों में प्रपंच रचना कही जाने मायावी की उपस्थिति हुई है। रामलता व नाटकाकार रामायण, रामायण वर्णन, आ रामचरित नाटक, अत्युत्तम नाटक आदि में यह प्रांच उपस्थित है।

(५) नाममात्र वा नाशिका ही राजधानी करी वासी अतिशय ही व्यर्थ है

111

आ के नाइती में प्रकृत तीक्ष्ण ज्ञाननों में राक्षस का अपराध जया अन्य
जमानवीय लक्षितों की-की लित कार्य-आधार वाणीनी रूप में नी अवतरित
हुं हैं । तीक्ष्ण या तीक्ष्ण ज्ञाननों में अपराध का या राक्षस प्रेम-
आधार में नी लक्ष्यक हुए हैं । जमान ज्ञान 'विज्ञान' में नी के (नेत्या)
उपानुसार की राजकुमारी विज्ञान की विज्ञानता में रह जाता है और यह
वहाँ राजकुमारी के विज्ञान की क्षेत्र उस पर मोहित हो जाता है ।^१ इस प्रकार
यह तीक्ष्ण ज्ञान एवं प्रभावोत्पादन अभिप्राय है । भारतीय दुर्ग प्रेम नाइती
के ज्ञाननों में इस अभिप्राय का प्रयोग प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है ।

‘नामधेयता नामधेयता’ नामधेयता में उर्वशी जन्मरा का जन्म होता है जो पुनः नामधेयता के रूप में जन्म व धारण करती है। यह जन्म ‘नामधेयता नामधेयता’ की जन्म की आधार मानकर लिया गया है। हाँ, नामधेयता ने जन्म की अधिक विस्तार दे दिया है। जन्म के जन्म के दोहरी उधार लिए हैं। जन्म में गति और पुमान है। जन्म की जोर अधिक ध्यान रखने है पार्श्व के वरिष्ठ-विक्रम का जन्मरा ही नहीं लिया है। पार्श्व पारा जन्मरा के लिये स्थान पर कराया गया है। नामधेयता का जन्म, नामधेयता की मही बुद्धा जन्मरा जन्म राजधानी में पार्श्व की वरिष्ठ वरिष्ठ नामधेयता के पास गया। जन्म पार्श्व नामधेयता की है क्योंकि उर्वशी जन्मरा नामधेयता में जाती है और फिर वही नामधेयता रूप में जन्मती है।^२ जन्म उर्वशी की नामधेयता की जन्म की प्रमुख वरिष्ठता है।

१- डा० बनारसप्रसाद सिन्हा -- हिन्दी साहित्य, पृ० २७३ ।

२- डा० गोपीनाथ मिशर - भारतेन्दुनाथीन नाटक साहित्य, पृ० ३७१ ।

देवी-देवताओं तथा अन्य आौतिल प्राणियों के सम्बन्ध

रुद्रियां

देवी-देवताओं की तीसरी जीवन में तारिख-पूति का अधिकांश माना जाता है। देवी-देवताओं ने जो भी पूर्ण सम्बन्धित हो जाते हैं, वे तीसरे-चतुर्थ में उत्पन्न होती जाती हैं। 'ये सन्तान' उनके मानसिक आवश्यकताओं की उतना ही संतोषपूर्वक पूर्ण होती हैं, जितना जीवन उनके शारीरिक आवश्यकताओं की 'पूर्ण' करता है। तीसरे-चतुर्थ में देवी-देवताओं द्वारा मानसिक कार्य सम्पन्न होते हैं। भूत, प्रेत, राक्षस आदि ज्ञानवर्धक शक्तियों ने सम्बद्ध रुद्रियां नायक नायिका दोनों के कार्यों के कार्यों में साधक-नायक दोनों रूपों में समुपस्थित होते हैं, किन्तु देवी-देवता सहायक रूप में ही प्रस्तुत होते हैं। इस सन्दर्भ में भारस्कु-सु के नाट्यकारों की दृष्टि व्यापक रही है। ज्ञान के समुचित विज्ञान के लिए तीसरे में प्रतिष्ठित देवी-देवताओं के सु-कार्यों का नर्क नायक-नायिका द्वारा स्मरण कराते नाट्य की तीसरी-चतुर्थ बनाया है। इस ज्ञान-रुद्रि की दो भागों में विभक्त किया जा सकता है --

[अ] - देवी-देवताओं द्वारा सहायता

[ब] - देवी-देवताओं द्वारा परीक्षा

[अ] देवी-देवताओं द्वारा सहायता

देवी-देवताओं का अवतरित होना एक सार्वभौम-प्रसंग है, जिसकी तीसरी-चतुर्थ में पूर्णरूपेण साम्यता प्राप्त हुई है। 'नन्द' विना नाट्य में दुष्का

1- डा० विपिन विशारी त्रिवेदी -- हिन्दू धार्मिक ज्ञानों के
मीतिज्ञ वर्ष, पृ० २ ।

पर भक्त्या के कारण पड़ते हैं, जो उसकी स्मर कीधी हो जाती है।^१ इस प्रकार भूषण का अंतरण गहन हो जाता है। 'माधवानल कामदेवता' में कामदेवता विषय के समय उत्तीर्ण-गारिमा के अनिमण्डित गारिमा का स्मरण करती है -- "हे बहिल्मा, तारा, प्रीति, तंता, मंदोदरी, इत्यादि नाच-रिचियों। मेरी पातिव्रत्य-धर्म का रक्षण करो।" देवियों के भूषण के परिणामस्वरूप उसका नाच-रिच जीवन उत्तम होकर अशुभानुभव प्राप्त होता है। नायक माधवानल अनेक बार शिव भगवान् की स्तुति करता है और अन्तर्गत उसने मनोनुकूल परिणाम प्राप्त हो जाती है। राजा विश्वासार्थ के राज्य में विश्वासार्थी के मंदिर में शिव-स्तुति और पुनः कार्य-बाधा के समय शिव-स्मरण द्वारा नाच-रिचों में नायक की पूर्ण प्रकृति मिलती है।

'इत्युषा नाटक' में मन्दिर में शिवजी प्रकट होते हैं। शत्रु के विना अथर्व की स्तुति पर शिवजी का वागमन होने होता है और वे अष्टाक्षरदान देकर अष्टापूर्ति करते हैं।^५ शिव-पार्वती का लोक-जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान बताते हुए डा० लक्ष्मण ने लिखा है -- शिव और पार्वती का निर्माण में बहुधा रात्रि-प्रवृत्ति का निमित्त है। वे दुःखियों की समस्या को हल करते मिलते हैं। पार्वती कहती हैं, जो शिवजी की मानना पड़ता है।^६ 'मयंक-मंजरी' महानाटक में गौरी-मंगला की पुजा का स्मरण नायिका करती है और उसका आनन्द-कार्य सम्पन्न हो जाता है।^७ 'विना-विनोद नाटक' में सुयोग्य वर प्राप्त के लिए देवी पूजन करने नायिका प्रार्थित जाती है, उसका

१- पं० बलदेवप्रसाद मिश्र -- नन्द विदा नाटक, पृ० २६।

२- शक्तिशान -- माधवानल कामदेवता, पृ० १४२।

३- वही, पृ० १२०।

४- वही, पृ० १४१।

५- लक्ष्मणशर्मा मल्ल -- इत्युषा नाटक, पृ० ४६।

६- डा० लक्ष्मण -- कृतक साहित्य का अध्ययन, पृ० १००८।

७- विश्वरिजाल गोस्वामी -- मयंक मंजरी, पृ० ४१।

उल्लेख एक पात्रा का प्रसार करती है -- राजकुमारी का नामर नगरी के राजा नौदू सेन की अविवाहिता कन्या है। उनका नाम विद्या है। वह सर्वज्ञ है निश्चय नि ही देती है भूजा करती है। उनी नमिनि ह रत्न-कुमार आज प्राप्त: सनन वैरी मन्दिरे में जा रहे थी।

'कन्दावली नाटिका' में एक प्रांग है -- का मन्दिरे का शिवजी ने पान किया है और लीने क्या किया ? किन्तु प्रभाव ने जाति में पैठी हुई पावैती भी उनका विचार नहीं कर सकती, धन्य है, धन्य है, और द्वारा सेवा जीवन है [विचारकर] नहीं-नहीं ब्रज की गोपियों ने भी उन्हें जीत लिया।" यहाँ वर्णित यह क्या कन्दावली के गौरव एवं महात्म्य में अभिवृद्धि करती है। नाटककार ने तुल्य [महर्षि कृष्णपायन के तपो-निष्ठ और ब्रह्मानी पुत्र] से उक्त प्रांगों की वरज वाक्यों में प्रस्तुत करा दिया है, ताकि दर्शकों का ध्यानाकर्षण हो और प्रस्तुत होने वाली कथा में उनकी गुरुत्व बढ़े। वास्तव, प्रेम-व्यंग्यता में प्रवणता लाने एवं वातावरण की गरिमामय बनाने के लिए शिव एवं गोपि की और संकेत किया गया है। नारद भगवान् की उन संदेशों का वास्तव माना जाता है।

कन्दावली के अतिरिक्त कौन नाटकों में नारद भगवान् की उपस्थिति उन-सीमाओं की और ध्यान आकृष्ट करती है। 'तली प्रताप' नाटक में नारद के वाक्यों की प्रस्तुति एक कथन का समीप करती है। नारद कहते हैं -- 'राजन् ! तुम्हारे पान धैर्यधन, तत्पधन, तपोधन आदि कौन धन हैं। तुम क्यों दीन हो ? बार बार हम तुम्हारी एक वृत्ति उन-संदेश देने की बार हैं। तुम्हारे पत्र का विवाह-उपबंध हम अभी स्थिर किए जाते हैं। तावित्री के पिता की भी सम्झना जाए है कि उनकी कन्या का विवाह अपने उज्ज्वल

१- गोपांतराम गहमरी -- विद्या विनोद नाटक, पृ० २०।

२- अश्विनी कुमार [सम्पादक] -- कन्दावली नाटिका, पृ० ५०।

पाणिन्य धर्म के प्रभाव से वे आपत्तियों का उत्तर देकर उत्कर्ष के मार्ग पर
लगे और अपने पवित्र धर्म के नीचे जो जो मान बढ़ायेगी । तुमों की
यही इच्छा है कि वे सब शोध कर विचार का तन्त्र पकड़ा लें ।^१

‘यह ही उनमें’ नाटक में कृष्ण के कौटिल्य मार्ग का चरित्र और
नायिका बलदास मार्ग के -- जो सब का उत्तर देने की भाषा कर के
नयिका से ही प्रान्त हुए कि कभी वे सब को उतर न दिया । कृष्ण के वस्त्र
बढ़ाए और विह्वल के घर बसे ही के शिरो धार ।^२ ही के कृष्ण निरिक्त
हम ने बताया करी है ।

‘रति सुमासु’ में ही देवता आशीर्वाद देते हैं ।^३ भारतेन्दु-सु के
अनेक नाटकों में उपलब्ध विवरणों की प्रस्तुति बारम्बार हुई है ।

[ब] देवि-देवताओं द्वारा परिष्कार

यह एक प्रचलित लोक-कथि है कि सत्य, प्रेम आदि की परिष्कार
नका-बनों की देवि-देवता करते हैं और आशीर्वाद प्रदान कर उनके जीवन का
उत्कर्ष करते हैं । भारतेन्दु-सु के नाटकों में सत्य हरिश्चन्द्र और ‘वैष्णवी’
नाटिका का ही कथि की दृष्टि से विशिष्ट ध्यान परिलक्षित होता है ।
सत्य हरिश्चन्द्र नाटक में राजा हरिश्चन्द्र के सत्यवादी होने की बातें देवताओं
तक पहुंच जाती हैं जो इन्द्र भगवान् मानते हैं कि, ‘हमने माना कि उसने
[हरिश्चन्द्र] स्वयं को ही उद्धार न ही तथापि अपने कर्मों से वह स्वयं का
अधिकारी ही हो जाएगा ।’^४ इन्द्र की ही इन विचार-भावना पर नारद
की कहते हैं -- और यिनकी अपने कि सुन-अनुष्ठानों ने आप तृतीय निजता

१- रुद्र नाटिका -- भारतेन्दु कवि-कवच ग्रन्थावली, पृ० २४५ ।

२- अम्बिकाया व्यास -- मन की उका, पृ० ४४ ।

३- कृष्ण बहादुर मल्ल -- रति-सुमासु, पृ० २१ ।

४- रुद्र नाटिका -- भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृ० २४२ ।

है, उनके उन अस्मिन्मानन्द के जाने जाने लगे का जल पान और अपरा
 जी महा-महाकुल है । आ उनके जीव ही कुछ ही जल का पाना जानी
 हैं ।^१ रुद्र जी कहते हैं -- तथापि यह है उनके तत्त्व के परिचा की की
 बला होता ।^२ और उनके उपरान्त मानव का विचार होता है । तत्त्व
 की रक्षा के लिए राजा हरिश्चन्द्र जी अनेक कष्ट होते हैं, किन्तु वे अपने
 तत्त्वमय के विनशित नहीं होते हैं । जब राजा हरिश्चन्द्र श्रेया ने कहते हैं
 कि, "जिा हरिश्चन्द्र ने उक्त के अन्त में ही पूर्ण के लिए धर्म न छोड़ा,
 जान धर्म आप सब समझे है वा तो मत उड़ाओ ।"^३ श्रेया रीति उन्हें आता-
 भावन में तत्पर ही जाती है और रोडिआस का तत्त्व काजा बाकी है
 तो जी महादेव, पार्वती, भैरव, धनी, तत्त्व रुद्र और विश्वामित्र जी उप-
 स्थित होते हैं और उनकी आशीर्वाद देते हैं । यहां परिक्षा पूर्ण होती
 है । जी महादेव कहते हैं -- पुत्र हरिश्चन्द्र समान् नारायण के अग्रह ने
 व्रततोत्सवों में तुमने पाया तथापि मैं आशीर्वाद देता हूं कि तुम्हारे के कि
 जब सब पूर्ण है, तब तब स्थिर रहें और रोडिआस की पीड़, प्रतापी और
 त कृपण होय ।^४ पार्वती जी श्रेया ने कहते हैं -- पुत्र श्रेया ! तुम्हारे
 पति के साथ तुम्हारे की ती लगे की विद्या गारं । तुम्हारे पुत्रसु गोता-
 म्यकी हो और तुम्हारे घर का भी त्याग न करे ।^५ तत्त्व हरिश्चन्द्र
 नाटक की अन्तिम तीतोन्मुख प्रवृत्तियों के कारण अनेक नगरों में रहते मंत्र-
 प्रसुति हुई और अपने जी-जीवन को प्रभावित किया है ।

१- रुद्र का शिष्य -- भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृ० २६२ ।

२- वही, पृ० २६२ ।

३- वही, पृ० ३०५ ।

४- वही, पृ० ३०६ ।

५- वही, पृ० ३०५ ।

‘बन्दावती’ नाटिका में प्रेम-विह्वल बन्दावती की परिधा की व्यंग्य-श्रुति नेत्र बड़ाकर पढ़ने वाले हैं। बन्दावती का प्रनाम कर समाप्त हो जाता है, को निनी और उतिया उठने गाने के लिए जाती हैं। बन्दावती छोटे सारों में विविधता के नाटिकावादी है -- मैं अपने मन की पीड़ा को दिखाऊँ ? तब तो करना पड़ेगा है। लगे लगे जाऊँ। लोग बिन्दा करे। मेरे दुःखों को लगे कर नहीं कर सका। उल्टे तरंग लोग करेगा लगे। मेरी पीड़ा को भी जानता है वही जानता है। मैं अपनी पीड़ा प्रगट करे अन्धान्य नीचाँ ली, क्यों जाऊँ ? मन की, लोगों को धार नकाँ ली जीवन-ता रूप दिखाऊँ क्या जानों को जीवन-ता रूप तुम जाऊँ ? किना भीष्टा के मैं हृदय निनी दिखाऊँ ? मर्मताका चरित्रों की स्वयं विरह के दुःख से दुःखी है। उन्हें अपनी कला ने क्यों दुःख में डालें ? यदि प्यारे मिल जाते तो उनके धरों पर विरह बनना फँड पड़कर उन्हें समझाती।^१ बन्दावती गाने-गाती मुजिब हो जाती है और रोना जाता है कि विर पड़ेगी। वह स्वच्छीकरण होती है। प्रेम-परिधा में वह सफल होती है और भीष्टा अपनी वास्तविक रूप में जाकर बन्दावती को पकड़ कर हृदय ने काती है।^२ भगवान भीष्टा बन्दावती के भावपूर्ण निवेदन पर कहते हैं -- ‘तो प्यारी मैं जो हि हो दूँगे कहाँ जाऊँगी, तु तो मेरी स्वयं ही है।.... मैं तो अपने प्रेमिन की किना मोल को दास हूँ। परन्तु मोल निर्वह है के हमारे प्रेमिन की कम की है, हमारी विरह प्यारी है। वे प्रेमी हैं पिन की तो प्रेम और बड़े और वे कभी हैं पिन की नास सुत जान।’^३ का प्रकार प्रेम किना सजा है, लगे परिधा हो जाती है।

भारतेन्दु-सुत में जीन्सुविद मका प्रस्ताव के जीवन प्रांग का आधार श्रुति

१- व्यक्ति हृदय -- बन्दावती नाटिका, पृ० ३२।

२- वही, पृ० ३७।

३- वही, पृ० ७२।

करते 'प्रज्ञाद वरित्र', 'प्रज्ञाद वरित्राकृत', 'प्रज्ञाद वरित्र', 'प्रज्ञाद नाटके' की रचना नाटककारों ने की। इन समस्त नाटकों में प्रज्ञाद की भक्ति मानना ही प्रभावित। होकर कलात् परीक्षा में जाते हैं और भक्ति मानने की प्रवृत्ति ने प्रभावित होकर आलोचना प्रदान करी है।

यह प्रज्ञाद की भाँति ही न तो धृति का अर्थ ही जोशीयन में व्याप्त है। 'धृति वरित्र', 'धृति तपस्या नाटके', एवं 'मोर-वज्र' नाटक न तो धृति के जीवन पर आधारित है। इन नाटकों में ही धृति के अलपट तपस्या-धृति परीक्षा होती है और वरदान मिलता है। विवेक युग के अधिकांश नाटकों में देवी-देवता द्वारा परीक्षा लेने की कड़ी प्रयत्न की गयी है। इन नाटकों यक्षम एवं प्रभावी बन गया है। नाटककारों ने अपने नाटकों को प्रभावशाली बनाने के लिए ही लोक-कड़ियों का अवलम्बन किया है, ताकि दलील-बर्ग की कथा-प्रवाद के प्रति निष्ठा बनी रहे और उनकी बात की प्रतीति-वनी बुद्धिमान कर ले। 'प्रज्ञाद नाटके' में तत्कालीन ब्रिटिश शासन पर व्यंग्य करना और लोक धेतना की प्रवृत्ति करना नाटककार की मौलिकता विष्णु-तात् पंड्या का प्रसन्न उद्देश्य है। यद्यपि देशज्ञान की नाटककार ने अवहेला की है, किन्तु वह सामयिक स्थिति के अनुसार अपने मानस में उद्भूत गौरीपयोगी विचारों को अनिवार्य प्रदान करने में पूर्णतः सफल हुआ है।^१

'सौत सौ वित्री', 'सौवित्री नाटक' आदि अन्य नाटकों में देवी-देवताओं द्वारा परीक्षा लेने की कड़ी का निर्वाह हुआ है।

धृति-पदार्थों से सम्बन्धित कड़ियाँ

धृति-पदार्थों से संबंधित अन्य कड़ियाँ लोक में विख्यात हैं। 'लोक साहित्य' के ये धृति-पदार्थ मुख्य रूप से भाषा ज्ञानी ने रचना किये हैं और उनी भाषा में

१- मौलिकता विष्णुतात् पंड्या -- प्रज्ञाद नाटक, पृ. ५७।

उत्तम उत्तर की होते हैं। यह संज्ञा करना बेकार है कि मातृसिद्ध जीवन में पशु-पक्षी कहां तक मनुष्य की बीजों की तरह होते हैं। वे जीं न जीं भाषा की बीजों की हैं और पक्षी-विज्ञान के ज्योताओं का अनुमान है कि उनकी भाषा का जीं न जीं ज्यों की होता है किन्तु प्रश्न यह है कि क्या उन भाषा की कहां तक समझते हैं।^१

पं० रामनरेश त्रिपाठी ने इन तन्त्रों में विचार व्यक्त किया है--
 "संस्कृत में साहित्य ने सुग-छिन्न और कृशों के साथ मनुष्य की जिस उदात्त-त्वज्ञता का चित्र खींचकर अपने ही विश्व-वन्द्य बना लिया है, वह उदात्त-त्वज्ञता (तीन) गीतों में और तीनों कलाओं में भी सर्वत्र प्रकट है। मेघदूत में मेघ उन्मेषसादक है। गीतों में माँरा, जीप्ता, लीला, बीरह, श्यामा-पक्षी, लीला आदि जैसे बर-ज्वर हैं, जो मनुष्यों के तस्वर की तरह काम करने विस्तार भर हैं।^२ अतएव पशु-पक्षी विविध प्रसंगों में नाच-नाचिता के मन्त्रोनी बने हैं।

"दमयंती स्वयंवर" और "नल दमयंती" नाटक में ही नारा प्रेम-बंध की स्थापना होती है। प्रेम-स्थापना के उपरान्त स्वर्णलक्ष्मी दैवसादक का कार्य भी करता है जिसे नल और दमयंती के मध्य प्रेम-भावना का प्राणित रूप में विज्ञात होता है। "माधवानल कामन्दता" में मीना और लीला मानव-राणी में जागृतिप्रद करते हैं और यह सूझा प्रसारित करते हैं कि माधवानल का स्त्री प्रकार कल्याण ही उस राजा विष्णुादित्य के माध्यम से यह कार्य कि प्रकार सम्पन्न हो, उन पर विचारणा प्रस्तुत करते हैं। "रणधीर प्रेम मोहिनी" नाटक में प्रेममोहिनी हनु का नरिखा पक्षी स्वप्न में देखती है, तो उसके प्रति उसका प्रेम उमड़ता है, यही का पक्षी जगती जीवन में एक सुंदर

१- बी०२० बाटलिन -- द फास्ट ट्रेजरी बाव अमेरिकन फोर्स्टर (१९०२०२०१),
 पृष्ठ १६५९ पृष्ठ २३२।

२- पं० रामनरेश त्रिपाठी -- अविता जीपुकी (लीलारा भाग ३), पृष्ठ ८६।

पुरुष के रूप में उनके जीवन में पदार्पण करता है। इस प्रकार नागी प्रेम-
लाय के द्वारा तन्त्र में पदार्पण द्वारा प्राप्त होती है। शिवाकरणा नाटक
में नाटककार ने नाग पदार्पण की रीति के पुत्र कर्मा के रूप में विविक्षा किया है
और पदार्पण द्वारा ब्रह्मा-गर्भ की रीति की अभिव्यक्ति द्वारा प्रदान की
गई है। राजा रीति का पुत्र कर्मा का पदार्पण-विशेष है। उनके जैसे पदार्पण
पाते हैं, जिन्हें वह शिक्षा प्रदान करता है। उनके पास एक हाथ भी था।
उन्होंने शिवा को राम के नाम देखा जो राम की परिक्षा के लिए जाग की
मेजता है, जो शिवीता की के ब्रह्मसूत्र पर बोल मारता है। इस प्रकार
रा प्रकाश द्वारा दर्शनी की राम की प्रेम-भावना का शिव प्रियता है।

अभिज्ञाप, वरदान और तन्त्र-मन्त्र के सम्बन्ध में कड़ियाँ

तीर्थ-स्नानों में शिवी योगी द्वारा अभिज्ञाप या शिवी ब्राह्मण देवता
द्वारा वरदान करने के प्रथम सङ्ग रूप में विविक्षा रही है। शिवी कारण
कृष्ण, सुनि, योगी, तन्त्रादी, ब्राह्मण, शिवीया, कृष्ण और आदि तीर्थ के
प्राणी द्वारा प्रतिष्ठा प्राप्त हो रहे हैं।

अभिज्ञाप-वरदान की ही शक्ति तीर्थस्नान तन्त्र-मन्त्र के प्रति भी ब्रह्मा-
नत रहा है। यहाँ तन्त्र-मन्त्र का बर्ण बाहु-टीका है। नास्तेन्दु-शिव के
नाटककार तीर्थस्नान का परिष्कार कर शिवानुष्ठान उन्देश प्रदान करना बाकी है,
वतः उन्होंने उपर्युक्त कड़ियों का प्रस्ताव के साथ प्रयोग किया है।

अभिज्ञाप

“वह ‘तप्या संवरण’ नाटक के प्रथमांक में तप्या का संवरण का साक्षात्
मात्र होता है। इसी अंक में बाष्पज्ञाप और गीतम का वागमन होता है।
संवरण के प्रणाम न करने पर गीतम कृष्ण रुष्ट होकर अभिज्ञाप देते हैं कि
‘वह जिसके ध्यान में है, वही उसे मृत जाए।’^१ यह अभिज्ञाप प्रथम श्रुतता

१- श्रीनिवासदास -- तप्या संवरण, पृ० १३।

की जोड़ विस्थापन करने पर आधारित है। 'शकुन्तला नाटक नवीन' की भूमिका में नाटककार लाला गणेशदास शास्त्री ने लिखा है -- "राम - रामिनी में व तारकी में व और रवाही में महाभारत और व महुनामवत व वाली कि रामायण का चार गिताकर और और प्राचीन पुराणों का मातृव और कातिदास स्मिस्वर के शास्त्री नाटक की भाषा और वह नाटक केदार लिखा गया है।" ^१ अतः हा नाटक द्वारा शकुन्तला की कथा को जोड़मानत तब पहुँचाने का विनम्र प्रयास किया है। शकुन्तला राजा दुष्मन्त के प्रेम-किन्तन में निमग्न रहती है। अरुव दुर्गाता कृषि को प्रणाम नहीं कर पाती है और वे शाप दे देती हैं कि जिसके बाद में लोकर पुनर्ने मेरा अपमान किया है, वही तुम्हें मृत जायगा।

'मातृकी वसंत' नाटक में वसंत संस्कृत अपनी पियतमा की बाद के कारण नारद को प्रणाम नहीं करता है। नारद की रुष्ट होकर शाप देती हैं -- "औ आप देता हूँ कि जिसके ध्यान में तन-मन की तुमि नहीं, वह ही न पड़वाने।" ^२

'योवन - योगिनी' नाटक में मायावती संनराचार्य ने कहती है कि -- "पृथ्वीपति पृथ्वीराज का वरण होड़कर स्त्रि के लिये म नहीं है, जो मैं रही के वत पर तुम्हें शाप देती हूँ जा। केरि अनात मृत्यु होय।" ^३

'विवाहिता विज्ञाप' नाटक में नायिका कम्पा कहती है कि -- "हमारा रोम-रोम उस ब्राह्मण की शाप देता है, जिने जन्मपत्री को जोड़कर विवाह कराया था।" ^४

१- लाला गणेश शास्त्री -- शकुन्तला नाटक नवीन, पृ० १।

२- वर प्रसाद -- मातृकी वसंत, पृ० ७।

३- गोपाल राम गहमरी -- योवन योगिनी, पृ० १३।

४- मिदीलाल -- विवाहिता विज्ञाप, पृ० २१।

रामायण के संबंधित नाटकों में अणुनाम के बिना चारा रामा का-
रा भी शामिल करना, प्रतापनाथ की कृत्यानी चारा रामायण होने का शाप
द्वितीया तथा प्रेमपरम भगवतों में शाप चारा नाम के पक्ष में परिलक्षित
होने के अनेक प्रमाण नारदचंद्र-शा के नाटकों में उपलब्ध होते हैं।^१ अतः अवि-
शाप द्वारा विविध प्रतापी के अनिष्टकृत तत्त्वकीन नाटकाचार्यों ने भी वे
और भगवत की प्रभावी तथा अनित्यचित्त क्षिति प्रदान की है।

वरदान

अविशाप की नाँति वरदान के प्रति भी लोक-जमान में तत्त्व ने प्रकाश
जा रहा है। राम-प्रसाद में अविशाप और वरदान प्रसूति का
की पुष्टि करते हैं। 'तथा वरणा' में वरणा के प्रणाम न करने पर गौतम
कृष्ण अविशाप देते हैं और फिर प्राणी करने पर वरदान देते हैं कि जो
स्मरते करने वे सब शाप दूर हो जाएगा।^२ 'संस्तुता' के अन्त में यह प्रमाण
मिलता-पुलता है। अतः वरदान 'संस्तुता नाटक नवीन' में संस्तुता की
मिलता है।^३

'तीता स्वयंवर नाटक' में वरदान ने ही अक्षिणीदार होता है और
क्षिति-रूप ने वर नारी रूप में परिलक्षित हो जाती है।^४ शापवश निर्दिष्ट
प्राणी का पक्ष में एवं वरदान ने पक्ष का पुनः प्राणी में परिलक्षित
होना एक प्रवर्तित लोक कवि है। 'दमयंती स्वयंवर' नाटक में एक स्थल पर
उल्लेख है कि श्रीवैश्वर महोदय के पूजन से प्राप्त वरदान ने गर्भवात का वीर्य

१-[क] वामोदर शास्त्री संप्रे -- रामलीला, नाटक ; [ख] ज्वाला प्रसाद--

तीता वरदाता नाटक ; [ग] बन्दीदीन की क्षिति -- तीता उरणा नाटक ।

२- श्रीनिवासदास -- तथा वरणा, पृ० ७० ।

३- साता गणेश नाटक -- संस्तुता नाटक नवीन, पृ० १४ ।

४- बन्दीदीन की क्षिति -- तीता स्वयंवर नाटक, पृ० १६ ।

नहीं सहना पड़ता है।^१ 'देवी देवताओं द्वारा सहायता' लोक रुढ़ि में महादेव भगवान् द्वारा वरदान प्राप्त करने के कौन विवरण प्रस्तुत किए गए हैं। अतः ये रुढ़ियाँ एक दूसरे की पूरक हैं। 'प्रेमसुंदर' नाटक में शिव से वरदान प्राप्त होने का उल्लेख इस प्रकार है -- "मैं गिरिजापति शंभु को पायी है वरदान, रूप वहाँ जो धरित की, उन्हें न कोई जान।"^२ और नायिका शिव भगवान् से प्राप्त वरदान का सुंदर सामंजस्य करती है।

तन्त्र-मन्त्र

भारत में मन्त्रशास्त्र अत्यन्त प्राचीन काल से ही महत्वपूर्ण माना गया है। "मन्त्र से मतलब उन शब्दों से है, जिनमें लोग मारण, मोहन, उच्चाटन की अद्भुत शक्ति मानते हैं।"^३ तन्त्र-मन्त्र की प्राचीनता और इसके माध्यम से व्यक्त विश्वास का विश्लेषण डा० आर०एच०बान गुलिक^४ ने किया है।

१- बालकृष्ण मट्ट -- दमयंती स्वयंवर, पृ० २२ ।

२- खितावन लाल -- प्रेमसुंदर, पृ० २५ ।

३- राहुल सांकृत्यायन -- गंगापुरातत्वांक, पृ० २२४ ।

४- "Mantrayana is the method through which one can reach salvation by muttering certain words and phrases. The roots of this curious system may be traced back to very old, probably even pre-Indo-Aryan-days. This belief seems to be particularly rooted in the propensities towards magic existing among the ancient aboriginal tribes of India. Many of these ancient conceptions were adopted by the Indo-Aryan conquerors and made an integral part of their own conceptions. In different parts of India, however, situated outside the centre of Indo-Aryan culture where the aboriginal population was better able to preserve its own character."

--डा० सत्येन्द्र -- लोक साहित्य विज्ञान, पृ० ५५१ ।

उनके अनुसार मंत्रदान वह पद्धति है जिसके माध्यम से कुछ उच्च और वाक्य के सुपनाप उच्चारण से जोड़े व्यक्ति अपनी समस्याएं समाधान करने का प्रयास करता है। इस विभिन्न पद्धति का संबंध पूर्वज्ञात मन्त्रों से पूर्व भारतीय-य जादू जात है।”

भारोन्तु सुनीन नाटकों में दत्त कड़ि का प्रयोग भी नाटककारों ने अपने अभिप्राय को पूर्ण करने के लिए किया है। ‘उष्णा-हरण’ नाटक में मंत्रदान से एक शिला का जादूदान कर उन्को कुछ लक्ष्य में रख देने की घटना का विवरण प्रस्तुत है।^१ ‘नन्द विदा नाटक’ में जब राधा की कृष्ण के विवाह में खुशियां में खुश हो आत्मकल्याण के लिए प्रेरित होती हैं, तो बुन्दा कहती है कि “मैं माया के कल से जमी रक्षासुंदर के पास जाती हूँ और उनकी विरह-व्यथा गुना कर साथ लिए जाती हूँ।”^२ ‘गोपीबन्ध नाटक’ में सम्मोहन मन्त्र के कल पर योग की शिक्षा देने वाला महेश्वरनाथ नामकता के प्रभाव में जाकर नील में तिप्प हो जाता है।^३ दूसरे ‘गोपीबन्ध’ नाटक में मन्त्र द्वारा जादू के माध्यम से कल गिराकर राजा को जीता बना देना, हाथ में तिरु फूल को लीने पर फौजदार को भी पर छिटा लेना, मंत्र पढ़कर घोड़े को आत्मसमर्पण की ओर ले जाना एवं बलीकरण मंत्राठ द्वारा घटनाओं को संवालि किया गया है।^४ ‘हस्तसूक्त नाटक’ में एक स्थल पर नायक की उक्ति है -- “माया कल से एक क्षण में सब कुछ रख प्रस्तुत कर सकता हूँ।”^५

‘मायादानत नामकता’ में मंत्र-विद्या से माया मण्डल के रूप में परिवर्तित

१- बन्धु कर्मा -- उष्णा हरण, पृ० १४।

२- बलदेवप्रसाद मिश्र -- नन्द विदा नाटक, पृ० ५२।

३- श्रीमती लाली -- गोपीबन्ध नाटक, पृ० २७।

४- उष्णा की रक्षासुंदर -- गोपीबन्ध नाटक, पृ० २३।

५- लक्ष्मणशर्मा मल्ल -- हस्तसूक्त नाटक, पृ० ५३।

ही आता है।^१ 'वैष्णु संहार' नाटक में मंत्र द्वारा की वैष्णु का प्राणांत ही आता है।^२ अतः, विवेक-नाट्य में 'तन्त्र-मन्त्र' के सम्बन्धित विश्वास स्थापित हुए हैं। इस दृष्टि के प्रयोग ने जग-मृगाल ही एक समान निश्चिन्ता आधार मिला है और नाट्यकार को उद्देश्य की दृष्टि में जग ही ज्यों जित करने में सफल हो गये हैं।

अन्य कठिनाई

उपरोक्त कठिनाई के अतिरिक्त अन्य और कठिनाई का भी प्रयोग भारतेन्दु-सुत ने नाट्यकारों ने किया है। इन कठिनाई का सम्बन्ध तीव्र निवन्धन-कथा-रहस्यियों से है। अत्यधिक तीव्र होने के कारण नाट्य-नाट्य का अत्यधिक तीव्र होने के कारण ही प्रभावित होना स्थापित हो गया। इन कठिनाई की विचारणीय कठिनाई निम्नलिखित हैं :--

- [अ] नायक या नायिका के धरती में समा जाने की उक्ति
- [ब] भावों का मानकीकरण
- [ग] पात्रों के गुणस्मृतिकार नामकरण
- [द] निरुद्धिप का विक्रम
- [य] प्रिया की प्राप्ति करने के लिए जीर्ण-वैषा धारण करना
- [र] शीतिया डाह

[अ] नायक या नायिका के धरती में समा जाने की उक्ति

रामायण का प्रसूत प्रमाण है कि महाराजा रामचन्द्र एवं उनके पुत्रों लव-कुश का वाधात मिलन होता है जो राम महाराज की वाधा का वाधातकार

१- शास्त्रिय वैश्य -- माधवान्त नामसंज्ञा, पृ० ४३ ।

२- पं० बालकृष्ण मट्ट -- वैष्णु संहार, पृ० ४१ ।

करने के लिए व्यर्थ हो जाते हैं। नीला जी यहाँ से चुप हो जाति है और धरती में समा जाती है। इस प्रकार वे दिव्यलोक की प्राप्ति करती हैं। रामदासपर 'राधाजीवा नाटक', 'नीलाङ्गण नाटक' जाति में इस प्रसंग की उल्लेखित स्थान मिलता है। 'मदन मंजरी नाटक' में मंजरी कहति है -- 'हाय ! पृथ्वी माता तु सोचा जी की तरह मुझे भी क्यों नहीं मान देती।' ^१ 'दुःखना' नाटक मथाराज विराट् के भागद सुमतीजी मथाराज धर्मराज सुधिष्ठिर ६३३ नट्ट मथाराज विराट् की परिनिमित्त ने अपना करी के जान्ति और धर्म धारण करने के लिए कहती हैं, किन्तु विराट् नहीं है -- 'तब जगत में हमारा जोड़ नहीं है। हाय ! हमारी तपस्या करने की नीति अकार नहीं होता। हम राज्यकृत हो गये, हमारा तपनाश हो गया। पृथ्वी देवी स्थान की, हम तुम्हारे गरी में प्रवेश करें।' ^२ 'तली' चरित्र नाटक में सुजैन नामक पात्र कहता है -- 'हे धरती माता ! मुझे स्थान की 'त' में तुझमें समा जाऊँ।' ^३ 'रणधीर प्रेममोहिनी' में प्रेममोहिनी की नीति यत्ने उक्ति है -- 'हाय धरती फट जाय तो मैं उतनें समा जाऊँ।' ^४ 'नरस्य हरिश्चन्द्र' नाटक में हरि. चन्द्र विद्यापित्र की इच्छाया न दे पाने के कारण व्यथित है -- 'देवी माता मैं जानूँ गोन तार के बन्धन ने बूझते हैं, पर जगती यहाँ भी हाय-हाय मची है। हा ! पृथ्वी तु फट क्यों नहीं जाति कि मैं अपना अंशित सुख फिर मिली जी न शिकाऊँ।' ^५ इस प्रकार यह तीव्रकण्ठि अन्य नाटकों में प्रयुक्त हुई है।

१- अमान सिंह गोविन्द एवं जगेश्वर व्यास -- मदनमंजरी नाटक, पृ० २७।

२- पं० बालकृष्ण नट्ट -- दुःखना, पृ० ३१।

३- अनन्त सिंह रघुवंशी -- तली चरित्र नाटक, पृ० ४१।

४- राधाकृष्ण दास -- दुःखिनी बाला रूपक, पृ० ५३। (राधाकृष्ण-गुणावली)।

५- लड्ड काशिकी -- मारोन्दु व गुन्धमाजी, पृ० ७१।

भावों का मानवीकरण

क्या भी जगत् में मानव जाति की अपनी तमाम में उल्लेखित विचारों की व्यापकता हो सकती है किन्तु सीमित तो भावार्थों में और उन्नी प्रेरणा प्राप्त वादित्व में मानव स्वयं मानवी रूप में अवतरित हो जाता है। वातावरण के अनुसार वह मानव का स्वयं प्रकाश हो वह विचारों का विवेक करना आवश्यक हो जाता है। अतः वह यदि अव्यक्त वादार्थों में प्रभावित होता है। 'नव्य हरिवन्द' नाटक में 'जाता ना रंग, जात नेत्र, महाकृप, हाथ में कील, जलार, नीला बक्का पझे।' भाव अवतरित होता है। 'धर-धर कीड़ा और हाँफता हुआ वह कहता है -- 'मरे रे मरे, जो रे जो, कहाँ जाएं, पारि पृथ्वी की हरिवन्द के पुन्य ने रंग मन्त्र हो रही है कि हम क्यों ठहर रहे हैं?' 'भारत दुर्दशा रूप में भारत, विशा, ज्ञान, नतिज्ञा, कुनति, जातव्य, कुन्य, मन्त्रि जाति भावों एवं नामों का मानवीकरण किया गया है और वे स्वयं अपना प्रकाश एवं गरिमा व्यक्त करते हैं। 'धर्माज्ञाप' नाटक में भारत-भूमि में व्याप्त जनता की, जाता, ताहा यदि अपने विचारों की व्यक्त करते हैं।

जाता कहता है -- 'हैं - हैं - यह क्या ? क्या हमारे वाक्य सदा सनातन धर्म की विलुप्त भूत हो गये ?' 'हमारे रक्तों में क्या हमारे परम महायज्ञ की यह दशा हो सकती है ? भित्र । हमारे जीने की तुलना अपने पक्षपाते जाते हैं। उठो रह कर जाग जाओ 'हरि न हिम्मत, विहारि न हरि नाम, जाहाँ विधि राखे राम ताही विधि रहि।' जाहाँ धर्म बंधाओ हुए कहती है -- 'हमारे रक्तों में भी प्राण दिव है कि नहीं देना ।' 'क्यों मैं अपनी उन्नी मोड़िती तन्त्रि ने जितने नारे गंगार की मोड़ती

१- रुद्र नाटिका -- नारसिंह ग्रन्थावली, पृ० २७२ ।

२- प्रतापनारायण मिश्र -- भारत दुर्दशा रूप, पृ० १७ ।

हूँ और जिस बड़े लम्बे घर गारा गारा लड़ा है हाजि जाति हूँ। मानातन
धर्म के मुँह पर हाथ फेर रहा। प्यारे तनातन धर्म, जसा तुम जाने बड़े धिक्कान
बीर बुझान होकर ऐसा बच्चों का नाच बजा रहा। हिः तुम्हारा जी
झिझा क्या है? तुम्हारे जसा तनातन है, सब उन्हें तवेत करो। आज दिन
की कोई तुम्हारी बरामती नहीं कर पाता। उठो।^१ जन्त में तनातन धर्म
की भी मज्जा खींचकर लो हँ और प्रेम बधाई का गीत गाया जाता है --

‘तबे मिलि के के तार मवाजी।

जयति तनातन धर्म जयति जय प्रेम बधाई गाजी ॥

प्रेम, भक्ति, ज्ञानमृत से लो, पीओ और मिलाओ।

बाप, धामा, जानन्द रा पावे, सब जन की लावाओ।^२

‘भारत गोभाग्य नाटक’ में ‘सहस्र-ले’ ‘भारत’ नायक है और गोभाग्यवती
नायिका है। धर्म देवता के रूप में एवं नरस्वती, दुर्गा, लक्ष्मी एवं लक्ष्मी देवी
रूप में उपस्थिति लेती हैं।^३ विविध लम्बे कार्य व्यापारों के मानकीकरण
का यही रूप ‘हिन्दी-उड़ू नाटक’ में भी उपलब्ध है। ‘हिन्दी-उड़ू’ स्वयं अपने
तन्त्रों में व्यापक रूप से प्रकाश डालते हैं और जन्त में विविध धर्मों के सम्मेलन
की भाँति ही ‘हिन्दी-उड़ू’ के मध्यममन्त्रव्य स्थापित हो जाता है।^४ ‘नागरी-
विलाप’ में केवनागरी का मानकीकरण किया गया है। वह कहती है -- ‘हाथ
-२॥ यह मेरे सुवर्णमय घर की कथा दशा हाथ हाथ मेरे इन तीसरी की
देख सुख्य लज्जित होता था तो यह क्या जीः ए बड़े-बड़े देता के मुँहा कर्मा
के बाये। वरे मेरे रूप पर तो शोड़े तो बहुत दिन की न भए यह तान-ति

१- राधाकृष्ण बाप -- धर्मालाप, पृ० ७-८ ।

२- बही, वन्तिम पृष्ठ ।

३- बड़ीनारायण शर्मा -- भारत गोभाग्य, पृ० १३ ।

४- रत्नचन्द्र बनीत -- हिन्दी उड़ू नाटक, पृ० ११ ।

उत्पाद का तारा देश की उत्थानात् हो गया था यही [नारों और देश
 २२] और नहीं ॥ है विधिना तु ज्ञा है मेरी परीतिन निमां सुल तां
 कि बहुत कीनी उहुं जान का धर जो नते पांति उत्तम बना है ।... [२३] और
 एक अनुभाषा और उल्लङ्घनी की जवान ने बोला। है मातवा का भी हार
 पीले बाँटी हम ने एक वृत्तान्त करे आथा तुलार एक पुत्र हरिपुत्र-द्वारा में
 बाँटे वहाँ ताऊ का हात कहिलेगा ।”

‘भारत कुर्वा’ एवं ‘भारत नामाग्य’ की भाँति ही पं० अम्बिकादत्त
 व्यास ने भारत नामाग्य के में सूरी, कुट, शिवा, उडा, भारत पताका,
 जेजी पताका, राजमनि, कन्वविता, उदारता, कला आदि स्त्री-पार्श्व एवं
 भारत दीर्घाग्य, विषय-भाग, भारत, भारत नामाग्य, प्रताप, उत्साह,
 शिल्प आदि पुरुष पार्श्व का मानवीकरण किया गया है। ‘भारत विषय-
 भाग की प्यारी। पाह संग जेरीजों की जब हूँ क्यों अधिक सुलारी। वर
 तेम की एक गुताह के जब नहीं याही भावत। भाँति भाँति तारी राउर की
 तादि बहाज मंभावत। बीना हाड़ि ज्वाह पथानी उभंगत ताहि माँही। दुध
 मताहं तधि बलि बिगुट गहत किया की बाँही। ताखन तेत तमागा यार्न
 रंगत है मांये।”^१ का रुड़ि का नारोन्दु का के और नाटकों में प्रयोग किया
 गया है और भावी तथा नार्मी के मानवीकरण द्वारा नाट्यकारों ने अपने ज्ञा-
 प्रवाह की रोचक तथा प्रभावी बनाने का प्रयास किया है।

(ख) पार्श्व के गुण कर्मागुवार नामकरण

जोड़ में नामकरण के साथ गुण एवं स्त्री का विशिष्ट ज्ञान रहा है।
 जोड़ का प्राणी व्यक्ति के गुण एवं कर्मा की उन्नति ने विशेष मान्यता प्रदान

१- राम गरीब बहुरीनी -- नागरी विज्ञाप, पृ० ६।

२- अम्बिकादत्त व्यास -- भारत नामाग्य, पृ० २३।

करता रहा है। नामानुसृत उसे गुण ज्ञात नाहि जसा जो गुण उसे मिले,
उसि के अरुप नाम उचरिअ करने में उसे प्रवृत्तता रखी है। 'देव दत्त नाटक'
में पुत्रि-सर्वकारियों में व्याप्त अभाव का मंडाकोड़ नाटककार ने किया है।
अख बरोदा का नाम सर्वसोदता, मुंजि का नाम स्वार्थद्वय और सांख्यिक
का नाम अतीर कात रहा है, जो कि उनके कार्य-व्यापार के अङ्ग हैं।

'सर्वसोदता -- उन्ने ताह, बाबल जो एन अखार भागी ने हाहाकार
मना किया है वहाँ मिले ने नहीं कुछ किया दिया कि कट तारे किन्दुस्तानी
के नहीं बरं मिताया तह फुल देते हैं, और वहाँ जो तार ताह नी एन
भागी जो से मिताया है कि उन भागी के भागी के निरन्तर में बड़ा परिश्रम
कर रहे हैं। स्वार्थद्वय मुंजि -- ताह जा तब अडो है। हमी भागी के
मुहम्मद के तोग हमी जफिर हुआ है। नहीं तो अखार भागी जो नी हमी
एक की छुकी में ठीक कर डी, भारे वीरों के एक बार गारद में करो तो बार
पीट में ही सब निद्रियां भूत जातीं। तब अखार-तखार जो छे में मिता
जाता।

बडीरीतात -- हां ताह, यह तो मजबूत है जैसा अब जो बड़े-बड़े रसे
हैं, उनकी मता कुछ को कह सकते हैं। ताँडा पारना तो और बात है उनके
बागे ताहो नी क्तारी जहाँ बताती है।^१

'विधाविनोद' नाटक में भी भागी के नाम उनके भागी के आधार पर
निहित किए गए हैं। राजा हाँगलोन, जीकपीटन मंत्री, विवेकी सुताखि,
स्वार्थद्वय सुताखि, नीरंग, नाँकुन, सन्त उपा याय, तजानी मंत्री, धींधा-
बंत जादि नाम ही उनके द्वारा दिए जाते हैं भागी का स्पष्ट ज्ञापन
कराते हैं। 'महाअंधेर नगरी' में बुद्धि एक पात्र की बुद्धि प्रकट है, जतः
उसका नाम बुद्धि बर्मा रहता नाटककार ने उपयुक्त समझा। 'वही वरिज

१- गोपागराम गुप्त गझर -- देवदत्त नाटक, पृ० २।

२- " " " -- विधाविनोद नाटक, पृ० १-२।

३- विद्यानन्द त्रिपाठी -- महाअंधेर नगरी, पृ० १।

नाटक में स्वामी बुद्धि एवं धातुबुद्धि पात्रों के नाम हैं, जो उनके कार्य-रूप को व्यक्त करती हैं और नाटककार दर्शकों के समक्ष अपने शिक्षात्मक-मूल्यों को स्थापित करने का प्रयास करता है। भूमिका में नाटककार ने यह विचारणा व्यक्त की है -- "मैंने (1) नाटक के रचने में का काल का विशेष ध्यान रखा है कि नाटक के प्रत्येक अंक में पाठकों को कोई उपरि सामयिक शिक्षा मिल सके।" स्वामी-बुद्धि -- "मैंने धूम का भरोसा नहीं किया है फिर क्यों धूम के पीछे और शीम की गंधों से घेना भी नहीं पड़ जायेगा। धातुबुद्धि -- [स्वगत] -- "तब यह भीम की है जो पिघल जायगा। उसे हमारी ना देखत जब घोपरिया में की मन की पूरी नेत्र डारें [प्रभट] देखी धूम ना भरे जात। स्वामी -- "की और भी तो कार्य करने हैं। धातु [मन में] -- "याहं तो जल्दी तुं नकिना कि घर जायके की फिरार पर रही है, मैं ना देखता कि जिम्मान की काम क्या रोज रोज रहता है [प्रभट] लहड़ी तो सामग्री है क्या क्या बारी तुं-- काम तो काम ही की राह तुं जात है।" १ "प्रेमसुंदर नाटक में नाटक के पात्र, प्रेम, सुन्दर, विताही, सुन्दर प्रसाद, रिखत बती, प्रमनातक की अपने नामा-मुक्त नाम करी हैं।

[4] शिक्षित भीम का चित्रण

लोकमान्यों में शिक्षित भीम [त्रियादेश] में सुन्दरियों का पाया जाना और उन्हें प्राप्त करने के लिए कामनायक का बहुत प्रयास -- का प्रचलित रुढ़ि है। इस प्रसंग द्वारा कामनायक की कामनी रूप मिल सका है। संयात-परगना के लोक साहित्य में 'त्रियादेश' का उल्लेख मिलता है। इसका

१- हुंवर हनुमंत सिंह -- बती चरित्र नाटक, भूमिका।

२- खिताबन लाल -- प्रेमसुंदर।

सम्बन्ध संघातों के गुरु कामरू से है। इसे कामरूप या कामरू देश भी कहते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि यहां केवल सुन्दरी नारियां हैं और ये जादू-टोना तथा वशीकरण कार्य में निपुण होती हैं, अतः इस देश को जादू का देश भी माना जाता है। वेरियर इल्विन ने लिखा है कि भारतीय लोक-कथाओं में जादू के देश की नारियां का विस्तृत विवरण उपलब्ध होता है। यह देश अत्यधिक समृद्धिवाली है। वहां नारियां ही नारियां हैं और उन्हीं का राज्य है। उनकी इच्छा से ही वहां के कार्य संचालित होते हैं।^१ गोपी-चंद नाटके में योगी मच्छीन्द्रनाथ अपना महाज्ञान भूत कर 'त्रियादेश' में फंसे जाते हैं। वहां वे भोग-विज्ञान में लिप्त हो जाते हैं। गुरु गोरखनाथ की कृपा से उनका उद्धार होता है। कुन्दन सेन और सारिका के मध्य बागी-लाप त्रियादेश के स्वरूप का स्पष्टीकरण करता है। "कुन्दन सेन - [घोड़े घोंड़े पर बैठा हुआ प्रवेश करके] -- ओ मैं कहाँ जाता था और कहाँ आ गया। काम्य की नदी के पार उतर कर मैं जिस किनारे पर नहीं जाना चाहता था, उसी किनारे पर घोड़े की दौड़ से चला आया। मैं जानता हूँ कि काम्य की नदी को उतरने के पीछे कामरू देश की सीमा आती है। निश्चय ऐसा ही है, अब मुझको यहाँ पर अधिक न रहना चाहिए। जल्दी से घोड़े को फौरन दूसरी पार जाऊँ। घोड़े को फौरन चाहता है कि सारिका आकाश में जानकर गाती है, कुन्दन आश्चर्ययुक्त होकर सुनता है। सारिका -- रे मनुष्य ! सब्र कर ! कहाँ जाता है ? एक बार इस काम्य नदी के इस पार

१- " Traditions about a land of woman, a land too given upto magic are widely distributed in Indian folk-lore. By the Santal this land is associated with their great Guru Kamru and bears his name. The country is very rich and fertile, and there only women living, or else the women predominate and no one is able to go there and stay."

(Myths of Middle India - Verrier Elwin Page 458)

मरुदेश की स्थितियों से देखा गया, फिर कहे वह खरिदारी क्यों न होय,
 हमारे भंत्र वत ने नहीं डुल गया, जो ने जग कात [३३] भंत्र पड़ी ने जागड़
 के मध्य ने जग गिरता है उतनी अभिर्भक्ति कर राजा पर जाता है । [३४]
 पानी ने पूरे है राजा कुन्दन जेन लोहा बन कर धागे की जग के जाता है ।
 लया मतड़ी परन्तु मन का वेग कम न हुआ । अब मोहिनी मन्त्र का उपयोग
 करे । [३५] मैं लिया हुआ फूल लीने पर फौज कर हाथ लम्बा रहती है ।
 सीता फूल ने लीने है सिंहर धारिद्र के हाथ पर बैठता है..... ।^१

‘गोपी वन्दे’ [कण्ठाजी] एवं ‘गोपीवन्दे’ [तलाराम] में की उपर्युक्त
 क्रियादेश प्रांग की प्रयुक्त किया गया है । [३६] कारण लोकागजी में इन
 नाटकों से सम्बन्धित कानन विख्यात हैं और लोक-मानस में से उन्हें मान्यता
 मिली है ।

(५) प्रिया की प्राप्ति करने के लिए जीनी वेष धारण करना

अवतार रूपी प्रिय की प्राप्ति करने के लिए गार्हस्थ्य व वन का
 त्याग करके वन्याव धारण करने वालों में मत्स्य-इनाम, गोरक्षाय आदि
 का नाम उल्लेखनीय है । ‘गोपीवन्दे’^२ नाटक में इस प्रांग की महत् रूप से
 स्थान मिला है । पं० रामनरेश त्रिपाठी द्वारा संग्रहीत गीतों में इन प्रांग
 से सम्बन्धित गीत हैं :--

‘तु हूँ तो जातु मेरा अपना खुला,
 हमरा के ना कहि जातु रे जी ।
 हाथ के लिए गोपी लीटिया जान्ह के धी लिया,
 जी गिया के वेष धरि के जाइत रे जी ॥’^३

१- श्रीमती लाली — गोपीवन्द नाटक, पृ० १४-१५ ।

२- कण्ठाजी के हनामदार — गोपीवन्द नाटक ।

३- पं० रामनरेश त्रिपाठी — कविता कौमुदी [भाग-२] पृ० ४७५ ।

दृष्टा बीजाओं में तन्मात्रा होने का उक्त निरुक्त है। राधादृष्टा की "इहम बीजाओं का नाकमुनि तर्पण कीर्ति है। अतः ही पौराणिक आधार नहीं मिलता। इन बीजाओं के भी दृष्टा विविध रङ्गमोड धारण करते राधा ने मिलने पाये हैं, किन्तु रङ्गमोडकाज ही जाता है।" ?

"बंदावली नाटिका" में श्रीदृष्टा बंदावली के नाम का जोगिन वेष में आते हैं। श्रीदृष्टा के हाथ तार्य-आधार के जोड़ में प्रेम-विश्रुत बंदावली के प्रेम की परिभाषा देना है और प्रेम के महत्व तथा उसमें व्याप्त प्रवृत्तियों का स्पष्टीकरण करना है। जोगिन आप ही आप कहते हैं -- "विःसन्नेह आत्मा प्रेम पमना है, इसी मेरे सुधि आने की शान्ति लोगों पर जो एक साथ बरसी बौड़ गयी। मेरी मैं जाँसुओं का प्रगाढ़ उमड़ आया। मुँह झार गीत-गा हो गया। शाय ! एक ही पल में यह जो सुख की सुख हो गई।" ?

शुद्धमैत्र्य द्वारा नायक का नायिका की प्राप्ति करने का प्रसंग श्री कवि के अन्तर्गत समाहित किया जा सकता है। "वितासुन्दर" नाटक में सुन्दर शुद्धमैत्र्य ने नाटिका में जाता है और हीरा नायिका के यहाँ रहता है। वह एक विशेष माता गुंथ कर नायिका के पास निजमाता है। माता में गोपनीय रूप से पुष्प विमित धनु-सर रख देता है। नाटिका ने राजमहल तक वह सुरंग बनाता है और वहाँ नायिका के समक्ष उपस्थित हो जाता है। नायक तन्मात्रा के वेश में राजाका में उपस्थित होता है। अतएव नायिका की प्राप्ति में शुद्धमैत्र्य की पूर्णतः सहायक है।

"यह तो सब ठीक है परन्तु जिस नाम के हेतु मैं यहाँ आया हूँ उसका तो कुछ जीव की नहीं किया। यहाँ मैं जिसे ^{जायँता} को नहीं मिले कि उसने कुछ उपाय पूर्ण किया मैं तो यहाँ छिपकर आया है। [किन्तु नाट्य करता है]।

+ + +

१- डा० राजेन्द्र कुमार -- पार्वती किन्दी दृष्टान्तिक काव्य, पृ० २०७।

२- व्यथित पुण्य -- बंदावली नाटिका, पृ० ५६।

[पक्ष में] जो राजाजय के तोगों ने बड़ा दुरा किया कि बिना पक्षिाने
 लंबीपुरी के महाराज गुण सिंधु के पुत्र राजकुमार सुन्दर को लारानार में भेज
 दिया -- क्या किसी ने उसे नहीं पकवाना ? मैं जानि जाऊँ महाराज ने
 कहा कि वह तो नहीं है जिसे दुष्टाने के हेतु जानने सुकने लंबीपुर भेजा
 था ।

बिना [हर्ष] ने -- यह तीन जूना की धार करता है । जहाँ भगवान ने
 फिर दिन फीरे क्या ? जब मैं भी उस पर बल्लर देखूँ कि ता में क्या
 होता है ।^१

‘मन्त्र मंजरी’, ‘योग्य योगिनी’, ‘मन्त्र मोक्षि नीवर सिंह’, ‘प्रेमगुंजर’,
 ‘माधवानन्द कामरंजिता’ आदि जोड़ नाटकों में इन रुढ़ि की कलाविष्ट किया
 गया है ।

(२) लीतिया डाह

लीत ज्ञानार्थ में किसी एक व्यक्ति की दो पत्नियों के मध्य गृह-स्तब्ध
 की घटनाएं उपलब्ध होती हैं । विमाता द्वारा लीत की सन्तान के प्रति विशेष
 और उनके विरुद्ध बह्यंत्रों की आयोजना लोभाना का प्रमुख अनिप्राय है ।
 भारतेन्दु-कुल के नाट्यकारों ने धुन के जीवन का आधार मुख्य तर्क नाट्य-
 रचना की, जिसमें लीतियाडाह की रुढ़ि समाविष्ट है । राजा बड़ी रानी के
 आग्रह से सन्तान प्राप्ति के लिए द्वारा विवाह करता है । नयी रानी बड़ी
 रानी की ही पर ने निश्चया देती है और वन में उसे पुत्र-रत्न प्राप्ता होता
 है । लीटी रानी के भी पुत्र होता है और उसे वह राजासी का उत्तराधिकारी
 बनाना चाहती है ।^२ इस प्रकार लीतिया डाह ध्वन-उपाख्यान के विधान में

१- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र -- विनासुंदर, कृष्णतं० रुद्र काशिकेय, पृ० ३५१ ।

२- ४- वामोदरशास्त्री छपे -- बाज सेत या धुन बरिच ।

३- मंतराम -- धुन तपत्या ।

वर्णन है। अर्थात् यदि कोई परित्याग के साथ माना-कमा में उपनयन है। विवाह की भाँति जैसी राजा उत्तरण के अज्ञान भाँति है और राजा की उ राधिका की नर। जो माना जाती है। जामोदर का ली नष्ट रूप में ५५५ नाट्यगतार राजाका [अर्थात् जामोदर] में ५५ प्रेम का रीति विधान हुआ है --

‘फरार -- सीने से सीने। जानन्द हो मनाती जो पर तुल्यमन जो है की नहीं। चुकीने कहां जा नर। जार कहां है तु ? यद्यपि प्रेम है। यद्यपि तुम्हारे वि. की दुःखदायी है। राज्याभिषेक विना करने हीन ? वाः धन्य है आप और आपकी परतता ॥ अर्थात् आपकी स्तना नहीं। मरु पड़ता कि ऐसे अप्रिय उत्पन्न में हमारे नरत राजा का तुम की विधि की स्मरण न ही ॥ तदास्तु विवाहविद्वत् जो जो वही आधारणा कन-ह बात है। परन्तु राज्याभिषेक की कारंवार नहीं जीत है न ?

+ + +

‘सीने -- सीने -- हाँ, हाँ ! तुमने कहा, क्या ? राम के अभिषेक में नर। की माँ का क्या काम होगा ? सब है, लिखा है स्वर्ग वाधनों के विचार से ही फुटे जाते हैं। वाः क्या जानन्द ? क्या उत्पन्न ! और नरत की माँ का स्मरण न होवे न ही पर राम के उत्तम [सीने मित्र] का की ऐसे समय विस्मरण ? ॥ सब ही है पत्ति के ही न जीवन्ता की वही वृत्ता है ।’^१

‘वैतियाडाह का ही यह प्रतिफल होता है कि ‘प्रयाग रामागमन’ में तीवरा जयन्ती कहता है -- ‘क्या कहें जब तब में उन पापाचारिणी नर उपद्रवा के मृत केही की शाय न वे वृत्ता, जानन्द न होगी ।’^२

१- जामोदरहास्वी नष्ट -- रामतीता नाट्य, अर्थात् जामोदर, पृ० २३ व २४ ।

२- कदरी नारायण प्रेमचन -- प्रयाग रामागमन, पृ० ४ ।

रुढ़ि-परिष्कार का कार्य

भारतेन्दु-सुनि नाट्य-साहित्य में प्रयुक्त रुढ़ियाँ के उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि भारतेन्दुसुनि कर्त्तव्य से नाटककारों ने अपनी नाट्य-रचना में स्थिति एक या और रुढ़ियाँ का आत्मघ्न गृह्यता किया है, और उनसे रचना लोक-ग्राह्य और उपयोगी हो गयी है। यहाँ यह विचार करना आवश्यक न होगा कि भारतेन्दु सुनि के नाटककारों ने नाट्य में व्याप्त रुढ़ियाँ को गृह्यता ही किया है किन्तु उनका अन्यायपूर्ण नहीं किया है, अपितु उन्होंने उनका रुढ़ियाँ को समाप्त है, जो लोकहित को उद्देशित कर सकती हैं।

ऐसी रुढ़ियाँ जो कि लोकमानस को पतनीन्मुख करती हैं, उनका भारतेन्दु सुनि के नाटककारों ने उग्र विरोध किया है। अतएव, परिष्कार की यह भावना सामयिक लोक-जीवन की समर्थ-दृष्टि प्रदान करने में सहाय रही है। स्वयं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने नाटक रचना की आवश्यकता पर विचार करते हुए लिखा है -- "नमाज (लोक) -- संस्कार नाटकों में देश की दुर्दृष्टियाँ का चित्रितना मुख्य लक्ष्य-बिन्दु है। देशस्वतन्त्र नाटकों का उद्देश्य पढ़ने वालों का देशी भावों के हृदय में स्वदेशातुराग उत्पन्न करना है।"^१

लोक में जोकाई सर्व विवाह में जन्मपत्री के ज्ञान की प्रशिक्षित रुढ़ि की अनुपयुक्तता पर प्रकाश डालते हुए "विवाहविनीत" नाटक की प्रशिक्षण में नाटककार सहित है -- "जोकाई, केवाई पर चित्रित करने वाले सुनीत्यादन की अभिलाषा, पाँच व्याह कर लिखी का जीवन से नार करने वाले सुनी

१- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र -- नाटक निबंध, पृ० ४।

की सुखता और भक्त टिप्पणी कि गुना और गणना करने अपने तथा 'बोड़
 व्याह करने वा करने वालों की निष्कलता, घर-स्थान के परस्पर प्रवृत्त और
 उचित प्रेम एवं सह विचार और नीति-निपुणता की कि विद्या के प्रण और
 अणु साक्ष्य द्वारा उनके नीति और पाणिपुत्र-धर्म का निर्विघ्न प्रगति नहीं -
 भांति दिखाने का उद्देश्य किया गया है।^१ सती-वरिच में नाट्यकार कहता
 है -- "तबुत नहीं है, जो अपनी कुल परंपरा में होते। अपने बाप-दादा और
 परदादा के लिए कुछ कामों की कर और अपने पुरुषार्थों की बनाई रीति की
 न तोड़ें।"^२ यहाँ रीति का अर्थ उपादेय रीतिधर्मों से है ग्रहण करना नार्थक
 होगा। 'भारत दुर्दशा' में रोग (रोग का मानव-करण) कहता है -- नगर,
 आप, भुत, प्रेत, जीना सब भरे की रूपान्तर हैं। मेरी ही बढ़ीतत जीना,
 बलानि, सयाने, पंडित, सिद्ध लोगों की ठगते हैं।^३ हिन्दी-उर्दू नाटक में
 नाट्यकार स्पष्ट उद्घोष करता है -- "जो रस्में अच्छी और सुना निब जी,
 उनके जारी रखी में हमारी तोड़ना करना चाहिए। उनकी भुना सुना निब नहीं।
 परन्तु जो निरफ़्त किसी बात गरज के जारी की गई थी, और जो गरज कि
 अब उनके नहीं मिलती, उनकी तोड़ देना चाहिए।"^४ इन तत्त्व का स्पष्टीकरण
 'दुःखिनी जाता' में नाट्यकार ने प्रभावी रूप में प्रस्तुत किया है -- "जो कहिए
 कि जो बाप-दादा करते आए हैं, वही करना चाहिए, अगुण का न लेना
 चाहिए। फिर यह कहता है कि 'बाप लोग जीन-जीन की बातें बाप-दादा
 की करते हैं? वेद पुराण शास्त्र में किसी में जन्मपत्री देना के विचार करना
 नहीं लिखा है। देखिए, श्री रामचन्द्र ने जन्मपत्री नहीं देते थी और हृष्णकेंद्र
 ने। पुराने शास्त्रों में यह जाना जाता है कि जाने स्वयंवर उत्थादि करते

१- गोपातराम गस्मरी -- विद्याविनायक नाटक, मुमिना।

२- हनुमंत सिंह -- सती वरिच, मुमिना।

३- पं० प्रतापनारायण मिश्र -- भारत दुर्दशा, पृ० ५।

४- रत्नचन्द्र -- हिन्दी-उर्दू नाटक, मुमिना।

बिबाह होता था, यदि भी जन्मपत्री नहीं दिखाई जाती थी । फिर उनके पश्चात् लोगों ने यह बात बतलाई कि क्यों ? या तो उनकी कोई हानि या लाभ का प्रभाव । यदि वे मूर्ख थे तो उनका अक्षरणा करना भी मुश्किल है और यदि वे जगन्मोहक होते थे, तो कब बात जान नहीं दे । जन्मपत्री के ऊपर निर्भर होकर कभी-कभी लोगों की अंधविश्वास में आना कभी नहीं मुश्किल है ।¹ जय नार सिंघ ने विचित्रता व हरने कार-कुंठ द्वारा बच्चों का मुर्खता द्वारा प्राणनाश करना दिखाया गया है । विधिवत मोर्चिनात के अवयव पत्नी स्थाया जीर्णधि में ज्येष्ठा काठ-कुंठ पर दिखाता करी है ।² परिणामतः उनके अतीत पुत्र का प्राणान्त हो जाता है । अतः, नारोन्दु का के नाट्यकारों ने लोक में प्रचलित कठिनों के अतिशयोक्ति रूप का विरोध कर लोकमान्य की सही शिक्षा प्रदान की है ।

नारोन्दुर्ण व नार्य-नाहित्य में व्याप्त लोक-कठिनों का का के नाट्यों के लोक रूप के निर्माण में गहकाया रहीं हैं । लोक-कठिनों अधिकांश रूप से लोक-जमाओं की ही देन हैं और इनका लोक-नाहित्य में अनन्त मात्र में प्रभावी स्थान रहा है । लोक-कठिनों के प्रयोग से नाट्यकार अपने अस्मिताचित भावों को लोक-ग्राह्य बना लेते हैं ।

इस प्रकार लोक-कठिनों ने नारोन्दुर्ण व नाट्यों के चित्त की भाँफें दूर तक आवृत करके उन्हें अधिकाधिक लोक-मुक्त बनाने में योग्य प्रदान किया है ।

-----0-----

1- राधाकृष्ण शान -- दुःखी का बाजा -- भूमिका ।

2- देवकीनन्दन खिलौना -- जय नार सिंघ की, पृ० ४-५ ।

अध्याय - ४

भारतेन्दुसिनि नाट्य साहित्य में लोकभाषा का स्वरूप

भारतेन्दु-युग की भाषा नीति

भारतेन्दुयुगीन साहित्यकार लोकमानस को प्रेरित-उद्बलित करके एक ओर यदि भारतीय सांस्कृतिक गौरव से उसे अवगत कराने के लिए प्रयासरत थे तो दूसरी ओर वे नवीनवैज्ञानिक विचारधारा से सम्बन्धित करके उसकी विज्ञानोन्मुख कर रहे थे ।

भारतेन्दु युग में नाटक युगबीध का एक सशक्त माध्यम बनकर आया । "तत्कालीन परिस्थितियों में यही स्वभाविक था । नाटक भी तब जगत से घनिष्ठतम रूप से सम्बद्ध है । राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति की दृष्टि से भी यह सर्वोत्तम रचना-विधान है । दृश्य क्राव्य होने के कारण यह भावों और विचारों को सामाजिकों तक प्रेषणयोग्य बनाने का यह अत्यधिक समर्थ साधन है । विभिन्न देश काल के व्यक्तियों तथा परिस्थितियों की अवतारणा जितनी अच्छी तरह नाटक में की जा सकती है साहित्य के किसी अन्य रचना-प्रकार के माध्यम से उतनी अच्छी तरह नहीं की जा सकती । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा उनके मण्डल के लेखक अपनी सम्प्रामाणिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक गतिविधि के प्रति पूर्ण जागरूक थे । इनकी अभिव्यक्ति के लिए नाटक से बढ़ कर और कौन रचना-प्रकार अपनाया जाता ।" ^१

लोकमानस तक अपने उद्देश्य को सम्प्रेषित करने के लिए उन्होंने लोक-कथाओं एवं जनकानेक लोक-कहियों की व्यापक पृष्ठभूमि का अवलम्बन ग्रहण किया , किन्तु उनका यह कार्य लोकजीवन के अनुकूल संवेदनशील भाषा के अभाव में असाध्य-सा था । अतएव भारतेन्दु युग में नाटककारों ने लोकमानस से सजीव सम्बन्ध स्थापित करने के लिए लोकभाषा का भरपूर आश्रय ग्रहण किया ।

१- डा० बच्चन सिंह -- हिन्दी नाटक, पृ० २१ ।

भारतेन्दु-सुभा के पूर्ववर्ती साहित्यकारों का ने गद्य में साहित्य रचना प्रारंभ कर दी थी। पद्यमय साहित्य-सर्जना की सीमित प्रवृत्ति में विज्ञान की स्थिति परिलक्षित होने लगी थी और धार्मिक भावना भी गद्य के माध्यम ने प्रस्तुत होने के लिए मार्ग खोज रही थी। विद्वत्सनाथ और गोकुलनाथ की पुष्टिमार्ग सम्बन्धी कथित वाचार्थ, सदासुख लाल, लल्लू लाल और सदास मिश्र की नीति-धर्म सम्बन्धित व्याख्याकार, वैद्यक शास्त्र की प्रयोगात्मक ठेठ कहानी, शिवप्रसाद वित्तार हिन्दू और राजा लक्ष्मण सिंह के क्रमशः ऐतिहासिक और साहित्यिक कृतियाँ गद्य का शिस्तान्यास ही नहीं कर चुकी थीं वरन् उनके निर्माण की ओर भी अग्रसर हो चुकी थीं। आवश्यकता ही बात की थी कि गद्य में पद्य की भाँति जन-जन तक सम्प्रेषित होने की क्षमता हो, अतः गद्य की उन्नता ही लोकोन्मुख हो जितना कि पद्य। इस प्रकार गद्य का निर्माण भारतेन्दु सुभा के लेखकों ने किया।

भारतेन्दु-सुभा के लेखकों में लोकवेतना के प्रति जाग्रत निष्ठा होने के कारण उनके द्वारा गद्य की परिष्कृत शैली ही सम्पादित हुई। भारतेन्दु-सुभा के पूर्व लेखकों का दृष्टिकोण ही भिन्न था। गोकुलनाथ और सदासुख लाल का आदर्श धार्मिक विचारों का प्रचार करना था। अतएव गद्य के मौन्द्य की ओर वे ध्यान नहीं दे सके। इसी प्रकार लल्लू लाल और सदास मिश्र पाठ्यपुस्तकें लिखते हुए भी उपदेशात्मक प्रवृत्ति की अवहेलना नहीं कर सके। मुंशी दशा जल्ला खाँ ने तो मनोरंजन के लिए भाषा के साथ विनोदात्मक प्रवृत्ति का सहारा लिया। शिवप्रसाद और लक्ष्मण सिंह ने गद्य की रूपरेखा पर विचार करना प्रारम्भ कर दिया था, किन्तु दोनों अपने-अपने आदर्शों के व्यूह में उलझे हुए थे। शिवप्रसाद ने अरबी-फ़ारसी के शब्द-समूह को समाविष्ट कर भाषा का विकास करना चाहा तो लक्ष्मण सिंह ने प्रजभाषा के शब्दों का प्रयोग किया। इस प्रकार सहज गद्य की आवश्यकता अनुभव करते हुए भी भारतेन्दु-सुभा के पूर्ववर्ती लेखक असफल रहे।

गद्य के उद्धारपरम्परा में बहुत-सी शक्तियाँ काम कर रही थीं। पहली तो यह थी कि शृंगार के बोझ से लदी हुई ब्रजभाषा की कविता ने एक ही विषय के पिष्टपेषण से कुरुवि उत्पन्न कर दी थी। इस प्रकार कविता जो साहित्य की सन्मार्ग शासिका थी अपने महत्त्व के पद से गिरने लगी और कुरुवि वंचित्व के लिए गद्य की आवश्यकता जात हुई। दूसरी बात यह थी कि साहित्य के जाँचों का निरूपण पद्य में विस्तारपूर्वक स्पष्टता के साथ नहीं हो सकती था, इसलिये भी गद्य की आवश्यकता हुई। तीसरी बात यह थी कि अंग्रेजी शासन ने भावों की परिधि बहुत विस्तृत कर दी थी और और विषयों की विवेचना के लिए गद्य का सहारा लेना अनिवार्य हो गया था। साथ ही साथ अंग्रेजी और बंगला के साहित्य के सम्पर्क में आने से हिन्दी साहित्य ने उनके नाटक और उपन्यास के बंधन की ओर दृष्टिपात कर उसी मार्ग का अवलम्बन भी किया। इसके लिए गद्य की आवश्यकता हुई और साहित्यिक गद्य के निर्माण की भावना प्रधान रूप से सामने आई। छात्रों के धर्मप्रचार और स्कूलों की पाठ्यपुस्तकों ने भी परिष्कृत गद्य के लिए मार्ग तैयार किया।^१

भारतेन्दु ने लोकसाहित्य को बढ़ावा दिया क्योंकि बिना इसके भाषा-विषयक प्रगति नहीं हो सकती थी। लोक साहित्य को योग देने का अवसर था कि जन बोली के उन शब्दों को अपने युग के साहित्य में प्रयुक्त किया जाए, जिन्हें वैज्ञानिक कहा जाता है। क्योंकि बिना इन शब्दों के ग्रहण फिर लोक-साहित्य भी महत्ता ही लुप्त हो जाती है। भारतीय संस्कृति का जानाप एवं देश की वर्तमान स्थिति का परित्यक्त इन्हीं देशी शक्तियों के माध्यम से संभाव्य हो सका था।

भारतेन्दु-युग के नाटककारों ने लोकदृष्टि को प्रसर बनाने के लिए मध्यम मार्ग का अनुसरण किया, परिणामतः भाषा में अत्यधिक सख्त प्रवाह आ गया। पं० बालकृष्ण भट्ट के शब्दों में -- "अब एक प्रश्न इसके सम्बन्ध में और

१- डा० रामकुमार वर्मा -- साहित्य विन्तन, पृ० ८४-८५।

उठता है कि यदि भाषा की धारा ऐसे अपरिवर्तनीय झं पर उतने जोर-शोर से साथ बह रही है कि उसमें बूँ भी नहीं कर सकते तो किसी समय के अच्छे-बच्चे लेखकों का क्या दबाव का असर उन पर होता है ? । हा प्रश्न का उत्तर सत्य में नहीं मिल सकता है । पुरानी हिन्दी को लीजिए, पुराने ठेठ हिन्दी शब्दों को कोई अच्छी तरह सोच-विचार कर लिखने वाला फिर ने जिनाकर समाज में प्रचलित कर सकता था है । अपनी मिल की की भाषा के नामकाजी शब्दों को मर जाने का मृतक प्रायः होने से बचाना अच्छे लेखकों का काम है । बाहरी भाषाओं के शब्दों को अपना-ता कर डालना, जिसे भाषा दिन-प्रतिदिन अमीर होती जाए यह भी एक बड़ा काम है हमारे देश ने ही व देखते अंग्रेजी में ही ने हिन्दुस्तानी गड़नों का पड़ना आरंभ कर दिया, जो पाने की बूड़ियाँ जड़ाऊ, कंठे आदि उस तरह यदि हम अपनी मर्ने मातृभाषा की अंग्रेजी भाषा के शब्दों से आभूषित करें तो क्या फायदा है ।^१ परिणामतः "सड़ी बोली के माध्यम के रूप में भारतेन्दु-धुआ की चेतना ऐसी उठ सड़ी हुई, जो देश शताब्दियों के अलगाव बदन की फाड़-पाँड़कर सड़ा ही गया हो । सड़ी बोली के गद्य ने नवीन दृष्टि को अपनाया और हा प्रकार यह समूचा गद्य-साहित्य उसकी चेतना एवं आकांक्षाओं का प्रतीक बन गया ।"^२

अरस्तू ने ड्रामा का चौथा तत्व भाषा बताया है । वे शब्द जो पात्रों के रूप में मंच पर अभिनेता बोलता है । यह वह माध्यम है, जिसके द्वारा पात्र अपने विचार और अंततः नाटक के विचार दर्शक तक सम्प्रेषित करते हैं । नाटक की भाषा सीधी और सरल होती है, जो तुरन्त अपने अर्थ के साथ दर्शक की समझ में आ जाए । नाटक, उपन्यास या कविता की पुस्तक नहीं है कि उसकी व्याख्या के अर्थ समझने के लिए दर्शन रंगमंच में बैठकर नाटक के पृष्ठ उलट कर देख सके ।^३

१- हिन्दी प्रदीप -- जून, १८८५, पृ० ७ ।

२- डा० सुशीला धीर -- भारतेन्दुधुआ नाटक, पृ० ४७ ।

३- डा० लक्ष्मीनारायण लाल -- रंगमंच और नाटक की भूमिका, पृ० ११६ ।

भारतेन्दु युग में नाट्य-रचना के पीछे नाट्यकारों का उद्देश्य यही था कि प्रत्येक स्तर के व्यक्ति को सामयिक शिक्षा उपलब्ध हो सके, अतः उनके द्वारा सज्ज और स्थानीय बोली से युक्त भाषा प्रयुक्त करना स्वभाविक हो गया था ।

भारतेन्दु-युग के नाट्यकारों ने भाषा-तत्त्व को दृष्टि लिए अत्यन्त प्रमुखता प्रदान की । वे यह कली-नांति जानते थे कि कथावस्तु, पात्र तथा चरित्र विकास के लिए संवादों में प्रयुक्त भाषा ही एक ऐसा उपकरण है, जिससे एक ओर कथावस्तु का विस्तार होता है तो दूसरी ओर पात्रों का चरित्रिक विकास होता है । अतः यह कहना अनुपयुक्त न होगा -- "भारतेन्दु के माध्यम से सड़ी बोली की प्रतिष्ठा हिन्दी साहित्य में एक बड़ी क्रान्ति थी ।"^१

भारतेन्दुयुग में प्रमुख नाट्यकारों की भाषा-नीति

भारतेन्दु

भारतेन्दु के साहित्यिक चेतुस्त्व ग्रहण करने की अवधि तक सड़ी बोली में गद्य रचना के लिए उसके वृजरीजित पूर्वोपन से प्रभावित तथा जन-प्रचलित, संस्कृत निष्ठ, अरबी-फारसी के शब्दों से युक्त रूपों का प्रयोग हो रहा था । काव्य के लिए वृजभाषा का प्रयोग पारम्परिक था, किन्तु यत्र-तत्र आंशिक रूप में सड़ी बोली का प्रयोग भी प्रचलित था । अतः साहित्य में भाषा-प्रयोग का कोई सर्वमान्य स्वरूप निर्धारित नहीं हो पाया था । हिन्दी की विविध शैलियों के संदर्भ में भारतेन्दु ने विचारणा व्यक्त की है कि --
"भाषा का तीसरा अंग लिखने की भाषा है और इसमें बड़ा भगड़ा है कि कोई कहता है कि उर्दू शब्द मिलने चाहिये और कोई कहता है कि संस्कृत शब्द

१- डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी -- भाषा और संवेदना, पृ० ५ ।

२- भारतेन्दु शरिरचन्द्र -- बड़े भाषण की कविता, -- कविता मञ्जरी,

अध्या० २, पृ० ३० २२-२३-४

होने बाह्य और अपनी-अपनी रुचि के अनुसार सब लिखते हैं और हाके हेतु कोई भाषा अभी निश्चित नहीं हो सकती ।^१

भारतेन्दु की भाषा में न तो संस्कृत शब्दों की बरमार हुई और न अरबी-फारसी के शब्दों का बहिष्कार ही मिलता है । लोग को कौन सी शब्दावली प्राप्य होगी, इसका उन्होंने सदैव ध्यान रखा । उन्होंने हिन्दी की उस समय प्रचलित बारह शैलियों के उद्धरण प्रस्तुत किए हैं, जिनमें संस्कृत के शब्द अल्प हैं । वास्तव में, भारतेन्दु-युग में संस्कृत के शब्दों के जाने पर भी भाषा का सुबोध बना रहना, फारसी-अरबी के शब्द जाने पर भी साथ-साथ उर्दूपन न जाने से हिन्दी की स्वतन्त्र सत्ता का प्रमाण^२ प्राप्त होता है । उनकी भाषा प्रयोग संबंधी अवधारणा को निम्नलिखित शैलियों के अन्तर्गत स्पष्ट रूप प्रदान करना उपयुक्त प्रतीत होता है ।

व्यावहारिक शैली इस शैली के अन्तर्गत तद्भव शब्दों की प्रमुखता है । किन्तु प्रचलित संस्कृत, अरबी, फारसी तथा अंग्रेजी आदि भाषाओं के सामान्य शब्दों की यथास्थान प्रयुक्त किया गया है । स्वाभाविक तथा सज्जता की दृष्टि से मुहावरों और कहावतों का प्रयोग विशेष रूप से किया गया है । इस शैली के रूप का निम्नलिखित उद्धरणों से परिकल्पित मिल जाता है --

[क] "यदि यह न हो तो हमको डिनर-होम में निर्मन्त्रित करो, बड़ी-बड़ी क्रमे-
टिरियों का मिम्बर करो, सीनट का मिम्बर करो, जस्टिस करो, जररी
मजिस्ट्रेट करो, हम तुमको प्रणा करते हैं ।"^३

१- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र -- नई भाषा की कविता [साप्ताहिक पत्रिका],

खण्ड-२ पृष्ठ १२-१३ ।

२- पं० रामचन्द्र शुक्ल -- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पृ० ६ ।

३- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र -- अंग्रेज स्तोत्र बंश्या, पृ० ३६ ।

[ख] "मिठाई हरिया की आरिफ ने लाया है। बाजूसाही बिलुल बाबू साही नीतर जाठ के ठ टुकड़े पर हुए, लड्डू 'भूरके', बरफी अहा हाहा ! गुड़ से भी बुरी, शेर लाचार होकर बने पर गुजर की, गुजर गई गुजरान क्या कोपड़ी क्या मंदान, बाकी हाल कल के स्त में ।" १

[ग] "मैं तुम्हें क्या तमाशा दिखाऊंगा हां धन्यवाद कलंगा क्योंकि निःसंदेह तुमने ऐसा तमाशा दिखाया कि सब कुछ भूल गया, अहा ! स्त्री-पुरुष, पंडित-सूत्र, अपना विगाना और लोटे-बड़े सबका तमाशा देखा पर वाह ! क्या ही तमाशा है -- तमाशा तो है पर देखने वाले थोड़े हैं, न ही तुम देखो मैं देखूं, उन्हीं तमाशाओं में से यह भी एक तमाशा है देखो ।" २

उपयुक्त उद्धृत उद्धरणों में भाषा नौकाम्य एवं प्रवाह्यता है। यत्र-तत्र रूपक, उपमा, अनुप्रास, यमक आदि अलंकारों को भी प्रयुक्त किया गया है, किन्तु उपमान जनसामान्य के जीवन से ग्रहण किए गए हैं, उदाहरणार्थ --

[क] "[विदूषक] सच्च है, और तुम्हारी कविता ऐसी है जैसे सफ़ेद फर्श पर गोबर का चोथ, सोने की सिक्की में लोहे की घंटी और दरियाई की अंगिया में मूँज की बस्तिया ।

+ + + +

विवक्षाणा -- और जो तुम भी टेंट किए जाओगे तो तुम्हारी भी स्वर्ग जाट के एक ओर के पाँख की अनुप्रास मोड़ लो और लिखने की तामग्री मुँह पीतल पान के मसाले का टीका लगा लो ।" ३

[ख] "कृष्ण प्रताप ने दामोदर से कहा -- "तुमने हमारा नेद क्यों खोल दिया । ह हा ॥ इसकी तुम नेद खोलना कहते हो ? अब हमने जाना कि हम

१- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र -- सरयू पार की यात्रा -- हरिश्चन्द्र चन्द्रिका --

खण्ड ६, सं० ८, पृ० १३ ।

२- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र -- वैदिकी सिंहा सिंहा न नवति, पृ० ७ ।

३- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र -- कपूर मंजरी, पृ० ८ ।

उसको नहीं छिपा सकते तो हमने क्या बुरा किया कि उस नेद को ऐसे आदमी से कह दिया जो उसे छिपा सकता था !!^१

भारतेन्दु-युगिन भाषा की व्यावहारिक शैली के सन्दर्भ में रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि, "राजा शिवप्रसाद मुसलमानी हिन्दी का स्वप्न की देखते रहे कि भारतेन्दु ने स्वच्छ आर्य हिन्दी की सुसज्जित दिलाकर लोगों की चमत्कृत कर दिया। स्वार्थी लोग समय पर ब्रह्म चलाते ही रहे, परंतु भारतेन्दु की स्वच्छ वंदिका में जो एक बेर अपने गौरव की कलह लोगों ने देत पाई वह उनके विषय विषय से न हटी।"^२

डा० रामविलास शर्मा ने लिखा है -- "भारतेन्दु ने जोई नई भाषा नहीं चलाई। उन्होंने प्रचलित खड़ी बोली की साहित्यिक रूप दिया। उनके पदा में तीन बातें महत्वपूर्ण थीं। उनकी भाषा संबंधी नीति वही थी जो अवधी और ब्रज के पुराने हिन्दू और मुसलमान कवियों की थी यह भाषा नीति यह थी कि संस्कृत तत्त्वम के मुकाबले में तद्भव शब्दों का प्रयोग करना, और बुनियादी शब्द भण्डार के लिए संस्कृत का सहारा लेना। दूसरी बात उनके पदा में यह थी कि उन्होंने ग्रामीण बोलियों का स्वभाव पहचाना और अपनी हिन्दी को गांव के पड़े लिखे लोगों के लिए सुलभ बनाने की कोशिश की। तीसरी बात उनके पदा में नागरी लिपि थी।"^३

ऐतकालीन भाषा की स्वभाविक प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए ध्वनि, शब्द, लिंग, वक्ता-विन्यास आदि सभी में उसके लोकप्रिय प्रचलित रूप को प्रयुक्त किया गया है। तभी तो, 'अंग्रेजों की लेखनी से भी यह बात व्यक्त हुई कि जो भाषा दिहाती और किसानों की कहलाती थी वही आज सर्वगुण में श्रेष्ठ, मधुर, ललित तथा मनभावनी बन गई।"^४

१- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र -- बीज की बातें [हरिश्चंद्र वंदिका], सं० ५, पृ० १, पृ० ३१

२- पं० रामचन्द्र शुक्ल -- जानन्द कादम्बिनी, ७ मेष ३३६, पृ० ५४।

३- डा० रामविलास शर्मा -- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पृ० ७८।

४- डा० उषा माधुर -- भारतेन्दु की खड़ी बोली, पृ० ६७।

संस्कृतनिष्ठ शैली

इस शैली में संस्कृत के तत्सम शब्दों की बहुलता है। संस्कृत के दीर्घ, संधिभङ्ग, क्लिष्ट सामासिक पडावली की प्रधानता होने पर भी आवश्यकतानुसार लोक-प्रचलित भाषा समाविष्ट की गई है। कथन की पुष्टि के लिए संस्कृत के श्लोकों तथा सूक्तियों का प्रयोग किया गया है। जैसे :--

“दू० । महाराज आपने पहिले ही ऐसा प्रबंध किया है कि कोई चंद्रगुप्त से विराग न करे इस हेतु सारी प्रजा महाराज चंद्रगुप्त में अरुक्त है पर राधास मंत्री के दृढ़ मित्र तीन ऐसे हैं जो चंद्रगुप्त की वृद्धि नहीं कर सकते।”^१

भारतेन्दु की संस्कृतनिष्ठ भाषा के पूर्व ही राजा लक्ष्मण सिंह संस्कृत-निष्ठ भाषा का प्रयोग कर चुके थे तथा देश की अनेक भाषाओं में संस्कृत का प्रयोग होने से जनता इस प्रकार की भाषा शैली से परिचित हो चुकी थी। अतएव भारतेन्दु की यह न यह शैली स्वाभाविक नहीं लगी।

मिश्रित शैली

इस शैली के अन्तर्गत संस्कृत, उर्दू, अंग्रेजी, बंगाली, गुजराती, पंजाबी, ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली के शब्दों का प्रमुख युक्त रचनाओं की सम्मिलित किया जा सकता है। नाटकों में पात्रानुसार संवाद प्रयुक्त करने में भाषा के इस रूप का प्रयोग भारतेन्दु युग के अनेक नाटककारों ने किया है। ‘चन्द्रावली’ में खड़ी बोली एवं ब्रजभाषा का सम्मिश्रण स्वाभाविक रूप से हुआ है। जैसे --

“विशेष किसका कहूं और न्यून किसका कहूं, एक से एक लड़कर हैं। श्रीमती की कोई बात ही नहीं, वे तो श्रीकृष्णही हैं, लीलायें दो हो रही हैं, तथापि सब गोपियों में श्री चन्द्रवाली के प्रेम की चर्चा बाजस्त तो ब्रज के डगर-डगर में फैली हुई है। जहा ! जैसे

कैसा विलक्षण प्रेम है, यद्यपि माता-पिता, भाई-बन्धु सब निषेध करते हैं और उधर श्रीमती जी का भी भय है तथापि श्रीकृष्ण ने जल में डूब की भांति मिल रही हैं। लोहलाज, गुरुजन जोई बाधा नहीं कर सकते।

भारतेन्दु ने अपने 'नाटक' शीर्षक निबन्ध में 'भाषा नाटक' के अन्तर्गत पूर्वलिखित नाटकों का उल्लेख करते हुए लिखा है -- "विशुद्ध नाटक रीति ने पात्र प्रवेशादि नियम-रक्षाण द्वारा भाषा का प्रथम नाटक भोरे पिता पूज्य वरण श्री कविवर गिरिधरदास [वास्तविक नाम बाबू गोपालचन्द्र] का है। ब्रजरत्नदास ने 'नहुष' नाटक में प्रयुक्त भाषा कृ के संदर्भ में लिखा है -- "पथ तथा गव दोनों ही भाषा में इन्होंने अरबी-फ़ारसी शब्दों का प्रयोग किया मन्त्र है, बहिष्कार नहीं और कहीं-कहीं तो विविध मेल भी है, एक हिन्दी तथा एक फ़ारसी शब्द का जैसे आर्जु-हीन। ऐसे ही जहान-महान तथा प्रधान-मिसान हैं। ये शब्द कहीं शुद्ध रूप में प्रयुक्त हुए हैं। जैसे जाला, सास, मुहाल आदि शुद्ध रूप में आए हैं और फुराक, नगीब, तखीर, अफास आदि बिगड़े रूप में गवांश में खड़ी बोली का ही प्रयोग है जिस पर ब्रजभाषा का पुट है -- जैसे :-- इतने में प्रविष्टो, सुदरसन, चौबदार, प्रनाम करि ठाढ़ी भयो, तब सब देवन नें मेंट दीनी, सुदरसन नें पृथक्-पृथक् हाजिरी कौली, हंड में मेंट लीनी।"

बालकृष्ण भट्ट

भारतेन्दु की भाषा-नीति एवं प्रयोग-स्वरूप ने उनके समकालीन नाटक-कारों की प्रभावित किया, जिनमें पं० बालकृष्ण भट्ट का विशिष्ट स्थान है। भारतेन्दु ने यह विचारणा व्यक्त की थी कि हमारे बाद हिन्दी में भट्ट जी की ही लेखनी चमकेगी। भट्ट जी का विचार था कि "हिन्दी के अक्षरों में

१- व्यथित हृदय --[सम्पादक] -- श्री चन्द्रावली नाटिका, पृ० ११।

२- ब्रजरत्नदास --[सम्पादक] -- नहुष नाटक, पृ० १७।

सब तरह के शब्द लिखे जा सकते हैं, जैसे के तैसे साफ़-साफ़ पढ़ भी लिए जा सकते हैं और ऐसे सरल कि गंवार दो महीने के परिधम में अच्छी तरह पढ़ ले सकता है ।^१

मदट जी विभिन्न भाषाओं के लोकप्रिय शब्दों को ग्रहण कर हिन्दी की अभिव्यञ्जना-शक्ति की अभिवृद्धि करने के पक्ष में थे । इस सम्बन्ध में उन्होंने लिखीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्वागतभारिणी सभा के सनापति पद से भाषणा देते हुए कहा था -- "उन्होंने इस सभा को कुछ भी उन्नत करने का प्रयत्न न किया । संस्कृत में कहीं खरी का खरी रंग डाले पर मुहावरेदार हिन्दी उन्हें बार पंक्ति लिखना पड़े तो उसमें वे का गलती उत्तर तथा व्याकरण की करेंगे ।..... जहाँ ग्रामीण जन दिन भर की गाढ़ी मेहनत के उपरांत एक स्थान में बैठ प्रमोद सूचक बातचीत करते हैं वहाँ अब भी नागरी के अतिरिक्त शब्दों का अधिकतर व्यवहार क्लिष्टतम दिखलाई पड़ता । सब है जिस पत्थर की म्यामार ने रदी समझकर फेंक दिया वही कोने का सिरा हुआ । वह भाषा जो ग्राम वाले बोलते हैं यद्यपि परिष्कृत न हो तो भी शुद्ध हिन्दी कहलाई जायगी । कवि मंडली बराबर इस पवित्र भाषा का आदर करती आई है । इस भाषा में सौ में नब्बे शब्द संस्कृत के अपभ्रंश हैं । हमारे कवियों को अपभ्रंश जितने सोहावने अपनी कविता के लिए मालूम हुए उतने शुद्ध संस्कृत नहीं । पुराने कवि और आधुनिक कविता के तुलना करने वालों में यही बड़ा अन्तर है कि तुलसीदास वाले संस्कृत का प्रयोग अपनी रचनाओं में जितना अधिक करते हैं उतना हिन्दी का नहीं ।"^२

मदट जी हिन्दी और उर्दू को अलग-अलग भाषा मानने के पक्ष में नहीं थे । "यह कौन कहता है कि उर्दू दूसरी वस्तु है । सब पूरी तो उर्दू भी इसी

१- बालकृष्ण मदट -- हिन्दी प्रदीप, जिल्द २२, संख्या ५, पृ० १६ ।

२- बालकृष्ण मदट -- 'मर्यादा', सितम्बर १९११ पृ० २२४-२३० ।

हिन्दी का एक रूपान्तर है।^१ वे मुहावरों-कहावतों को भाषा की प्राण-शक्ति मानते थे। 'भाषाओं का परिवर्तन' शीर्षक निबंध में उन्होंने लिखा है --

"इसके मानने में किसी को इंकार होना कि हर एक भाषा के डंग निराले ही हैं।..... मुहावरे ही हर एक भाषा की जान हैं। हिन्दी और ऊर्जु की ही लीजिए इन दो भाषाओं में कहीं-कहीं थोड़ा व्याकरण के नियमों का तो नेद है किन्तु बड़ा भारी अन्तर मुहावरों की निराली वाला है।..... जब तक किसी भाषा में जान है अर्थात् रोजमर्रा के काम में लोग उसे बोलते हैं और पुष्ट रीति पर उसकी स्थिति बनी रहती है तब तक नए-नए मुहावरे नित्य उसमें बनते ही जायेंगे।"^२ इस प्रकार मूट जी का हिन्दी को ऐसी व्यापक भाषा मानते हैं जो 'कुंजड़े से लेकर महाजन तक और इरावहे से लेकर राजा तक'^३ सबकी बोलचाल की भाषा है।

मूट जी ने अपने भाषा सम्बन्धी विचारों को अपने नाटकों में यथावत् प्रयुक्त किया है। जैसे --

"जो देश सम्प्रदाय की जितनी ही अंतिम सीमा को पहुंचता है वहां उतना ही अधिक नाटक का प्रचार पाया जाता है।..... कहने की अपेक्षा करने दिखा देने का अधिक अवसर होता है। नाटक लिखने का क्या प्रकार है कितने हमारे हिन्दी लेखक सो जानते भी नहीं। प्रत्येक नगर में दो एक बार हिन्दी के नाटक का अभिनय किया जाए तो देखो साल में कितने नए नाटक तैयार हों।"^४

+ + + +

"सैरन्ध्री -- हा ! एक वह समय था जबकि हम भी ऐसा ही पिता पांचाल-राज के घर में रहकर राजनन्दिनी कहलाती थीं। अहा ! वह समय कैसा अनिर्वचनीय

१- बालकृष्ण मूट -- हिन्दी प्रदीप, परवरी १८८५, पृ० ६।

२- बालकृष्ण मूट -- हिन्दी प्रदीप, जून १८८५, पृ० ३-४।

३- बालकृष्ण मूट -- हिन्दी प्रदीप, सितम्बर १८८२, पृ० १०।

४- बालकृष्ण मूट -- हिन्दी प्रदीप, मई से जुलाई १९०४, पृ० ४०-४१।

सुख का दाता था । हाय ! वे दिन अब क्या आ सकते हैं । यदि हम भिक्षा-
रिन हो द्वार-द्वार भिक्षा मांग जायें-मुत्र पाण्डुतनय पाण्डुर्वा ने साथ रहकर
किसी मांति अपना जीवन बितातीं तो वह अच्छा था यह याचना तो न भोगतीं ।
हाय ! क्या हम राजराजी नहीं हैं तो क्यों यह दुर्दशा भोग रही हैं । यह
हमारे ही दुर्भाग्य का फल है जो आर्य-पुत्र पाण्डव भी भोगते हैं । हा माता !
यह वही हतभागिनी पांवाली है जिसे तुमने बड़े आदर-स्नेह और यत्न से पालन
पोषण किया था । वही अब राज-महिषी भी बिकर पराधीन हो सब प्रकार
का दुःख भोगते महाकष्टपूर्वक दिन बिताती हैं । मा, यदि तुमने यह हमारा
वृत्तान्त सुना होगा तो तुम्हें कैसी मर्मान्तक पीड़ा हुई होगी । [रुदन] हाय !
यह पापी देह का पतन हो जाता तो भी अच्छा होता ।^१

+ + + +

नाउन -- उपाय काहे कोई नहीं न ? ई का कहती हूँ । तोहरे मेरे के
गडना मां कच्छू लाला की बड़ी बसरी के पिछवाड़े जो भगुजा डफाली न रहता
है ऊ बड़ा गुनी है तोहरे हामी भरे की बात है जो त कहा तो हम ओहका
बोलाय के सब ठीक कर देह देह ।

माकली -- ना ठहरावन ! यह तो मुकसे कभी न होगा । ई सब फोर में
मैं नहीं पड़ना चाहती और इस सब से शिवाय हानि के लाभ कुछ भी नहीं है ।
ये सब बड़े ही ठग होते हैं । इनके फोर में पड़ना बड़ा ही धोखा खाना है
कभी मेरे पड़ोसी मिट्ठलाल ही के घर में न मालूम क्या हो गया होता ।^२

प्रताप नारायण मिश्र

पं० प्रतापनारायण मिश्र ने भारत-दुर्दशा, छठी-छमीर, रणधम्भीर,
गौ-संकट आदि नाटकों में सामान्य बोलचाल की सही बोली प्रयुक्त की है ।

१- श्री धनंजय मट्ट 'सरल' -- मट्ट नाटकावली, पृ० २५ [वृहन्नला नाटक] ।

२- वही, पृ० १०१ [जैसा काम वंसा परिणाम] ।

पूर्वी बोलियों के मुहावरों और कहावतों का प्रयोग इनकी विशिष्टता है। उन्होंने संस्कृत शब्दों को हिन्दी उच्चारण के अनुकूल लिखने की प्रवृत्ति को अपनाया है। 'रिणि', 'रितु' शब्द स्थान-स्थान पर प्रयुक्त किए गए हैं। अतः 'मिश्र जी ने हिन्दी गय का वही रूप ग्रहण किया है जो उस समय प्रचलित था। यह स्वाभाविक था कि बोलचाल की भाषा के ग्रहण करने पर शब्दों के स्वभाव और ध्वनियों में कुछ परिवर्तन हो जाये। भाषा को जनसाधारण के समीप रखने के लिए भी उच्चरित रूप को लिखित रूप देने का प्रयत्न किया।'^१

भारतेन्दु-युग में गयकार के रूप में यदि भट्ट जी की टक्कर का कोई दूसरा व्यक्तित्व है तो वह है मिश्र जी का। भट्ट जी मिश्र जी से और मिश्र जी भट्ट जी से प्रेरणा लेते थे। भारतेन्दु-युग के ये सदस्य कितने उदार हृदय, श्रद्धालु और परगुण प्रशंसक थे। यह इसी से स्पष्ट है कि भट्ट जी अपना लेख लिखने से पूर्व प्रेरणा के लिए अपने दूसरे साथी का कण स्वीकार करते हैं -- 'हमारे कानपुर के सहयोगी सम्पादक शिरोमणि ब्राह्मण 'बी' पर अपने कलम की कारीगरी का उम्दा नमूना दिखता चुके हैं, उन्हीं को अपना शिक्षा गुरु मानकर हम भी आज लिखार पर अपनी लेखनी की सुघराहट की बानगी का दो सक नमूना अपने पाठकों को दिया चाहते हैं।'^२

मिश्र कृत 'कलि कौतुक रूपक' में दो अनपढ़ और 'त्रिया चरित्र वाली स्त्रियों' के संवाद की भाषा का रूप इस प्रकार है --

'खियार स्यामा -- बीबी ! की बात। ऐस जमाने में कोई मोला भी ही है। सब जानें हैं कि जवानी दीवानी कहावै है, जब हमी हो चैन नहीं है तो बेयर

१- शान्तिप्रकाश वर्मा -- प्रतापनारायण मिश्र, पृ० १८५।

२- डा० राजेन्द्र शर्मा -- हिन्दी के गय निर्माता बालकृष्ण भट्ट, पृ० २१४।

बानी की कौन ? पर जब तक एक बात परदे में रहे अज्ञात ही है न ?

बंपा [आक्षेप से] बाहर परदे वाली !

स्थाना -- नहीं तो क्या तेरी तरह मन्दिर-मन्दिर का बन्नामिल लेती फिर हूँ ?

बंपा -- जहाँ तु जो पुजारिन बनी घरी में बंठी रहे है न ! हि हि !^१

+ + +

* डाकूना ने अथवा तारघर के तारों से बात की बात में बाड़े जहाँ की जो बात हो जाना शक्ति है । अपने अतिरिक्त बात बनती है, बात बिड़ती है, बात आ पड़ती है, बात जाती रहती है, बात जमती है, बात उखड़ती है, बात सुनती है, बात छिपती है, बात छिपकी छिपती है, बात चलती है, बात अड़ती है ।^२

पं० जयध्या सिंह उपाध्याय 'हरिबीध' ने मित्र जी की भाषा का विश्लेषण करते हुए उचित ही लिखा है -- "प्रतापनारायण मित्र की रचना की प्रधान विशेषता यह है कि वे मुहावरों आदि का व्यवहार अपनी भाषा में सफलता के साथ करते हैं । --" अहा ! भाषा ही तो ऐसी हो, क्या प्रवाह है ! क्या लीच है ? कौसी फड़की और चलती हुई भाषा है । मुहावरे-दार भाषा लिखने में जैसा भाव विकास होता है, वैसा अन्य भाषा लिखने में नहीं ।"^३

बदरी नारायण बीधरी 'प्रेमघन'

'प्रेमघन' जी ने भारतेन्दु की पत्रकारिता से प्रेरणा ग्रहण कर 'आनन्द - कावम्बिनी' का सम्पादन किया, जिसमें 'भारत सांभान्य', 'वीरांगना रहस्य रहस्य' नाटक प्रकाशित हुए । संस्कृत के सामासिक शब्दों के साथ अरबी-फारसी

१- डा० गोपीनाथ तिवारी -- भारतेन्दुकालीन नाटक साहित्य, पृ० ३१७ ।

२- जयनाथ 'मलिन' -- हिन्दी निबन्धकार, पृ० ६० ।

३- 'हरिबीध' -- हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास, पृ० ५०४ ।

का प्रयोग उनकी विशिष्टता है। "उनके साहित्य में कुछ देशी शब्दों का स्वाभाविक प्रवेश हो गया है। जैसे घुघुनी, ठाठवाट, टटोती, लोटिया, मोढ़े, लहालीट, मोटी, डोढ़हें, घम्मड़, बुझल, मुजंग, बिरबिराहट, घमघमाती, डहकही, घमाघम, रगड़ा, बहिया, रगरी, चटपट, चघड़, बाकीट, फमेता, हीड़ आदि।"^१

'वीरांगना रहस्य' नाटक की चलताऊ भाषा का रूप प्रस्तुत है --

ला० लू० -- क्लूर ! शराब जरा पीने में लीजी और तेज होती हूँ, इसलिए जायना बदलने के लिए कुछ थोड़ा-थोड़ा जो बीच में खा लिया करते हैं, उसे गजक कहते हैं।

रा० लो० -- खैर

चा०बं० -- [गिर हिलाकर] -- हाँ ! हम जानता है। २ ब्रिस्टल।^२

श्रीनिवास दास

भारतेन्दु युग के सुपरिचित नाटककार श्रीनिवास दास ने अरबी-फारसी के प्रचलित शब्दों और मुहावरों का प्रयोग अपने नाटकों में किया है। भारतेन्दु की विचारणा करने हुए का अनुकरण करते हुए उन्होंने भी बोलने और लिखने की भाषा के स्वरूप में एकरूपता रखी है।

'रणधीर प्रेममोहिनी' में सुल्वाजीलाल मारवाड़ी बतिए से कहता है --

"रणधीर सिंह आदमी की कदर क्या जाने। कौहिस्तान की सरजब्जी दूर से यक-सा नज़र आती है लेकिन कोई उसके करीब जाकर देखे तो उसका नशेबी फ़राज़ मालूम हो।..... इनके दिमाग़ में जवानी की बू समा रही है। इनका मिज़ाज

१- शान्तिप्रकाश वर्मा -- प्रतापनारायण मिश्र की हिन्दी साहित्य की देन, पृ० ३१७।

२- 'प्रेमघन' -- सं० १ -- आनन्द कादम्बिनी, माला ३, पृष्ठ १, पृ० २२।

निहायत शक्ति है। ये सबको बड़ा बेवफा समझते हैं।^१

एक दूसरे स्थल पर प्रेममोहिनी कहती है -- "ना प्राणप्यारै। जहाँ
सूर्योदय का समय नहीं हुआ। आपने तेज ने दीपक की जौत मंद पड़ गई है
और पुष्पाँ की शक्तिता से मोती ठंडे हो गए। पक्षि नहीं बड़बड़ाते।
रात्रि के कारण पीठे-पीठे खरों से कौयल बोलती है। कमल के पत्रों पर
जोस की बूंद नहीं ढलती, मेरे कपोलों पर आँसू बह जाते हैं।"^२

+ + + +

"पृथ्वीराज --" जहाँ ये प्यारी का मुख है कि शरद् का चन्द्रमा है, जो हमसे
विरह जनों को सताने के लिए उद्यत होने के समय से पक्षि ही उदय हो
गया। नहीं चन्द्रमा में तो कलंक है और उसमें कितना माधुर्य कहा है? यह
तो शोभा का समुद्र उमड़ रहा है। आहा! इस शोभा-सागर में अधखुले कमल
कमल दल से लाज भरे लोचन और मंद मुस्कान की शोभा कौन प्यारी लगती
है। मधुप ही मधोन्मत्त अलर्के दोनों ओर कैसी भ्रम रही हैं....."^३

राधाचरण गोस्वामी

राधाचरण गोस्वामी भारतेन्दु झा के सक्रिय लेखक थे। अपने तीव्र
व्यंग्य के लिए वे अत्यन्त प्रसिद्ध थे। भारतेन्दु के घनिष्ठ मित्र होने के नाते
गोस्वामी जी भारतेन्दु की ही अपना साहित्यिक आदर्श मानते थे। भारतेन्दु
की भाँति गोस्वामी जी भी प्रगतिशील विचारों के थे और अतीत के प्रति
आस्था लु थे। देश वासियों से वे कहते हैं -- "भाइयों! उठो उठो बड़ परिकार
ही अपने देश की अधोमुख न होने दी। अब समय शेष नहीं रहा है। अब तक

१- श्रीनिवास दास -- रणधीर प्रेममोहिनी

२- वही

३- श्रीनिवास दास -- संयोगिता स्वयंवर।

मौड़ निद्रा के अधीन रहे जाओगे ? तुम्हारा सब तो सबनाश हो चुका है
तब भी व्याकुल नहीं होते ? ^१

सुदामा चरित, सती चंद्रावली, अमर सिंह राठौर नाटकों में उन्होंने
लोक प्रचलित भाषा प्रयुक्त की है ।

‘सती चंद्रावली’ में बोरंगजेब कहता है -- ‘क्या दर्ज है ? अगर एक
काफिर की लड़की दीन इसलाम कबूल कर ले । उसकी नजात होगी ।’ आगे
वह मंत्री से कहता है -- ‘ढंडोरा पिटा दो कि कत्ले आम होगा । मारो
काटी । चंद्रावली को फॉरन मुसलमान बनाओ ।’ ^२

राधाकृष्ण दास

भारतेन्दु ने बंधू नाटक ‘सती प्रताप’ की राधाकृष्ण दास ने पूर्ण
किया था । उन्होंने अपने नाटकों में पात्रानुसार विविध रूपिणी भाषा का
व्यवहार किया है । मुहावरों, लोकोक्तियों, उक्तियों, संस्कृत शब्दों और
अवधी ब्रजभाषा के कवितों का प्रयोग उन्नादों के मध्य प्रचुरता से किया है ।
इस प्रकार राधाकृष्ण दास का भाषा-आदर्श भारतेन्दु के प्रचलित विचारों के
अनुकूल ही है ।

‘महाराणा प्रताप सिंह’ लोकप्रिय नाटक का उन्नाद प्रस्तुत है --

‘प्रताप -- (बावेश में) प्रताप सिंह,.... ऊँ अपनी जननी के दूध की
सौगन्ध जो प्राणा रहते कभी इन म्लैच्छों को निकालने की चेष्टा से निरस्त
हो । जो अपनी प्रतिज्ञा-पालन कर सके तो वीर माता का दूध पीना सफल
है, नहीं तो ऐसे जीवन पर धिक्कार ।’

१- राधाचरण गोस्वामी -- हिन्दी प्रदीप, फरवरी १९७६, पृ० ४ ।

२- राधाचरण गोस्वामी -- सती चंद्रावली, पृ० ६-११ ।

अकबर आदि मुसलमान पात्र ठेठ फ़ारसी शब्दों का व्यवहार करते हैं --

“अकबर -- अ हा हा, हिन्दू-मुसलमानों की रिश्तेदारी की दुनियाद कैसी उम्दा डाली गई है। अगर हमने पूरी तौर पर कामयाबी हुई तो लोनवान तैमूरिया अभी हिन्दुस्तान से हट नहीं सकता। क्या वजोर शमशीर हमका मजहबी खियाल तब्दील हो सकता है ?”

ब्रज गोपिनाथ अपनी भाषा प्रयुक्त करती हैं। --

“अरे नैक पायं बढ़ाय जा। या ब्रज में ऊधमी की राज ठहुर्यो। अहुं काहू में दौठ न परि जाय, सिसोदिर घर कुं बल।”^१

भारतेन्दुयुगीन प्रमुख नाटककारों की भाषा प्रयोग की दृष्टि के अनुशीलन से स्पष्ट है कि उस युग के नाटककार लोकजीवन से गीधा एवं घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील रहे हैं। अपने प्रयत्न को सार्थक बनाने के लिए उन्होंने लोकभाषा के स्वरूप को जात्मात किया है। भारतेन्दुयुगीन भाषा की विविधता को खड़ी बोली गद्य के प्रारम्भिक स्वरूप के कारण अपरिष्कृत खड़ी बोली का रूप प्रायः कहा गया है, जो कि उचित प्रतीत नहीं होता है। भारतेन्दु युग के नाटककारों की लोकजीवन के प्रति दिशावर्क कायी से उमन्वित करने से यह परिलक्षित होता है कि नाट्य-रचना में लोकभाषा तत्त्व के प्रति जागरूक होने के कारण उनकी भाषा साहित्यिक दृष्टि से भले ही परिष्कृत न रही हो किन्तु उसमें बोलचाल की भाषा के प्रयोग से एक सहज प्रवाह का समावेश आप से आप हो गया है।

नाटकों में लोकभाषा के प्रयोग का औचित्य

नाट्य-साहित्य लोकजीवन से के सर्वाधिक समीप है। लोकधर्मी नाट्य परम्पराएं अतीत काल से लोकमानस को मंगलमय बनाने में योग देती रही हैं।

१- राधाकृष्ण दास -- महाराणा प्रताप सिंह, पृ० २३, २५, २७।

साहित्य की समस्त विधाओं में भारतेन्दुयुगीन साहित्यकारों ने नाट्य-विधा को ही सर्वशक्तिमान समझा। उन्होंने अपने उद्देश्यों, विचारों को जन-जन तक प्रेषणीय करने के लिए नाट्य-रचना की तथा उसकी प्रस्तुति के लिए सांघिक प्रयास किए। अपने नाटकों में लोक-ज्ञानों एवं लोक-कठिनों का उन्होंने प्रचुर प्रयोग किया, अतः लोकभाषा का प्रयोग भी उनके लिए सख्त स्वाभाविक हो गया। इस सम्बन्ध में डा० बच्चन सिंह ने उचित ही लिखा है -- "रंगमंच की दृष्टि से विचार करने पर जाफ़ दिखाई पड़ता है कि वे जनता के समीप पहुँचना चाहते हैं। भाषा की सरलता, जनोपयोगी कथोप-कथन, लोकप्रिय गीत-ध्वनियाँ सभी कुछ उनके परिचायक हैं।" १

शब्द-प्रयोग

शब्द-प्रयोग

भारतेन्दुयुगीन प्रमुख नाटककारों की भाषा-नीति एवं भाषा प्रयोग का आधार नाटकों में प्रयुक्त शब्दों से है। शब्द-योजना की दृष्टि से भारतेन्दु-युगीन नाटकों की भाषा अत्यधिक समृद्ध है।

व्युत्पत्ति की दृष्टि से स्वदेशी तथा विदेशी शब्दों का प्रयोग

व्युत्पत्ति की दृष्टि से भारतेन्दु युग के नाटककारों ने स्वदेशी तथा विदेशी शब्दों का प्रयोग किया है। इस युग के प्रायः समस्त नाटककार अपने दौरीय लोक-जीवन से संबंधित रहे हैं और केन्द्रीय रूप से सब भारतेन्दु की विचारधारा से सम-न्वित रहे हैं। अतः शब्दावली की दृष्टि से प्रभावकारी प्रयोग स्वाभाविक हो गया था। नाटककारों ने प्रचुर रूप से उन्हीं शब्दों का प्रयोग किया जिनसे उनका कथन स्पष्ट हो जाए।

स्वदेशी शब्द

भारतेन्दुयुगीन नाटकों के स्वदेशी शब्दों के अन्तर्गत तत्सम्, अवर्द्ध तत्सम्, तद्भव देशज और दौरीय बोलियों के शब्द समाहित किए गए हैं।

१- डा० बच्चन सिंह, -- हिन्दी नाटक, पृ० ३१-३२।

तत्सम :-- ध्वनि संयोजना की दृष्टि से लघु, सरल, संचिद्युक्त, तथा नामा-
धिक शब्द हैं। उदाहरणार्थ, जल, पवन, पकानिषीर, मुखकञ्जलावनेपत्रे इत्यादि।
व्यक्तिवाचक, जातिवाचक तथा भाववाचक सभी प्रकार के शब्द प्रयुक्त किए गए
हैं। यथा -- देव, मनुष्य, नदी, पुरुष, दुर्दशा आदि। निजवाचक सर्व-
नाम रूप-निज, स्व, स्वयं का प्रयोग है। गुणावाचक विशेषण -- अमृत्य, प्रचंड,
प्राचीन का प्रयोग है। संख्यावाचक विशेषण भी हैं। क्रिया क्त, क्त, सत्
का अधिकाधिक प्रयोग है। क्रिया विशेषण नित्य, सर्व्वदा, त्वत्, पश्चात्
का प्रयोग किया गया है।

भारतेन्दुशर्मा ने नाटकों के संवाद उपर्युक्त दृष्टि से विशिष्ट महत्व रखते
हैं। --

- १- "जनक (राजाओं को देख क्रोध करके) हमारी प्रतिज्ञा को चुनकर ऐसा कौन
सा देश है जिसका राजा आज यहां नहीं आया। और कहां तक रहें! देवता
और दैत्य भी मनुष्यता का रूप धर ले आये। बड़े बड़े वीर और रणवीर
इस रंगभूमि पर में विराजमान हैं।" १
- २- "महाराजा सूर्यदेव -- (सिर उठाकर) यह कौन था? इस मरते हुए शरीर
पर इसने अमृत और विष दोनों एक साथ क्यों बरसाया? जरे अभी तो यहां
खड़ा गा रहा था अभी कहां चला गया? निस्संदेह यह कोई देवता था।
नहीं तो इस कठिन पर्व्व में कौन आ सकता था।" २
- ३- "युधिष्ठिर -- राजन्, यह आपका अभिलिखित हमने स्वीकार किया और
यह भी हो कि मेघ समय समय में वृष्टि करे पृथ्वी शस्यपालिनी हो, ब्राह्मण
अपने वेद-मार्ग पर विचरण करें, आर्य लोग सुमति ग्रहण कर अपने देश की वृद्धि
में एकमत हों और अधिक क्या कहें।" ३

- १- पं० शीतलाप्रसाद त्रिपाठी -- जानकी मंगल नाटक, पृ० ७६।
- २- रघु काशिकेय -- भारतेन्दु ग्रंथावली, पृ० ११३।
- ३- पं० बालकृष्ण मट्ट -- बृहन्नला नाटक, पृ० ४७।

४- "सखी, भेल दुःख भागने की जन्मी हूं क्योंकि आज तक एक भी सुख नहीं मिला -- क्या विधाता की सब उल्टी रीति है कि जिस वस्तु से मुझे सुख होता है उसी को हरण करता है - हाय मैंने जाना था कि मुझे मनमाना प्रीतम मिला ।" १

५- "नाटक किस भाषा में लिखा जाए ? सब भाषा मिलाकर तो लिखने से रहे । दिल्ली से बनारस के परे तक करोड़ों आदमी हिन्दी बोलने वाले हैं और गुजरात, बंगाल, पंजाब और वगैरह देशों के लोग भी इस भाषा से अपना काम निकाल लेते हैं । इसलिए नाटक की निज भाषा हिन्दी रखी गई ।" २

अक्षतत्सम् :-- ये शब्द वास्तव में संस्कृत के शब्दों में उच्चारण की दृष्टि से किए जाने वाले ध्वन्यात्मक परिवर्तनों के कारण उद्भूत हुए हैं । इसका प्रयोग स्थान, पात्र की दार्ष्टीय बोली एवं उच्चारण-स्वभाविकता की दृष्टि से किया गया है । ये हैं अजीर्ण, अजीरन, बैरकार, धरिकार, निष्ठुर, निठुर, नरक, नर्क, अनवरत, अनवर्त, बाण्णि, बानी, बाण, हिन, टंकशाल, टकशील आदि --

१- "भगवान् -- मैं निठुर नहीं हूँ । मैं तो अपने प्रेमिन की जिता मोल को दास हूँ । परन्तु मोहि निहवे है के हमारे प्रेमिन की हम लो हमारी विरद प्यारी है । ताहि लो मैं हूँ बचाय जाऊँ हूँ । या निठुरता मैं जे प्रेमी हूँ विनके तो प्रेम और बढ़े और जे कच्चे हैं विनके बात छुल जाय ।" ३

२- "दूरन नाटक वाले खाते, इसकी नाल पचाकर खाते, दूरन सभी महाजन खाते जिससे जमा इजम कर जाते, दूरन खाते लाला लोग जिनको अफिल अजीरन रोग

१- भारतेन्दु -- विद्यासुंदर नाटक, पृ० २३ ।

२- श्रीनिवास दास -- रणधीर प्रेममोहिनी, भूमिका ।

३- एक रुद्र काशिकेय -- भारतेन्दु ग्रंथावली, पृष्ठ ६५ ।

चुरन आवे खीटर जात यिनके पेट पवे नहिं जात ।*^१

३- *पंडित - कील ब्राह्मण

कात्रिय -- धरिहार

पंडित -- कात्रिय शुद्ध शब्द धर्मकार है ।

कात्रिय -- बाँर कुम्भी और मर और पासी ।*^२

तद्ध्रस्व :-- भारतेन्दुयुगिन नाट्य साहित्य में उपयुक्त दो प्रकार के शब्दों के उप-
रान्त तद्ध्रस्व शब्दों का प्रतिशत अधिक है । ये हैं -- गोबर, धनवान, घर,
आंस, काम, बुढ़ापे, मैं, हमारे, जिस, इन, बड़े, उतंचा, दाहिना, कैसे, हतने,
उतनी, थोड़ी, दूसरे, बाँधे, चारों, पाँचों, कधे, कुछ, अब, धीर-धीरे, यों,
ज्यों, और, हाँ, नहीं ।

भारतेन्दु युग में जहाँ एक ओर साधारण ध्वनि-परिवर्तन के आधार पर
तद्ध्रस्व शब्दों की प्रयुक्त किया गया है, तो वहीं दूसरी ओर तुक्बंदी, भावा-
भिव्यक्ति की सहजता तथा कात्रिय प्रभाव की दृष्टि से अनेक स्थलों पर तद्ध्रस्व
शब्दों में पुनः ध्वनि-परिवर्तन हो गया है । यथा -- बच्चा बचा, तुम्हारी
तुमारी, कुना दून, उल्टी उलटी, और जी, सुना सुन्ना,
जोते जाँचे जादि । डा० गोपीनाथ तिवारी ने इस ध्वनि-परिवर्तन के
सन्दर्भ में उक्ति ही कहा है -- "भारतेन्दु युगिन नाटकों में यह प्रवृत्ति प्रायः
सामान्य विलक्षण होती है कि वे उच्चारण के अनुसार अक्षरों की मिस्र-मिला
कर शब्द निर्माण करते हैं । नाटककारों ने लोकभाषा के स्वरूप की ग्रहण
किया और लिखने तथा बोलने के अंतर को दूर कर उच्चारण के अनुसार शब्द
को रखा है । सका, जिसको, जिसी, उसी, उसने, हस्तरह, बिन्ती,
उल्टा, सुन्ना, जान्ता आदि ।"^३

१- भारतेन्दु -- अंधेर नगरी, पृ० ६ ।

२- भारतेन्दु -- सब जात गोपाल की, पृ० ३ ।

३- डा० गोपीनाथ तिवारी -- भारतेन्दुयुगिन नाटक साहित्य, पृ० ३२२ ।

- १- "राजा -- मित्र इस्का सोने का सा पंख देख मेरा मन धन पक्षी के पंखों की अत्यंत उत्कंठित हो रहा है। मेरी दाहिनी आंख और जुआ भी कण्ठ फरक रही है -- इससे मालूम होता है, मेरे कार्य की विधि जल्द जुआ वाली है।" १
- २- "हिन्दी..... इस लुदशा के दूर करने के उपाय सिवाय इसके कि यह उई बीबी रानी की पदवी से हटाई जावे और छुई भी हो सका है।" २
- ३- "यह हरिश्चन्द्र नाटक क्या है, सत्य मोक्षा रूपी वैकुण्ठ का सुता हुआ फाटक है इस मोहिनी महोदधि में अनेक प्रकार की अगुठी अगुठी ठुमरी, ध्रुपद, दादरा, आस्ताई, खेमा, गजल, रेखता, दोहा, कवित्त, सबैया, शेरें, ख्याल, लावनी, रूपी तरंगों का बिहार, विविध भांति की राग व रागिनी विपुल ताल माल युति विलसित है, जिसके केवल पठन-पाठन रूपी मज्जनमात्र ही से सर्व-साधारण भी हरि पदरति अधिकारी हो आनन्द प्राप्त कर सका है।" ३
- ४- "सखियाँ -- मेरे अंग की सहेलियाँ। सुककी हार-पिन्हीने में क्या शरम है? ये तो मेरा निज धर्म है पर सुकको चरण कमल महाराजा विशाज की छूने से बड़ा खौफ लगता है मैंने सुना है कि गौतम नारी चरण के छूने से आकाशमार्ग की झोड़कर चली गई वस यही सोच फिस्स है।" ४
- ५- "नटी -- और नहीं तो क्या? जिसमें हंसते खेलते लोग अपने देश का इतिहास, अपने धर्म का इतिहास, पुराने एवं नए विचार, उनके भेद, संसार की गति, उसके भविष्य और आप धर्म की शरल में जानें। पर आपने कहा कि धर्म नीति विषयक नाटक को कोई नहीं पढ़ता तो इसका कारण क्या।" ५

- १- पं० बालकृष्ण मट्ट -- दमयंती स्वयंवर नाटक, पृ० ८ ।
- २- रत्नचंद्र -- हिन्दी-उई नाटक, पृ० १३ ।
- ३- ज्वाला प्रसाद -- ललनकांता अर्थात् हरिश्चंद्र नाटक, पृ० १ ।
- ४- सुंशी तोताराम -- सीता स्वयंवर नाटक, पृ० ३० ।
- ५- पं० प्रतापनारायण मिश्र -- कलिकौतुक रूपक, पृ० ८ ।

ब्रजभाषा की विभक्ति-प्रत्यय का प्रयोग भी समकालीन नाटककारों ने किया है। यथा -- आंखों, रातें, बातें नीची, साबो, जी जिर ।

देशज शब्द :-- भारतेन्दुयुगीन नाटककारों ने लोकसाहित्य की अभिवृद्धि में पर्याप्त योग दिया और इसी के साथ लोकभाषा विषयक प्रगति संलग्न रही है। लोक साहित्य की योग देने का अर्थ यह था कि जनबोली के उन शब्दों को प्रयुक्त करना जिन्हें देशज कहा जाता है। क्योंकि बिना इन शब्दों के प्रयोग के लोक-साहित्य का स्वरूप ही आत्माविहीन हो जाता है। देशज शब्दों में से अनेक शब्द पूर्वलिखित साहित्य से उपलब्ध हुए हैं, तो कुछ भारतेन्दु-युग में भाषा-प्रवाह के अनुकूल प्रवेश पा गए हैं। यथा-- अंधाधुंध, चौध, ठीकर, ढाड़ि, बिड़कियाँ, तिवड़ी, सिकड़ी, लोंटा, चटपटाक, बुरसुर, टुटकं टूँ, मोड़ी ।

देशज शब्दों के अन्तर्गत माओभावाभिव्यक्ति सूक्त शब्दों का विशिष्ट स्थान माना गया है। ऐसे एक ही शब्द द्वारा व्यापक से व्यापक मनोगत भाव तीक्ष्ण अभिव्यक्तना कर लेता है। भारतेन्दुयुगीन नाटककारों ने हाय, हा, फिर, अहा, हा हा हा, ओह आदि शब्दों का प्रचुरता से प्रयोग किया गया है।

३- *धी० -- साहब, हमरा कानून ना पढ़ल बाय और न हमनी का फारसी अरबी पढ़ले बाटी । गंवार आदमी हाकिम से बोले बत्तिजावे का जानी । लेकिन हाँ, अदालत लड़त-लड़त तनी सरकार लोगन के सामने बोने में हियाव खुल गइल बाय ।*१

२- *सुतारा -- तुमकी मेरा कहना बुरा लगा मालूम वेता है -- हे बहिन मैंने तो कुछ नहीं कहा परन्तु चिर आजकल स्थिर नहीं है । तू मेरे सीधे कहने की भी ठट्ठे बाजी में ले जाती है ।*२

१- रविदत्त शुक्ल -- देवाक्षर चरित्र, पृ० २३ ।

२- रत्नचंद साहब -- प्रमजालक नाटक, पृ० १७ ।

३- भागुरायण -- महाराज ! आज आपको यह क्या हो गया कि अपनी धर्मगुण में बट्टा लगाय विचित्राश्रित ने हो रहे हो कि जो कुछ तुमने कहा रक्षा उसकी भी कुछ सुध-बुध नहीं है ।^१

४- अंजना [मुद्रिका उंगली में न पाकर] हाय हाय ! हा सतीनाश ! तवी-नाश ! यह क्या आपत्ति है अब मैं कहीं की न रही ।^२

५- चंद्रावली -- हा ! प्राननाथ ! हा ! प्यारे ! प्यारे अब तो शीघ्र कहाँ चले गये ? नाथ ऐसी ही बड़ी थी ! प्यारे यह वन इसी विरह का दुःख करने के हेतु बना है कि तुम्हारे साथ विहार करने की ? हा !^३

दोत्रीय शब्द :-- दोत्रीय शब्दों में बंगला, गुजराती, पंजाबी, पुरबी और पश्चिमी बोलियों के शब्दों का स्थान है । ये कहीं तो सड़ी कोढ़ बोलियों के स्वरूप के साथ फुटकर रूप से समाहित हो गए हैं तो कहीं सम्पूर्ण वाक्य ही इन शब्दों से परिपूर्ण है ।

बंगला -- गल्प, टका

व्रज और पूर्वी -- लडुआ, निगुआ, सुरत, सन्तोला, ताँ, तिल, तनिक, तले, परे, बैर, लुटाय, हो, मयो

उच्चारण -- प्रकृति के असकल शब्दों की पद रचना इन बोलियों के आधार पर हुई है । यथा-- दून [दुनुना], सुरत [सुरंत], परींगी [पेरिंगी], जोते [जोतते], लुटाय होय जादि ।

१- तारिका -- सुबाहु, मारीच, सखी, दैत्यों, देवी तो मुझे डोकरे का माँ शब्द सुनकर पड़ता है । और दो क्रोमल स्वर भी सुने जाते हैं । होना हो

१- पं० बालकृष्ण मट्ट -- दमयंती स्वयंवर नाटक, पृ० ५ ।

२- एषिवत सुक -- देवदत्त सुक, ०५००००००
कल्याणालि अंजनासुन्दरी

३- एषिवत सुक -- देवदत्त सुक, नाटक, पृष्ठ २००० ७५ ।

४- लड्डू का शिकेय -- भारतेन्दु गंधावली, पृष्ठ ३५ ।

बड़ डौहरा ही होगा । जाव, जाव तो देल जाव, में भी कर्न जाती हं ।^{*१}

२- चम्पा -- हमारा रोम-रोम उस ब्राह्मण की जाप देता है जिसने जन्म-पत्री को जोड़कर विवाह कराया था । जन्म पत्री लेकर क्या करें बाट्टे - जोड़ावा तो बहुत अच्छा बना था ।^{*२}

३- द्वितीय स्थान -- तू कां यहू नाहीं समक पड़त है ? तुरई कधीं कहत है और जीन मनई बजावत फिरत है बड़िका राजपूत कहत है ।... [शोध करके] मुहिका समक नहीं पड़ी तोहिका समक पड़ी । राज दरबार में जात जात मोर पांव खियाय गया । भलमनसों में रहत-रहत जनम बीत गवा तो मोहिका इतनी हू सूक न पड़ी ? का हम नाहीं जानित कि राजा वशरथ हम सबको बाप की बराबर पालन करत हैं [वा जो कहत है कि बिटवा हू राज करी यहि ते दुविधा जान पड़त है]^{*३}

४- चंबूभट्ट -- नाहीं भाई भी क० अत्य सांगतो, मला सोहत नाहीं । तुम्हाला माफ़ी नरवरे बाटतात पण हे प्रायः इथले काशी तलेच आहेत, व अपल्या सांख्याच्या परम प्रियतम सफेत खडखडीत उपणां पांघरणार अनाथा बालकांच शिवविलेतं बरे ।^{*४}

५- "आमारा रैता मुल्क ज़िमें अंग्रेज का भी दांत कट्टा जो गया । नाहक को रुपया खराब किया । हिन्दोस्तान का आदमी लक लक हमारे हमारे यहाँ का आदमी हुंक्क हुंक्क तो अब मेवा टोके सेर ।"^{*५}

१- दामोदर शास्त्री सप्रे -- क बालकाण्ड, पृ० १६ ।

२- निधीलाल मिश्र -- विवाहिका विलाप नाटक, पृ० ५२ ।

३- रामगोपाल विद्यान्त -- रामाभिषेक नाटक, पृ० ७ ।

४- रुद्र का शिष्य -- भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृ० २२७ ।

५- वही, पृ० १७० ।

विदेशी शब्द :-- विदेशी भाषाओं के शब्द कहीं तो मूलभाषा से ज्यों के त्यों ग्रहण किए गए हैं तो कहीं तत्कालीन भाषा की उच्चारणगत तथा व्याकरणिक प्रवृत्ति के अनुसार परिवर्तित रूप में प्रयुक्त किए गए हैं, जो युगिन नाट्यकारों की लोकभाषा के प्रति उन्मुखता का प्रमाण है।

उर्दू शब्द -- भारतेन्दु के पूर्व तक उर्दू का विशिष्ट स्थान रहा है। अतएव अरबी-फ़ारसी के शब्द जन-सामान्य की भाषा में घुल-मिल गए हैं और लोकभाषा के अंग बन गए हैं। यही कारण है कि उर्दू-शब्दों का भारतेन्दुयुगीन नाट्यकारों ने प्रचुरता के साथ प्रयोग किया है और हिन्दी-उर्दू में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया है।

१- "उर्दू बीबी -- कभी मियां साहब जरा मेरी बातों सुनिए। उनके डुपट्टे के पकड़कर। क्या ऐसी हालत में देखकर भी आपका दिल पाश-पाश नहीं होता? आप लोगों की बदौलत करिब तीन सौ वर्षों से मैं इस देश में राजा की रानी रही, और सक्कर और रियाया को ऐसा खुश रखा कि कभी मुझे स्वाब में भी इस बात का मुझे ख्याल नहीं था कि इन दिनों मुझे पर यह मुर्तबत पड़ेगा कि बाजे बाजे लोग मुझे निकालने की मुत्तैद हो जाएंगे।"^१

२- "सिपाही -- हुम है पाक दीन इस्लाम के रोक्क नापाक दीन हनुद का कुछ भी लिहाज़ न किया जावे, बल्कि जहां तक हो सके उसे नेस्तनाबूद करने की कोशिश की जावे।"

३- "कुम्हार सब काखिले दोखल होंगे।"^२

४- "कमात खां -- इन बेह्मान कुतपरस्तां के जुतां की हमने जुतां से खबर ली,

१- रत्नचंद -- हिन्दी उर्दू नाटक, पृ० ७।

२- जगतनारायण शर्मा -- कब्बर गौरवान्याय नाटक, पृ० ७।

३- भारतेन्दु -- नीलदेवी, पृ० छठा दृश्य।

इनके सिरों को हजारी मा लोह त्तगारों को पिनाया, इनके मुँह में धुआ, तिलक बाटा, जेऊ लोड़ा, सिर पर चूतों का ताज पहनाया । इनके धर्म-शास्त्र की किताबों को जाबदस्त का कागज़ और इम्माम का ध्वज समझा, हजारों को ज़बरदस्ती मुसलमान बनाया और पैरों तरह की मनमानी स रस्त्रियों के साथ इनसे पेश और ।^१

वास्तव में भाषा प्रयोग के क्षेत्र में वं० वात्सुष्ण भट्ट के दृष्टिकोण की ही भारतेन्दु झा के सफ़रि नाहित्यकारों ने अपनाया है । "यह कान कहता है कि उर्दू कोई दूसरी वस्तु है सब पूछो तो उर्दू भी होती हिन्दी का एक रूपान्तर है । जब हम हिन्दुओं ने उसका अनादर कर इसे त्याग दिया तब मुसलमानों ने उसकी दीनता पर क्या करके इसे अपने मुल्क के सिवान और जैरों ने जाधूनिन कर उसका कुतरा नाम उर्दू रखा । तात्पर्य यह है कि एक नारी का कुल और गोत्र सदा एक ही रहता रहा । समय-समय पर उसका रंग, रूप और भेष अलबत्ता पलटता गया ।"^२ नाटककारों ने औरत, मैदान, लुदा, हिताब, मेज़ानी, जिम्मेदार, इज्जत, बुद, कामदार, नीम, बदमाश, हज़ार, बैराक, खूब, अलबत्ते, फ़रमाते, इनाम, मैदान, कागज़, बीज़ आदि शब्दों का प्रयोग बहुलता के साथ किया गया है । यत्र-तत्र कुछ शब्दों में अनि-परिवर्तन भी हो गया है । उम्दा :

उमदा, तस्त तस्त, मालिक मालिक, ताबज ताबे, वासित वास्ते, क़तार क़तारें, इक्कीस इक्कीस, दुकान दुकान ।

अंग्रेज़ी शब्द -- भारतेन्दु-झा में अंग्रेज़ी का प्रबलन पर्याप्त रूप से हो गया था । अनेक नाटककारों ने अंग्रेज़ी नाटकों का हिन्दी में रूपान्तर किया और अपनी भाषा को सामयिक बोध से संबद्ध करने के लिए अंग्रेज़ी शब्दों को मूल रूप

१- बैजनाथ -- कीरवामा नाटक, दृश्य-४ ।

२- हिन्दी प्रदीप -- फ़रवरी १८८५, पृ० ६ ।

एवं उच्चारण सुविधा की दृष्टि से परिवर्तित करके प्रयुक्त किया है। मूल रूप के प्रयोग बीफ, लेडीज शब्द हैं। सड़ी बोली के उच्चारण के अनुसार ध्वनि से युक्त अंग्रेजी शब्द -- कालिज, लैप, गिलास, ट्रेन, नैशनलिटी आदि का प्रयोग है। यह भाषा की सकल वृत्ति है। इसके अतिरिक्त शब्द हैं -- एक्ट, लैंड, लेडी, पूफादि, ग्रेट, बीफ, जोल्ड, फास्ट, कजिन, फ्रैंड, डिनर होम, वेण्डेन-लास, एकस्ट्रा, एडिस्टेंट, एडिटर पोसी, एडिटर जाल, मृत्तित वाले, टाष्टर्स, पेजी, मजिस्टर, कंपनियाँ, पार्लिटिक्स आदि।

१- 'साहेब मजिस्ट्रेट मि० फियराले -- दुमारा बाल^{सब}सन के माफिक पत्र गया है। बाबा आडम के वक्त का हम आदमी। खिजाव से डाढ़ी मुँह रंग कर सोलह बरस का पट्टा बनने मांगता है। वेल् कल हम दुमली बरा डाक्टर साहेब के मुलाख्ता के वास्टे वेजेता।' १

२- 'एडिटर ॥खड़े होकर॥ -- हमने एक द्वारा उपाय जो ता है, रड्केशन की एक सेना बनाई जाय। कमेटी की फौज। अखबारों के शस्त्र और स्पीचों के गोले मारे जायें।,..... आप लोग नाहक इतना जीव करते हैं, हम ऐसे ऐसे आर्टिकल लिखेंगे कि उसके देखते ही दुर्दैव भागेगा।' २

३- 'सुत्रधार -- वरी सम्पूर्ण संसार के प्रसन्न करने का क बोफा जिसके सर पर हो और लोकमत के ठीक चलाने की लाम जिसके हाथ में हो चला वह क्यों न चिंतित रहे। आज हमारे दर्शन वृंदों में बड़े बड़े महामहोपाधाय राइट वानरेबुल -- वानरेबुल महीनीति विविदाण महानेता राजे महाराजे सभी आए हैं।' ३

शब्द-प्रयोग की उपर्युक्त विशिष्टताओं के अध्ययन के उपरान्त यह कहना उपयुक्त होगा कि 'भारतेन्दु एवं उनके सहयोगियों ने शब्दों का प्रयोग, प्रपंग,

१- रविदत्त शुक्ल -- वैवाचर चरित्र, पृ० ७।

२- रुद्र का शिष्य -- भारतेन्दु का ग्रंथालो, पृ० १५१-१५२।

३- प० प्रतापनारायण मिश्र -- कलिकौतुक रूपक, पृ० १।

नाटकीय पात्र और परिस्थित्यानुसार किया। उनकी भाषा में तद्भव, उत्सव, अरबी-फारसी, तुर्की एवं अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग होता हुआ। उनकी भाषा में तद्भव के एक और चक्के-फिरते रूप मिले तो अत्यंत ग्रामीण शब्दों का प्रयोग भी उन्होंने किया। उन्होंने सामान्य रूप से प्रयुक्त एक साहित्यिक की भाषा में अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग किया तो लोको-भाषा में आने-वाले अंग्रेजी के तद्भव शब्दों का भी यह आमंत्रण किया है। इन प्रकार भारतेन्दु-युग की भाषा अपनी समृद्धता में शब्द प्रयोग से लेकर उस महाभागर की भांति हो उठी है, जो अपने पूर्ववर्ती लेखकों के शब्द-प्रयोग की रक्षागिरि भाषा धाराओं को आत्मसात कर रक्षाकार कर देती है।^१

निष्कर्षतः भारतेन्दु-युग के नाट्य-साहित्य में प्रयुक्त प्रत्येक वनी के शब्द उनकी लोको-मुखता को निरूपित करते हैं। तद्भव एवं देशज शब्दों का प्रतिशत अधिक है, यह उनकी लोको-मुखता का प्रबल प्रमाण है।

वाक्य योजना

भारतेन्दुयुगीन नाटकों की भाषा की यह विशिष्टता है कि सड़ी बोली की प्रकृति के अनुकूल वाक्य निर्मित किए गए हैं। परन्तु स्वाभाविकता की दृष्टि से नाटककारों ने संस्कृत, अंग्रेजी, अरबी तथा फारसी के वाक्यों को अपनाया है। संस्कृत के अधिकांश वाक्य सूक्ति के रूप में ग्रहण किए गए हैं।

वाक्य प्रमुखतः दो प्रकार के हैं --

१- पूर्ण वाक्य

२- अपूर्ण वाक्य

भारतेन्दुयुगीन नाटककारों ने वाक्यों में वर्ण के अनुसार समुचित शब्दों के चयन, अन्वय तथा पदक्रम वादि में अंगति रखी है। स्थान-स्थान पर अनावश्यक

पदों के प्रयुक्त होने से अधिकतम दोष प्राप्त होता है। किन्तु भाषागत ये दोष अविवीध में बाधा नहीं पहुंचाते हैं। इस प्रकार के प्रयोगों को तत्कालीन भाषा की सख्त प्रवृत्ति कहना उपयुक्त होगा।

पूर्ण वाक्य =====

पूर्ण वाक्यों की दृष्टि से तीन प्रकार के वाक्य उपलब्ध होते हैं --

१- साधारण वाक्य

२- मिश्र वाक्य

३- संयुक्त वाक्य

१- साधारण वाक्य

मौलिक नाटकों में साधारण वाक्यों की बहुलता है। यथा -- निरलज्जता जाती है,^१ ज्वनिका गिरती है,^२ हम लोगों ने पानी मांगा,^३ डाली बड़ाजी मुकड़ी,^४ मुकड़े बोले न उठेगा,^५ मुकड़े और कुछ अच्छा नहीं जाता,^६ आशा जाती है,^७ भीतर से उखले पड़ते हैं।^८

१- भारतेंदु -- भारत दुर्वशा, पृ० १७

२- ,, -- बंधेर नगरी, पृ० ६

३- ,, -- हरिश्चन्द्र चंद्रिका, खण्ड ६, सं० ८, पृ० १४।

४- ,, -- हरिश्चन्द्र चंद्रिका, मैगजीन, खण्ड-१, नं० ३, पृ० ८५।

५- ,, -- भारत दुर्वशा, पृ० २१।

६- ,, -- प्रेम जी गिनी, पृ० १६।

७- ,, -- भारत दुर्वशा, पृ० १७।

८- ,, -- हरिश्चन्द्र मैगजीन, खण्ड १, नं० ७-८, पृ० २२।

कहीं-कहीं मात्र संज्ञा जथवा क्रिया द्वारा साधारण वाक्यों की रचना हुई है। यथा -- हलवाई-बौपट्ट राजा।^१ चन्द्रावली -- वाइ सली.....। चल.....। ललिता प्यारी देख.....।^२

२- मिश्र वाक्य

भारतेन्दुश्रीन नाटकों में एक मुख्य उपवाक्य के आश्रित उपवाक्य वाले मिश्रित वाक्य प्रचुर रूप से प्रयुक्त हुए हैं। यथा -- नका मुँह है कि हमारी कविता सुने,^३ मैं केवल यही वर मांगता हूँ कि धन्डू मेरे वश में होय,^४ इसमें फूँठ क्या है तू को बत हो बतलाओ,^५ जो बचते तो यही साँचते उनकी सदा रहाई है,^६ जो जहाज अभी लाखों रुपए का था, इन पर मैं एक पैसे का भी न रहा^७ तब न बचावगा कोई जब कालदण्ड सिर कूटीगा,^८ जितना पानी नदी में जाने देना चाहें उतनी नदी में दें,^९ जहाँ अभी हुबाव था वहाँ थोड़ी दूर रेत पड़ी है।^{१०}

१- भारतेन्दु -- अंधेर नगरी, पृ० ६।

२- ,, -- चन्द्रावली नाटिका, पृ० २१।

३-

४- भारतेन्दु -- कपूर मंजरी, पृ० ५।

५- धनंजय भट्ट सरल -- भट्ट नाटकावली, पृ० १७।

६- भारतेन्दु -- नवीनित हरिश्चंद्र चंद्रिका, सण्ड ११ संख्या ३, पृ० २३।

७- ,, -- हरिश्चंद्र चंद्रिका चंद्रिका -- सण्ड ७, सं० ३, पृ० ४।

८- ,, -- नवीनित हरिश्चंद्र चंद्रिका, सण्ड ११, सं० ३, पृ० २१।

९- ,, -- कवि वचन सुधा, सण्ड ३, सं० १, पृ० ६।

१०- ,, -- ,, ,, ,, ,, ।

३-संयुक्त वाक्य

इन वाक्यों में प्रधान वाक्य एक ने अधिक हैं। किन्तु सभी में परस्पर सम्बन्ध दिखाई पड़ता है। यथा --

"पाण्डवों को आधा राज्य बांट दो हमने विचार कर निश्चय कर लिया है कि युधिष्ठिर के परमात्मक गुण का अन्त नहीं है।^१ कहाँ हैं लाला, को घण्टे हमें लड़े-लड़े हो गये न मेले आवें न दिया आवे न बंठने के लिए जगह न चीज रखने के लिए जगह, हमने ऐसी बारात छोड़ी या लिये हमें लाये हैं ऐसे नालायक से पाला पड़ा है बारात तो और जगह भी हम गए हैं पर ऐसा अंधेर कहीं नहीं देखा गया।^२ सरकार इन बातों को जानती है व नहीं जानकर कान में तेल डाले बैठी है,^३ यद्यपि हमारे पिता की राजधानी भी अत्यन्त अपूर्व है परन्तु इस स्थान का मुझे कोई स्थान नहीं दिखाई देता,^४ सखी मेरी तो यह विपत्ति भागी हुई है, इसमें मुझे कुछ नहीं कहती,^५ सूत्रधार।..... लो इसी खेल ही में देखो,^६ सूत्रधार।..... किन्तु यह बखेड़ा बनाने कहा था और पक्का फैलाने कहा था।^७ पा।..... यहाँ ईश्वर का निर्णय करने जाए ही कि नाटक खेलने जाए ही ?"^८

अपूर्ण वाक्य

वाक्य-रचना की यह प्रवृत्ति भारतेन्दुयुगिन नाटकों में व्याप्त है। अपूर्ण वाक्य की यह प्रवृत्ति [अध्याहार] किसी स्थान पर व्याकरणिक नियमों के

१- पं० बालकृष्ण भट्ट -- बृहन्नला, पृ० १६।

२- तोताराम -- विवाह विडम्बन, पृ० १११।

३- भारतेन्दु -- अविचन सुधा, खण्ड-३, नं० २४, पृ० १८५।

४- ,, -- विद्यासुन्दर, पृ० ५।

५- ,, -- चंद्रावली नाटिका, पृ० २३।

६- ,, -- प्रेमजोगिनी, पृ० ५।

७- ,, -- ,,

८- ,, -- ,,

अनुसार है तो कहीं नहीं है। यह अध्याहार पूर्ण तथा अपूर्ण दो प्रकार का है --

पूर्ण अध्याहार में छोड़ा जाने वाला शब्द वाक्य में पड़े कहीं प्रयुक्त नहीं किया गया रहता है। 'तुम' का लोप -- चौ० । जो क्या हमें नहीं सकता पर कहाँ रहते हैं।^१

'व्यक्ति' का लोप -- जो मिले हैं बिछुड़ेंगे और जो जीते हैं अवश्य मरेंगे।^२

शब्दों का लोप अक्षारण हो गया है। उदाहरणार्थ :--

'सा' का लोप -- चौ० । कौन विद्या।^३

सू० । ऐसा कौन नाटक है।^४

'के' का लोप -- हम लोग आज दिन काश्मीर का इतिहास प्रत्यक्ष करते हैं।^५

अपूर्ण अध्याहार में छोड़ा जाने वाला शब्द एक बार प्रयुक्त हो चुका होता है।

सू । ... पुराने नाटक खेलने में इनका जी भी न लगाता, कोई नया खेल,^६

गो०दा० -- क्यों माई बणिये बाँटा कितनी सेर ?

बनियान् -- टके सेर।

गो०दा० -- बीस चावल।^७

सौ० -- आजकल फूट कहाँ है।

सू० -- कुछ कुछ मतवालों में है।

शि० -- मत वालों में तो नहीं मतवालों में होगी।^८

१- भारतेन्दु -- प्रेमजी गिनी

२- // -- विद्यासुंदर, पृ० ६।

३- // -- // // ।

४- // -- प्रेमजी गिनी, पृ० ७।

५- // -- काश्मीर कुसुम, पृ० ८।

६- // -- प्रेमजी गिनी, पृ० ७।

७- // -- बंधर नारी, पृ० ८।

८- बम्बिकादत्त व्यास -- भारत समाचार, पृ० ७।

मुहावरे और कहावतें

मुहावरों और कहावतों का जितना अधिक प्रयोग ग्रामीण जनो की बानी में होता है, उतना शिक्षित-समुदाय के कृत्रिम वातावरण में नहीं। आभिजात्य वर्ग की बानी के मध्य मुहावरों का प्रयोग एक 'फैशन' समझा जाता है, किन्तु ग्रामीण-समुदाय में सहज-स्वभाविक रूप से इनका प्रयोग होता है। अनेक अत्यधिक प्राणवान मुहावरे ग्रामीण-समुदाय से आभिजात्य साहित्य तक की यात्रा में प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेते हैं और साहित्य में प्रयुक्त होने लगते हैं। इनके प्रयोग से साहित्य दो रूपों में सामान्वित होता है। पहला यह है कि लोक-भाषा की मिठास उपलब्ध हो जाती है और दूसरा प्रत्यक्ष रूप से लोक-व्यक्ति हो जाती है। कहावतों और मुहावरों को 'लोकानुभव पर आश्रित जीवन की तारभूत समीक्षा' कहा गया है।

कहावतों में अनेकानेक ऐसी अभिव्यक्तियाँ समाविष्ट रहती हैं, जिनमें जातीय तत्व की प्रसूता है। 'रिजले' ने 'पीपुल्स ऑफ इंडिया' में ऐसी कहावतें संगृहीत की हैं जिनमें विविध भारतीय जातियों के विषय में लोक-मानस की मनोवृत्ति तो समाविष्ट है ही, साथ ही उस जाति के गुण-अवगुण की भी समीक्षा हो गई है। किन्तु, 'साहित्यकारों की दृष्टि में इन कहावतों का मूल्य जातीय तत्वों की दृष्टि से उतना नहीं है, जितना उनमें हुई अभिव्यक्ति, मानसिक-वैविध्य, उक्ति-वैशिष्ट्य और प्रभावबोधकता से है। कहावतों के क्षेत्र में जाकर ही हम लोक-अनुभूति के अर्थ गौरव को और उसकी व्यावहारिक पैनी दृष्टि को यथार्थतः समझ पाते हैं। इस प्रकार कहावतों में हम लोक-मानस के कितने ही पक्षों का साक्षात्कार कर सकते हैं।'-^१

१- टी० शिल्पे -- डिक्शनरी ऑफ वर्ल्ड लिटरेरी टर्म्स -- [लंदन १९५५], पृ० ३२६।

२- डा० सत्येन्द्र -- लोक साहित्य विज्ञान, पृ० ४५६।

भारतेन्दुशुक्लिन नाटककार लोकवैतना को उद्देलित-प्रेरित करना चाहते थे । अतएव उन्होंने भाषा को सहज बोधाम्य और प्रभावी बनाने के लिए लोकमानस में व्याप्त कहावतों एवं मुहावरों का प्रचुरता के साथ प्रयोग किया है । इस प्रकार मुहावरों और लोकशक्तियों के प्रयोग से नाटककार अपने नाटकों को लोक-
न्मुख बनाने में पूर्ण सफलता प्राप्त कर रहे हैं ।

“शैब्या [रोती हुई] -- हाय बेटा ! अरे आज मुझे क्लिने लुट लिया । हाय मेरी बीतती बिड़िया कहाँ उड़ गई ! हाय अब मैं क्लिना सुंह देख करके जिऊंगी । हाय मेरी अंधी की लकड़ी कौन डीन ले गया ।”^१

“गुबरिल -- बाह यह बहुत अच्छी रही उलटे हम पर पाँ चारह की तड़ जमाई । कहाँ तो थोड़े दिनों पहले आप वह युगल था कि सुबह या शाम के जहर एक बार यहाँ आया करते थे और अब तो कटे-कटे दूर ही से नाँ दो ग्यारह हो जाया करते हैं । दोस्ताने का यह काम नहीं है कि हमहीं से शतरंज की बात चले ।”^२

“तीसरा नागरिक स्तम्भाई, हम तो “राजा की सो न्याय” वाली गीत गाते हैं । सर्व साधारण के लाभ को लाभ मारते हैं । जिसने अपना सधें सोई किया चाहते हैं । “स्वाधीप्रन्सोहि.....” शान्त वृत्ति धरे जोश को पाय नहीं फटकने देते, हाँ में हाँ मिलाने की बड़ी पड़िताई और बतुराई मानते हैं । “कौड नृप होहि हमें का हानी, बेरी छोड़ न होउब रानी” दासस्य दासस्य दास दास ही सेवा कृद्धि वृत्ति ही हमारा मूलमंत्र पुरुखाँ से चला जाया है । तब हम क्यों इन बातों में पड़ ठक्यो की सिर पचावें और मन बलावें ।”^३

१- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र -- सत्य हरिश्चन्द्र, पृ० ४२ ।

२- जगन्नाथ प्रसाद शर्मा -- कुन्दकली नाटक, पृ० २८ ।

३- धर्मजय मट्ट ‘सरल’ -- मट्ट नाटकावली, पृ० ५८ ।

‘सती चरित्र’ में चन्द्रोदय सिंह पात्र कहता है -- ‘ताली दोनों हाथ से बजती है, यदि तुम कुछ न बोलो तो किसी का खर फिरे है जो कोई तुमसे ऊंगड़ा करे। तनिक समय देखाँ और विचारों कि किसी का कल रही है। जिसकी लाठी उसकी पीठ का अवसर नहीं है। इस समय मेड़िया और मेड़ एक घाट पानी पीते हैं। अब तो जो किसी की ओर तनिक उंगली भी उठावे कि वह अपराधी हो गया।’^१

‘सुदामा कृष्ण’ नाटक में सुदामा मन की व्यथा को प्रकट करते हैं --
 ‘बाहरी भाग्य ! जाखिर अपना खेत यहाँ भी बिसला दिया। अभी तक जो कार्यों से सुनते थे सब सब अब नेत्रों ने देख लिया वहीं कहावत हुई कि ढोल के नीतर पोल। हाय ! नास्तिक ब्राह्मणों के कहे पर विश्वास जाया और यहाँ आया अब सिवा हसी के और क्या कहाया अब कौन सी सम्पत्ति की गठरी ब्राह्मणों के सम्मुख जाकर धक्का। कि कृष्ण बंड ने दिया है। सत्य ? बुद्धिमान के लिए यही उचित है कि स्वर्ग के बरनों पर कदापि विश्वास न लावे पशुचाचाप का सिवाय और क्या हाथ आया अब आज ने यह हृदय में निश्चय हो गया कि विपत्ति में कोई किसी का साथी नहीं होता।’^२

‘नन्द विदा नाटक’ में घोषी कहता इस है -- ‘छोटे मुँह बड़ी बात। अभी राजा का सुन पावैगा तो सब ग्वाल वालों के साथ तुम्हें सबक मरवा डालूंगा।’^३

इसी प्रकार भारतेन्दु युग के लगभग समस्त नाटकों के संवादों में मुहावरों का समावेश हुआ है, इनकी संक्षिप्त सूची प्रस्तुत है, जिसके आधार पर भाषा की लोकानुसृतता का स्पष्टीकरण होता है :--

१- हनमंत सिंह रघुवीर सिंह -- सती चरित्र, पृ० २७।

२- शिवनन्दन सहाय -- श्री सुदामा कृष्ण, पृ० ११।

३- पं० बलदेवप्रसाद मिश्र -- नन्द विदा, पृ० ६।

हिन्न भिन्न होना,^१
 हीन दीन होना,^२
 लाल पीले होना,^३
 धोके की हड टट्टी,^४
 ज्ञान में तेल डालना,^५
 मोरी बकवाद,^६
 काले जकार में बराबर,^७
 आंस भर जाना,^८
 अपने हिस्से पर रोना,^९
 सात पांच करना^{१०}
 लुट जाना,^{११}
 फिर जाना,^{१२}
 लौद खाद करना,^{१३}
 लान फांक करना,^{१४}

१- भारतेंदु हरिश्चन्द्र -- बादशाह दर्पण, पृ० १ ।

२- वही ।

३- भारतेंदु हरिश्चन्द्र -- कर्पूर मंजरी, पृ० ७ ।

४- भारतेंदु-हरिश्चन्द्र चंद्रिका मोहन चंद्रिका, खण्ड ७, संख्या ४, पृ० २६ ।

५- ,, -- कवि वचन सुधा, खण्ड ३, नं० २४, पृ० १८५ ।

६- ,, -- हरिश्चन्द्र मोजीन, खण्ड १, नं० ३, पृ० ८६ ।

७- ,, -- कर्पूर मंजरी, पृ० ५ ।

८- ,, -- प्रेमजी गिनी, हरिश्चंद्र चंद्रिका, खंड १, सं० ६, पृ० ५ ।

९- ,, -- चंद्रावली नाटिका, हरिश्चंद्र चंद्रिका, खंड ४, सं० १-३, पृ० १२ ।

१०- ,, -- हरिश्चंद्र चंद्रिका मोहन चंद्रिका, खंड ७, सं० ४, पृ० २७ ।

११- ,, -- नवोदित हरिश्चन्द्र चंद्रिका, खंड ११, सं० १, पृ० १ ।

१२- ,, -- हरिश्चन्द्र चंद्रिका, खंड ५, सं० ३, पृ० ८ ।

१३- ,, -- ,, ,, खंड ६, सं० ८, पृ० १७ ।

१४- ,, -- हरिश्चंद्र चंद्रिका मोहन चंद्रिका, खंड ७, सं० ४, पृ० २७ ।

डंका बजना, १
 बात पचना, २
 दांत खट्टे करना, ३
 चार दिन का कौरा, ४
 एक जिन्दगी हजार न्यामत है, ५
 परवल गौह कराँदा लाय, ६
 दरियाई की जंगिया में मूँज की बरिखा, ७
 राजा सुखी प्रजा सुखी, ८
 पाँचों की में है, ९
 हाथ कान को जारसी क्या, १०
 सब धान बाँस फोरी, ११
 पापड़ बेलने पड़े, १२
 काज के समय लाज को त्वार दे १३

- १- भारतेन्दु -- नवोदित हरिश्चन्द्र चंद्रिका, सं० ११, सं० ३, पृ० २३ ।
 २- ,, -- अंधेर नगरी, पृ० ६ ।
 ३- ,, -- वही ।
 ४- ,, -- नवोदित हरिश्चन्द्र चंद्रिका, सं० ११, सं० ३, पृ० २३ ।
 ५- ,, -- भारत बुद्धि, कात्रिय पत्रिका, सं० २, सं० ११, पृ० १४८ ।
 ६- ,, -- हरिश्चन्द्र चंद्रिका, सं० ४, सं० १, पृ० ३३ ।
 ७- ,, -- कर्पूर मंजरी, पृ० ८ ।
 ८- मंतराराम मारवाड़ी -- ध्रुव तपस्या, पृ० १७ ।
 ९- शालिग्राम -- माधवानल कामकंदला, पृ० ३ ।
 १०- वही, पृ० ७ ।
 ११- वही, पृ० ५ ।
 १२- वही, पृ० ६ ।
 १३- वही, पृ० ११ ।

मई गति सांप ऊँदर जेरी,^१
 जाते पर न फटी.....,^२
 नाकों में डम,^३
 सात में मिला ना,^४
 शांती पर सांप लोटना,^५
 पानी फोर गई,^६
 बालि गलाई नहिं गलत आए,^७
 सिंह जवा दोऊ सुख सौं जल एकहिं घाट पियाजो,^८
 जो हुआ सो हो गया अंत में होगी मलाई,^९
 जोसर चुकी डोमनी गावे जाल बैताल,^{१०}
 तिल खेत की मूली,^{११}
 अपने मुंह मियां मिट्टू नहिं बनना चाहता,^{१२}
 तीन तेरह हो गए,^{१३}

- १- शालिग्राम -- माधवानंद कामतंवल, पृ० २३ ।
 २- राधाकृष्ण दास -- दुःखिनी बाला, पृ० २७ ।
 ३- धनश्याम दास -- वृद्धावस्था विवाह नाटक, पृ० ७ ।
 ४- वही, पृ० ६ ।
 ५- वही, पृ० १३ ।
 ६- वही, पृ० १७ ।
 ७- वही, पृ० २१ ।
 ८- वही, पृ० २३ ।
 ९- वही, पृ० २७ ।
 १०- वही, पृ० ३१ ।
 ११- वही, पृ० ३५ ।
 १२- वही, पृ० ३६ ।
 १३- वही, पृ० ३६ ।

अब पस्ताए होत कह विड़िया बुग गर सेत,
 बाल बाँका नहीं करना,
 लाठी के मारे पानी अलग नहीं,
 ईश्वरे कहा गरीबकी,
 क्रोधः पापस्य कारणम्,
 छोटे मुँह बड़ी बात,
 गौबर के ढेर पर काठ की पुतली,
 तीखी जंगुरी कर्तौ फिड निस्तृत है,
 अपने पाँव में आप ही जुल्हाड़ी मारना,
 जंगल में मंगल,
 जले पर नौब,
 करमालि टारी नहिं टरै,
 बारम्भ शूर,

- १- मूलबंद -- सुल्लि नाटक, पृ० ११ ।
 २- वही, पृ० १२ ।
 ३- वही, पृ० १४ ।
 ४- पं० बालकृष्ण भट्ट -- बुद्धनला नाटक, पृ० ३ ।
 ५- वही, पृ० ५ ।
 ६- वही, पृ० ७ ।
 ७- वही, पृ० ६ ।
 ८- वही, पृ० ११ ।
 ९- वही, पृ० ११ ।
 १०- श्रीमती लाली -- गोपीबंद नाटक, पृ० १३ ।
 ११- वही, पृ० १४ ।
 १२- वही, पृ० १६ ।
 १३- बह भारतेन्दु हरिश्चन्द्र -- चंदावली नाटिका, पृ० ११ ।

जल में दूध की भाँति मिलना, १
 रेत पत्थर की नहीं हूँ, २
 पहिली बूकना, ३
 मुँह चिढ़ाना, ४
 अपने क्लिष्ट पर रोना, ५
 विषा के बुले कुरे, ६
 अमृत पीकर छात्र पीना, ७
 गुदगुड़ाना वहाँ तक जहाँ तक रुलाई न आवे, ८
 कपोत-व्रत, ९
 बकरा जान से गया पर खाने वाले की स्वाद न मिला, १०
 जस डूलह तस बनी बराता, ११
 जंगल में मोर नाचा क्लिष्टने बैसा, १२
 जब तक बाँसा तब तक आस, १३

१- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र -- बंदावली नाटिका, पृ० ११ ।

२- वही, पृ० १३ ।

३- वही, पृ० १३ ।

४- वही, पृ० १५ ।

५- वही, पृ० १७ ।

६- वही, पृ० २१ ।

७- वही, पृ० २१ ।

८- वही, पृ० २३ ।

९- वही, पृ० २५ ।

१०- वही, पृ० २६ ।

११- वही, पृ० २६ ।

१२- वही, पृ० २६ ।

१३- वही, पृ० ३१ ।

मान न मान में तेरा मेहमान,^१
 आले वार होना,^२
 जैसी बहे वयार पीठ तैसी कर दीज,^३
 छोटा मुंह बड़ी बात,^४
 नाक माँ तिमोड़ना,^५
 बाल में जाला,^६ खुदरा फजीस्त देगरा नगीस्त,^७
 बकरी की माँ कब तक हुआ मांगेगी,^८
 दोनों हाथ धी में,^९
 दूध का दूध पानी का पानी,^{१०}
 विनाश काले विपरीत बुद्धि,^{११}
 उड़ती बिड़िया पकवानना,^{१२}
 जल में रहकर मार से विरोध,^{१३}
 एक तो तितलाँकी कुजे नीच चढ़ी,^{१४}

१- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र -- बंदावली नाटिका, पृ० ३१ ।

२- वही, पृ० ३७ ।

३- वही, पृ० ३७ ।

४- रत्नावन लाल -- प्रेमसुन्दर नाटक, पृ० ११ ।

५- वही, पृ० ११ ।

६- वही, पृ० १३ ।

७- वही, पृ० १४ ।

८- वही, पृ० १६ ।

९- वही, पृ० १८ ।

१०- वही, पृ० १८ ।

११- 'हरिवीथ' -- प्रद्युम्न विजय नाटक, पृ० २१ ।

१२- पं० बालकृष्ण मस्ट, पृ० -- दमयंती स्वयंवर, पृ० ७ ।

१३- वही, पृ० ७ ।

१४- वही, पृ० ८ ।

एक भवानी कुल गांव बंधा लिये-लिये जां. १,
 दूट्टी की जाड़ में शिमार,^२
 एक चने से माड़ फोड़ेंगे,^३
 उन्तोषं परम सुख,^४
 नौ दिन चले जड़ाई कोस,^५
 काजी जी सुबसे क्यों शहर के बंदे से,^६
 गौड नृप होउ....,^७
 अजगरी करे न चाकरी.....,^८
 बिड़िया हाथ बाई,^९
 सौ सुनार की न एक सुहार की,^{१०}
 बोलती बिड़िया का उड़ जाना,^{११}
 बंधे की लकड़ी छिनना,^{१२}
 सुट्टी गरम करना,^{१३}

- १- पं० बालकृष्ण भट्ट -- कमयंती स्वयंवर नाटक, पृ० ६ ।
 २- वही, पृ० १३ ।
 ३- विजयानन्द त्रिपाठी -- महामोह विद्रावण, पृ० १७ ।
 ४- वही, पृ० ११ ।
 ५- वही, पृ० १३ ।
 ६- वही, पृ० १४ ।
 ७- वही, पृ० १४ ।
 ८- वही, पृ० १५ ।
 ९- धनश्यामदास -- वृद्धावस्था विवाह नाटक, पृ० १३ ।
 १०-गोपालराम गहमरी -- देशदशा नाटक, पृ० ७ ।
 ११- वही, पृ० ८ ।
 १२- वही, पृ० ६ ।
 १३- वही, पृ० ११ ।

शाही पर नौदो करना, १
 घोड़े की टट्टी, २
 सबहिं नवावत पेट गोसाईं, ३
 आपनो जौना भयो जब खोट ती दोष कहा है परदेनिहार की, ४
 तत्तर बूहे साय बिल्ली चली हज्ज की चली, ५
 हथेली पर तराई मत जमाओ, ६
 नाम बड़े और दर्शन थोड़े, ७
 बगल में झोरा नगर में डंडोरा, ८
 ऊंची दुकान फकिरा पकवान, ९
 पंच लीजें कीजें काज, हारे जीतें नाहीं लाज, १०
 चौबे से हब्बे होने गए पास का दो गवां हुवे ही रहे, ११
 नाच न आवे जांगन टेढ़ा, १२
 दाल भात में मूसलबंद, १३

- १- गोपालराम गहमरी -- वैशदशा नाटक, पृ० ११ ।
 २- वही, पृ० २१ ।
 ३- वही, पृ० २३ ।
 ४- वही, पृ० २४ ।
 ५- ईश्वरीप्रसाद शर्मा -- वैश्या नाटक, पृ० २ ।
 ६- तीताराम बक़ील -- विवाह विडम्बना नाटक, पृ० ७ ।
 ७- वही, पृ० ७ ।
 ८- वही, पृ० ५ ।
 ९- वही, पृ० ४ ।
 १०- पं० बालकृष्ण भट्ट -- वेणु संहार नाटक, पृ० १३ ।
 ११- वही, पृ० १३ ।
 १२- वही, पृ० १५ ।
 १३- वही, पृ० १६ ।

मन के लहड़ बांधना,^१
 हाथ कंगन को आरसी क्या,^२
 पासा पड़े सो दाव राजा करे तो न्याव,^३
 दूध की मक्खी,^४
 दूध का दूध पानी का पानी,^५
 अंधेर नगरी चौपट राजा टके सेर भाजी टके सेर साजा,^६
 जैसा काम वैसा परिणाम,^७
 धौबी धौबिन से न जीते तो गवही का. जान हँटे,^८
 अपने मुंह मियां मिट्टी,^९
 जस डूलह तस बनी बराता,^{१०}
 ढोल के भीतर पोल,^{११}
 जाग कबूला,^{१२}
 मियां बीबी राजी तो क्या करे गांव का काजी,^{१३}

- १- किशोरी लाल गोस्वामी -- मयंक मंजरी, पृ० ४ ।
 २- वही, पृ० ५ ।
 ३- भारतेन्दु -- विषयस्य विषमोपपत्तम्, पृ० ११ ।
 ४- वही, पृ० ११ ।
 ५- वही, पृ० १७ ।
 ६- भारतेन्दु -- अंधेर नगरी, पृ० ४ ।
 ७- पं० बालकृष्ण भट्ट -- जैसा काम वैसा परिणाम, पृ० ११ ।
 ८- अम्बिकादत्त व्यास -- भारत सांभार्य नाटक, पृ० १३ ।
 ९- किशोरीलाल गोस्वामी -- चौपट चपेट, पृ० १४ ।
 १०- वही, पृ० ७ ।
 ११- वही, पृ० ५ ।
 १२- वही, पृ० ४ ।
 १३- वही, पृ० ४ ।

मेहुकी की चुकाम, १
 मेहुकी चली नाल जड़ाने, २
 पीठी कुरी, ३
 घोबी का कुचा घर का न घाट का, ४
 चार दिनों की चांदनी, ५
 घोबी बल के क्या करे दिगजम्बर के ग्राम, ६
 का बच्चा जब कृष्ण सुलाने, ७
 छोटे मुंह बड़ी बात, ८
 रक्त तो गिल्लीकी, दूजे नीम चढ़ी, ९
 जल में रह मगर से बैर, १०
 साँप मरे न लाठी टूटे, ११
 प्यास ली पर कुआँ सोदना, १२
 बाँह गहे की लाज, १३

- १- किशोरीलाल गोस्वामी -- चौपट चपेट, पृ० ३ ।
 २- वही, पृ० ३ ।
 ३-
 ४- कन्ह्यालाल -- अंजना सुंदरी नाटक, पृ० ५ ।
 ५- वही, पृ० ११ ।
 ६- वही, पृ० १३ ।
 ७- देवदत्त शर्मा -- बाल्य विवाह दुष्क नाटक, पृ० १७ ।
 ८- रत्नचंद्र -- प्रमजालक नाटक, पृ० १० ।
 ९-
 १०- पं० बालकृष्ण भट्ट -- वसयंती स्वयंवर, पृ० ११ ।
 ११- वही, पृ० १३ ।
 १२- माधव शुक्ल -- महाभारत पार्वी, पृ० ३ ।
 १३- दामोदर शास्त्री सप्रे -- नाटकाकार रामायण, पृ० ४ ।

घर का मेदी लंका ढाह, १
 चार हाथ होना, २
 होहो सौंही जो राम रवि राखा, ३
 साँप को दूध पिलाना, ४
 बाल बाँका न होना, ५
 देसी कुतियाँ बिलायती बोल, ६
 साँच को जाँच क्या, ७
 चोर की सब चोर ही दीखे हैं, ८
 रंद के चांद, ९
 धोबी का कुआ घर का न घाट का, १०
 जेबड़ी जल जाती है परन्तु रेंठन नहीं जाती, ११
 काठ का पुत्ता, १२
 ताली दोनों हाथ से बजती है, १३

१- कामाक्षी शास्त्री सप्रे -- नाटकाकार रामायण, पृ० ७ ।

२- वही, पृ० ११ ।

३- वही, पृ० ११ ।

४- जम्बिकादा व्यास -- गीर्वाण नाटक, पृ० ३ ।

५- वही, पृ० ७ ।

६- वही, पृ० ५ ।

७- वही, पृ० ।

८- प्रताप नारायण मिश्र -- कलिकविक्रम रूपक, पृ० ३ ।

९- वही, पृ० ७ ।

१०- वही, पृ० ७ ।

११- कन्हैयालाल -- कंजना सुंदरी नाटक, पृ० ११ ।

१२- वही, पृ० १२ ।

१३- गोपाल राम गहमरी -- जीवन योगिनी, पृ० ५ ।

जिसकी लाठी उसकी भैंस, १
 उनकी दुकान फीका पक्वान, २
 पर्वत पर झुंवा सोदना, ३
 चींटी की मीत जाने पर पर का निकलना, ४
 लोहे सिंह को जगाना, ५
 रंग गिरगिट की तरह बदलना, ६
 आग बिना धुंवा नहीं होता, ७
 कहीं पवन से पर्वत उड़ते हैं, ८
 काले कंबल पर दूसरा रंग नहीं चढ़ता, ९
 बाल बांका न होने देना, १०
 घोड़े बैच कर लो ना, ११
 मेरे सैर्या भर कोत्वाल तो अब डर जाहे की, १२
 चिकनी चुपड़ी बातें, १३

- १- हनमन्त सिंह -- सती चरित्र, पृ० ६ ।
 २- वही, पृ० ७ ।
 ३- श्रीनिवास दास -- रणधीर प्रेममोहिनी, पृ० १७ ।
 ४- वही, पृ० ११ ।
 ५- वही, पृ० ६ ।
 ६- वही, पृ० ८ ।
 ७- वही, पृ० ४ ।
 ८- गोपाल राम गहमरी -- देशवशा नाटक, पृ० ५ ।
 ९- वही, पृ० ७ ।
 १०- वही, पृ० ११ ।
 ११- रत्नचंद्र -- उर्दू-हिन्दी नाटक, पृ० ५ ।
 १२- वही, पृ० ६ ।
 १३- वही, पृ० ६ ।

हुलसी हाटना,^१

चौर चौर माँस्यायी भाई,^२

डूब मरो चिहवा भर पानी में,^३

जबरा मारे रोवे न देवे,^४

जाहि पिया माने वही सुहागन,^५

पाथर ऊपर डूब जमाना,^६

व्याज के लाभ मूल गंवाना,^७

फूले सदा न तोरई सावन सदा न होय,^८

कपड़ों नाटकों में प्रयुक्त मुहावरों और कहावतों के उपर्युक्त समूह में यह सङ्ग ही अभिव्यजित होता है कि भाषा की लोकोन्मुख बनाए रखने की दृष्टि से नाटककारों ने किस सीमा तक लोकभाषा के इस स्वरूप की ग्रहण किया है। इनमें से अनेक मुहावरों की अनेक बार पुनरावृत्ति हुई है। बूढ़े मुँह मुँहाने, जंघेर नगरी चौपट राजा, जैसा काम वैसा परिणाम नाटकों के शीर्षों की सुपरिचित लोकोक्तियाँ हैं। इस भारतेंदु का की प्रमुख विशेषता है कि नाटककारों ने वातावरण करने वाले शब्द, ध्वनियों, विशेषणों, मुहावरों, लोकोक्तियों एवं सूक्तियों के विपुल प्रयोग किए हैं।

१- रत्नचंद्र -- उड़ी-हिन्दी नाटक, पृ० संलग्न ७।

२- वही, पृ० ७।

कनकचरित्रकृतकृतक

३- 'प्रेमघन' -- भारत सौभाग्य, पृ० ११।

४- गोपाल राम गहमरी -- वैशवशा नाटक, पृ० १३।

५- जगनलाल कासलीवाल -- सत्यवती नाटक, पृ० ५।

६- गिरिधरदास -- नहुष नाटक, पृ० ११।

७- वही, पृ० १७।

८- वही, पृ० १७।

नाटकों में प्रयुक्त लोक भाषा की प्रेषणीयता

भाषा के सन्दर्भ में यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि प्रेषणीयता के स्तर पर उसने कितनी सफलता अर्जित की है। नाटकों में संवाद ही प्राण होता है। इन्होंने के माध्यम से पात्र कथा-शिल्प का विकास करते हैं, अतएव संवादों की भाषा पर ही पूर्ण प्रेषणीयता निर्भर हो जाती है।

भारतेन्दुशर्मा नाटकों में पात्रों की भाषा उनके देश, प्रान्त और जाति के अनुसार परिवर्तित हो गई है, तभी उनकी लोकसंवेदना में अभिवृद्धि हो सकी है।

नाटकों की प्रस्तावना में दो पात्र [सामान्यतः सूत्रधार और नटी] रंगमंच पर वाचालाप द्वारा निष्कर्ष व्यक्त करते हैं कि अबुक्त नाटक की प्रस्तुति की जाए। इस परम्परा का अधिकांश नाटककारों ने निर्वाह किया है। ऐसे वाचालापों में भाषा का लोकस्वरूप सहज रूप से उपस्थित हुआ है। "अभिनय बोलबाल की अधिक पकड़ने की चेष्टा करते हैं।" अतएव नाट्य-लेखक भाषा विधान में पात्रासूक्त भाषा का व्यवहार करता है, तभी नाटक प्रभावी बन पाता है। जैसे :—

सूत्रधार -- "धन्य है। आज सरद पुनो की रात ऐसी सुहावनी मिलित दिखती है ? [ऊपर देखकर] बाह ! धीरे-धीरे निमल आकाश की शोभा भी देखने के मिलित ही के योग्य है। तारागण के मध्य चंद्रमा कैसा अपनी पूर्ण कला से दीप्तिमान है ? से। यह बोल पड़ती है वा चंद्रमा सक्षुब्ध सुधा वृष्टि कर रहा है ? यह क्लृ भी धन्य है। न कोई उष्णता के लस ताप से पीड़ित है और न कोई तुषार के दुःख से

मयभीत देख पड़ता है। जहाँ देखिए एक आनन्द है। [उधर उधर देखकर]

अः हा। आज तो बहुत से नाटकाभिलाषी रतिकानन झूठे हुए हैं, जिनकी बेवस्था से पूर्णात्साह और गुणकता प्रकट है। बस, इस समय हमें कौन सा खेल दिखाना जो उनकी रुचि के विरुद्ध न हो ?

[सोचकर] अब तो नटी भी जाती ही होगी, उसी भी पूछ लूँ। वह अवश्य कोई ऐसा ही खेल बतावेगी जहाँ मैं चाहती हूँ। [नेपथ्य की ओर देखता है नटी जाती है।]

सूत्रधार -- [प्यार से] नटी ! इतनी देर कहाँ बैठी रही, मैं तेरी ही बाट जोड़ता था।

नटी -- मैं तो चली ही जाती हूँ। कहीं कुशल तो है, क्यों मुझे जोड़ते थे ?

सूत्रधार -- हाँ कुशल तो है, पर देख आज की रात कैसी मुहावनी है ? और कैसे महाशयों ने हमें मृतार्थ किया है। अब बताओ सही आज कौन-सा नाटक हमें दिखाना ?

नटी -- अच्छा सोच लूँ तो बताऊँ [नीचे आँसू झिर नीचती है]।

सूत्रधार -- [बाप ही बाप] नटी कोई अवश्य उत्तम नाटक चुनकर बताएगी।

नटी -- [हर्ष से] बस, इस समय के लिए श्रीकृष्ण के महारास से बढ़ कर दूसरा कोई नाटक न होगा, और यह अभी नया भी है।

सूत्रधार -- [बड़े आनंद से] बाह तेरी बुद्धि भी धन्य है। ऐसा खेल चुन कर निकाला है। इस सरद पूर्णिमा को यही होना भी चाहिए, क्योंकि श्री रसिक शिरोमणि वृन्दावनविहारी के दापर-युग के अंत में इसी पूर्णिमा की रात में सोलह सत्सु गोपियों के साथ वृन्दावन को पवित्र किया था। बस उसी रात की लीला आज भी होनी चाहिए।

"भारत डिमडिमा नाटक" का सूत्रधार कहता है --

"हे प्यारी ! हम इनकी इन्दरसभा की मांति ही कोई नाटक दिखलावेंगे।

मेरा अभीप्राय इन्दरसभा के मांति यह नहीं कि जैसे इन्दरसभा देखकर हमारा

भारत नाश हुआ है वैसे ही उसके तुल्य एक और नाटक देखता-कर नाश करें।
परन्तु यह इच्छा है कि गाना-बजाना तो इसी भांति ना हो किंतु देश उपकारी
और धर्मदाक हो।”

‘संगीत शास्त्र’ की प्रस्तावना में नाटककार ने नटी द्वारा अभिज्ञान
शास्त्र के विभिन्न अनुवादों पर अपना अभिमत व्यक्त किया है, जो लोक-वि
के परिष्कार की दृष्टि से अत्यधिक उपयोगी है।

नटी -- “तो तो होता रहेगा, पर यह बताकर कि यह लोग शास्त्र नाटक से
क्या रीझेंगे, उसे तो इस समय के लोगों ने मिट्टी कर डाला है। किसी
ने कहानी-की लिखकर फूट-फूट नाटक का नाम घर दिया है। किसी ने
जञ्झर-जञ्झर का उलथा करने की धुन में भाषा को ऐसा बिगाड़ा है कि
देखने वाले समझें कि जैसी यह है वैसी ही संस्कीरत में भी होगी।
किसी उड़ू के रसिया ने उसे अमानत की इन्दरसभा ने भी अधिक बीपट
कर दिया है। हाय! कालिदास जी की कविता और उन्हीं के देश
में उनकी यह दुरक्षा २ प्राणनाथ! जाने दीजिए और कोई नाटक
लेलिए उसकी तो सुघ जाने से जी भर जाता है। कौन लेलेगा और किससे
देखा जायगा।”

नाटककार गोपालराम गहमरी ने विचारणा व्यक्त की है -- “कई
स्थानों पर गंवारी शब्द आए हैं, उन्हें आप अशुद्ध जान फेंक मत दीजिए वरंच
उन पात्रों के लिए वैसे ही शब्दों की आवश्यकता है।”^१

‘गोपीचंद नाटक’ में नाटककार ने भूमिका में स्पष्ट लिखा है -- “नाटक
की भाषा सरल और सुझोघ रखी गई है।”^२ जिसका अर्थ यही है कि नाटककार
ने लोकजीवन में व्याप्त शब्दों का प्रचुर प्रचुर प्रयोग किया है।

१- गोपाल राम गहमरी -- देशदशा नाटक, पृ० १।

२- श्रीमती लाली -- गोपीचंद नाटक, पृ० १।

भारतेन्दु ने 'क्यूरे मंजरी' में सबोध के अनुकूल लौक्यभाव में ग्राह्य प्राकृत शब्दों से युक्त भाषा का प्रयोग किया है। जैसे :—

“जामें रस कहु होत है, पढ़त ताहि सब कौय, बड़व
बात जूठी बाहिर, भाषा कौज होय ।”

भारतेन्दुजीन अधिकांश नाटककारों ने इसी के अनुरूप नाट्य-लेखन की दिशा निर्धारित की है।

‘प्रह्लाद चरित्र’ में प्रह्लाद का संवाद बाल-मानस को नष्ट अभिव्यक्ति प्रदान करता है।

“प्रह्लाद -- गुरु ! पिता से यह देह उत्पन्न हुआ है, इसलिए पिता की आज्ञा मानना देह का धर्म है परन्तु आत्मा-परमात्मा का सनातन वास है, इसलिए ईश्वर की उपासना करना आत्मा का मुख्य धर्म है। मुख्य धर्म को छोड़कर साधारण धर्म का निर्वाह मुझसे नहीं हो सकता ।”^१

‘अमरसिंह राठौर’ में अमरसिंह जब मुसलमानों से वार्ता करता है तो उर्दू और हिन्दुओं से वार्ता करता है तो हिन्दी प्रयुक्त करता है।

“अमरसिंह -- मैं खियाल करता हूँ कि मैं बड़ा खुशखीब हूँ। केमान मुल्क में और इस फकीरी की हालत में आपने मुझ पर इतनी मिह्वानी की है।”
मुंशी के संवाद में भी उर्दूपन का समावेश है।

“मुंशी -- गरीब परवर सुदाबन्द ! यह अरायज डुबूर के मुलखे से नहीं गुजरी, इश्राद ही तो जर्ज कलं ।”^२

श्रीमती लाली कृत गोपीचन्द्र में तमिल, गुजराती, बंगला, महाराष्ट्री, ओड़ी और उर्दू के गीत गवाए गए हैं।

१- लाला श्रीनिवास दास -- प्रह्लाद चरित्र, पृ० २३ ।

२- राधाचरण गोस्वामी -- अमरसिंह राठौर, पृ० १०-१३ ।

‘रणधीर-प्रेममोहिनी’ में का रिन्दा उई में बोलता है तो बैठ मारवाड़ी में और पंडित जी वृज में, जबकि अन्य प्रमुख पात्र खड़ी बोली प्रयुक्त करते हैं।

सुखवासीलाल -- बैठ जी ! तुम्हारी किन लोगों की रंटी है ?

नथूराम -- [हाथ जोड़कर] जन्दाता जी ! मैं तो माउयारी बली कहूँ हूँ।

सुखवासीलाल -- व्याज क्या ली हो ?

नथूराम -- वस का वारा कर, रम्भा महीना री खंदी, लिया करा श।

सुखवासी लाल -- लेकिन पीछे दो लेकर वस के बारह कर लेते हो, खते गायले की क्या हद ?

नथूराम [सिट पिटाकर] -- हैं जन्दाता यी तो म्हारी धंदोई ठैरो।

+ + +

रणधीर -- [जाते ही शीशे को फलट कर] -- चौबे जी किसे बात कर रहे थे ?

चौबे जी -- [चौंकर] -- आपने मल्लो सन्देह मिटाई दिवो। मैं तो जानौँ दूसरे चौबे समझ ही।

रणधीर -- कहा, भंग बूटी बन गयी ?

चौबे जी -- हां धम्मुरत ? मुंजी के नाम फोड़ फोड़े बड़ी मेर मई !

रणधीर -- तो अब किस विचार में हो ?

चौबे जी -- कुछ नाम तुमको आइये मैं अबेर मई तब मेरे मन में जे सन्देह भयो जी कहूँ अपने घर की रस्ता तो नाय भूल गये।^१

‘प्रेमसुंदर नाटक’ में भी पात्रानुसार भाषा का प्रयोग हुआ है और मारवाड़ी, उई तथा भोजपुरी को स्थान मिला है। इसी प्रकार सती चरित्र, ग्राम पाठशाला में नाटककारों ने जातीय भाषा प्रयुक्त की है। डा० ज्वर चन्द्रप्रकाश सिंह ने भारतेन्दु के भाषा-प्रयोग की समीक्षा करते हुए विचार व्यक्त किया है--
‘लोकसंग्रही भारतेन्दु ने लोकप्रामाण्यवादी भारत द्वारा प्रवर्तित नाटकीय भाषा

परम्परा की अपने नाटकों में ऐसा व्यापक रूप दिया, जिसने उसका स्थायी महत्व प्रकाश में आ गया। भारतेन्दु ने अपनी प्रेमजीगिनी में विभिन्न पात्रों द्वारा प्रयुक्त अनेक प्रकार की बोलियों की शक्ति से पात्रों के व्यक्तित्व को जीव कर दिया है।^१

‘दुःखिनी बाला’ में गंवार भाषा का यह रूप लक्ष्मणस के अनुकूल है।

‘लल्लू -- करे तो से कहा कि तू पढ़ना-लिखना छोड़ दे पर तू नहीं मानत।

लाख बेर समझावा कि हमारे यहां पढ़ना नहीं आता पर कुछ सुनिहिं नाहीं।’^२

इसी प्रकार पं० देवकी नन्दन त्रिपाठी ने ‘जयनार सिंह’ में ग्रामीण भाषा प्रयुक्त की है। ‘महाभारत पूर्वादे’ में यही रूप प्रयुक्त है --

‘भीखू बढ़ई -- हात-वाल का बताई मंसा, आज बार-बार माह्वारी से बैठा हूँ के ऊँ कारे का पुहवै नाहीं करत, ई कह ओकरे गम में एक हड्डल पड़ी रहल। तौने से पेटवा जीयाजीत ह नाहीं तौ फजीता होइ जात।’^३

बदरी नारायण ‘प्रेमघन’ के ‘प्रयाग रामागमन’ में पुरुष पात्र हिन्दी प्रयुक्त करते हैं तो स्त्री पात्रों द्वारा वृजभाषा का प्रयोग कराया गया है।

‘निष्ठाद -- है रानी ! ई सुनरि तोहारि ले के मैं का करिहीं ? मारे यह काके पहिरि ? और तुम्हें तो कुछ मोही को देय को चाही, मुना का करी ? महाराज मनवै न करिहैं।’^४

इस प्रकार नाटककारों ने वृजभाषा का सहज रूप ही प्रयुक्त किया है।

अतएव यह कहना उपयुक्त होगा कि भारतेन्दुयुगिन साहित्यकारों ने वृजभाषा का वही रूप प्रयुक्त किया है जो बोलचाल तथा व्यवहार का है।

१- डा० कुंभनन्दप्रकाश सिंह -- मध्यकालीन हिन्दी नाट्य परंपरा और भारतेन्दु, पृ० १३१।

२- राधाकृष्ण दास -- दुःखिनी बाला, पृ० ७।

३- माधव सुक्ल -- महाभारत पूर्वादे, पृ० २५।

४- बदरीनारायण ‘प्रेमघन’ -- प्रयाग रामागमन, पृ० १३।

हिन्दी के प्रथम अभिनीत नाटक 'जानकी मंगल' की भाषा के संदर्भ में 'इंडियन फ़िल्म एंड मंचली रजिस्टर' में विचारणा व्यक्त की गई थी कि--
 "तत्कालीन गय की दृष्टि से इस नाटक का अधिक महत्व माना जा सकता है। सामान्यतः इस नाटक में खड़ी बोली का गय बनारस की जनता की बोली के निकट है। स्थानीय भाषा की प्रकृति शब्दों के प्रयोग और वाक्य विन्यास के द्वारा स्वतः प्रकट है।"^१

"रामचन्द्र -- [हाथ जोड़ के] हे सुनिराय ! विचार के बीजों ! आपका अधि बहुत बड़ा है और हमारी बुद्धि बहुत थोड़ी है। हमारे होते ही तो यह पुराना धुषण टूट गया। हम धर्मद्विष बात का करेंगे। मला सुनिए तो जो हम ब्राह्मण जान के आपका निरादर करते हैं तो फिर संसार में ऐसा कौन सुभट होगा जिसने डर कर सिर झुकावेंगे। और सुनिए कृष्ण राय देवता ही या दैत्य, राजा ही या प्रजा, चाहे हमारे बराबर ही या हमसे बलवान परंतु जो कहीं लड़ाई में हमको ललकारेगा हम अवश्य उसका सामना करेंगे वह काल क्यों न हो ?"^२

'प्रेमसुंदर नाटक' नाटक में एक पात्र सहज भाषा द्वारा वातावरण निर्माण करने में सफल रहा है।

"वल्लभ -- कोई जोगी जती, कोई गृहस्थ है, कोई गणिका के उपस्त में ही लपका है मस्त है। किसी के यहां पुत्रोत्सव की बधाई है, किसी के यहां परम प्यारे दुलारे मनुष्यों के मर जाने से रोना गाई है, कोई परोपकार की अपना उपकार मानते हैं, कोई दीन मनुष्यों की दुःख देना हसी में भलाई मानते हैं। कोई महात्मा जिसकी जगत भर में बड़ाई है, कोई दुरात्मा जिसकी जहां सुनी वहा बुराई है, कोई कहते हैं कि हम सब मनुष्यों की ईश्वर ने बनाया है, कोई कहते हैं कि हम ईश्वर कोई बीज नहीं। जगत में यों ही होता चला आया है"^३

१- शरद नागर -- धर्मपुरा, ४ अप्रैल, १९६६।

२- जानकीमंगल नाटक [सं० धीरेन्द्रनाथ सिंह], पृ० ६४।

३- खिलावन लाल -- प्रेमसुंदर नाटक, पृ० १०।

‘माधवानल कामकंदला’ में भी वातावरण निर्माण का यही रूप प्रस्तुत है --

माधव -- वहाँ का रंग-रंग देख मैं डंग हो गया था, एक सुन्दर-सुन्दर सुन्दरियां जो अटारों पर लटा लोहे फाँक रही थीं, उनके रूप की कृपा देख चित्त में आनन्द की घटा उमड़ती चली जाती थी, एक मन मोर किंगार-किंगार नाच रहा था और उनके हसन-दशन की चमक चपला सी चमक-चमक रह जाती थी ।^१

भारतेन्दुश्रीन नाटककारों द्वारा प्रयुक्त पात्रानुसूल भाषा के दो रूप मिलते हैं । उनके पात्र प्रान्तीय या जातीय भाषा प्रयुक्त करते हैं । बंगाली पात्र बंगला, अंग्रेज़ पात्र अंग्रेज़ी, महाराष्ट्री पात्र महाराष्ट्रियन तथा मुसलमान पात्र उर्दू-फारसी का प्रयोग करते हैं । दूसरा रूप यह है कि नाटककारों ने पात्र से उसकी मातृ या प्रान्तीय भाषा नहीं बुलवाई बल्कि हिन्दी में कुछ ऐसे शब्द मिला दिये हैं जिससे पात्र का कथन उनके मूल प्रान्त या जाति के अनुरूप प्रस्तुत हो जाए । ये दोनों प्रयोग स्वाभाविकता लाने के लिए ही भाषा में रखे गए हैं । किन्तु पहिले प्रयोग से दूसरा प्रयोग उत्तम है । यह तो ठीक ही है कि यदि पात्र की भाषा में थोड़ा-सा परिवर्तन करा दिया जाए तो उससे कथन अधिक स्वाभाविक हो जाता है जैसे बंगाली से बंगला न बुलवाकर कुछ बंगला उच्चारण या शब्द सहित हिन्दी बुलवाई जाए और वह कहे -- समापति साहब जी बोला तो बहुत ठीक है । इसका पेशतर कि भारत दुर्दैव हम लोगों के शिर पर आ पड़े उसका परिहार का शौका अत्यन्त आवश्यक है किन्तु प्रश्न यह है कि जे हम लोग उसका दमन करने शक्ती है कि हमारा बीज्याक्ति के बाहर का बात है ?^२ अतएव दुर्दैवक बहकक अंक०२१०१ इसी प्रकार अंग्रेज़ से अंग्रेज़ी न बुलवाकर

१- शालिग्राम -- माधवानल कामकंदला, पृ० ११ ।

२- भारतदुर्दशा नाटक, अंक ५ ।

औड़ी उच्चारण एवं दो चार प्रचलित सरल औड़ी शब्दों के साथ हिन्दी की तुलनाई जाय और वह यह कहे -- 'हम तुम से बहुत खुश हैं, तुम्हारा हक कलबट्टा मारा जाता है तुम्हारी हालत हम पर जाहिर है। [नागरि विज्ञाप] यदि वह नाराज हुआ तो कहेगा -- 'तुम नेटिव लोग बकट का कब कडर नहीं जानटा।' [देवाचार चरित्र]।^१

भारतेन्दुश्री ने अधिकांश नाटककारों ने दूसरी शैली को ही प्रमुक्तता प्रदान की है, जिससे भाषा लोकोन्मुख हो सकी है, जिसका लोकमानस पर भाव-उत्तेजन की दृष्टि से प्रभाव पड़ना स्वाभाविक हो गया था।

'देवाचार चरित्र नाटक' का एक उदाहरण और प्रस्तुत है -- 'साहेब मजिस्ट्रेट मि० फियराले -- तुम्हारा बाल सब सन के माफिक पक गया। बाबा आदम के बकट का आदमी। लिजाब से डाढ़ी मूँड़ रंग कर सलह बरस का पट्टा बनने माँगता है। कैल कल हम तुम्हो बरा डाक्टर साहेब से के मुलाझा के वास्ते बैजा।'^२

'देवाचार चरित्र' में प्रयुक्त ग्रामीण बोली का रूप प्रस्तुत है --

'धौ०-- साहेब, हमार कानून ना पढ़ल बाय और न हमनी का फरसी-अरबी पढ़ले बाटी। गंवार आदमी हाकिम से बोले बतिजावे का जानी। लेकिन हाँ, अदालत लड़त-लड़त तनी सरकार लोगन के सामने बोले में खिजाव सुल गइल बाय। से सुनी -- 'हित अनहित पशु पंखिउ जाना' और हमनी का तो मानुष का बोला है। हमार हौकड़वा परी रात के राजा शिवप्रसाद का बनावत इतिहास तिमिर नासिक पढ़ल रहला कि सरकार औज़ बहादुर के राज में प्रति-दिन तरक्की होत जाले और जे कुछ प्रजा के हित क बात सरकार के कान तक पहुँचे से ओमे फट रव-बदल होय जाला। सेहँ कुछ बात का भरती और बनावट

१- डा० गोपीनाथ तिवारी -- भारतेन्दुश्री नाटक साहित्य, पृ० ३३१।

२- पं० रविदत्त शुक्ल -- देवाचार चरित्र, पृ० ७।

हाँ कि साँची ऐसन हीला ? सुनीला कि पछिले कुल दफ्तर फारसी जवान में रहल जब ओमे कठिनता मालूम पड़ल तब उई में कर दी हल गइल, वैसे जबहुँ जो सरकार पक्षपात छोड़ के उई के खराबी और नागरी के गुन एक साथ न्याय के तराजू में तौले और नागरी में गुन विशेष पावे तो नागरी में सरकारी दफ्तर कइला में का हानि होई ?^१

‘मृमजालक नाटक’ में नारी-पात्र के संवाद से सख्त भाषा का रूप प्रस्तुत है --

‘सुतारा -- तुफ़की मेरा कइला बुरा लगा । ~~यहूँ~~ माजूम देता हं, हे बहिन मैंने तो कुछ नहीं कहा परंतु तेरा चित्त आजकल स्थिर नहीं है । तू मेरे सीधे कहने की भी ठट्ठेबाजी में ले जाती है, इससे मैं लाचार हूँ और मेरे ऊपर इस दुख पड़ने का कुछ ढोच मत कर क्योंकि ऐसे ही दुःखों की ढोचकर मैंने अपने जी में यह निश्चित कर लिया है कि मैं व्याह ही न करूँगी ।’^२

‘शिक्षा दान’ की नारी-पात्र सख्त-स्वभाविक भाषा में मर्म की अभिव्यंजना करती है --

‘नाउन -- दीदी ! हम जो तुम्हारे सुख-दुख की साथिन न भई तो वह प्रेम कैसा ? तुम चाहे न कहो, पर हम सब तुम्हारे मन की बात जान गई । वह बंसी कैसी जिसमें मकरी न फाँसी, जून में पड़े पर जो सुकारे से न जावे वह परोसी कैसा, बात को कहते ही जो उसकी मरम को न पहुँची वह कैसी नारी ?’^३

इसी प्रकार ‘विद्या विनोद नाटक’ में नारी-पात्र के संवाद में भाषा के सख्त स्वरूप के कारण प्रभाव आ गया है ।

१- पं० रविदत्त शुक्ल -- देवाक्षर चरित्र, पृ० १३ ।

२- सुंशी रत्न सिंह -- मृमजालक नाटक, पृ० ११ ।

३- पं० बालकृष्ण भट्ट -- शिक्षा दान, पृ० १४ ।

“विद्या -- अजी बैनदास ! कहेगे क्या, बाप और आपने महाराज डरे आप और सिंहुडि आप कि लटके हैं जब चाँगे हाथ लवाकर तोड़ लेंगे हमको क्या औरों की तरह ठहरसुझती काड़ना है कि हँ, हँ, हँ, हँ करके बबुजा को रिकार रहे, नहीं तो जहाँ टेढ़े हुए कि हमारी दो हाथ लम्बी पूँछ छपट लेंगे । हमको तो यही समझो कि साँकी बात सदा ही कहें । सबके मन से उतरे रहें ।”

‘वमयंती स्वयंवर’ नाटक के संवाद में लोकमान्य का रूप स्पष्ट है --

“माधुरायण -- महाराज ! आज आपकी यह क्या हो गया है कि अपने धैर्य गुण में बट्टा लगाय विदिपत ने हो रहे हो कि जो कुछ तुमने कह रखा उसकी भी कुछ सुध-बुध नहीं है । अपने दिल-बहलाव के लिए वन विहार की आज्ञा दी थी, सो क्या भूल गए -- यह झिझकान का मार्ग है छपर बल्लि ।

+

+

+

राजा -- मित्र इसका सोने-सा पंख देकर मेरा मन इस पक्षि के पंखड़ों की अत्यंत उत्कंठित हो रहा है । मेरी दाहिनी आँख और भुजा भी मरुन्न फरक रही है -- इसे मालूम होता है मेरे काय की सिद्धि जल्द हुआ चाँकी है ।”^१

नाटकों के माध्यम से लोकमान्य का परिष्कार कार्य भारत-मुक्ति में नाट्यकारों का प्रमुख लक्ष्य था । इस दृष्टि से ‘सत्यवती’ और ‘सज्जाद नम्बुल’ की भूमिका में नाट्यकारों के व्यक्त विचार दृष्टव्य हैं --

“कुसंगति क्या-क्या बिगाड़ कर सकती और अंत में क्या क्या फल होता है और यह फूँटे सुशामवी लोग जो रात-दिन इनको घेरे रहते हैं, क्या-क्या घोरतावाजी करके कैसे-कैसे फंद में डालते हैं और इसका क्या परिणाम होता है ?”^२

१- पं० बालकृष्ण मट्ट -- वमयंती स्वयंवर नाटक, पृ० १३-१७ ।

२- ज्ञानलाल कासलीवाल -- सत्यवती, पृ० १ ।

“क्योंकि जरा मुल्क और अपनी हालत पर अफ गौर करो । यह वह वक्त नहीं है कि इश्क से दीवाने बने बन-बन की लाक जानते फिरें । कैसी तुम्हारे मुल्क की क्या हालत थी और क्या हो गई ? तुम्हारा मुल्क किसके हाथ में है ? वह कैसे है और तुम कैसे हो ? इंग्लैंड और फ्रांस की क्या हालत है और तुम्हारे हिन्दुस्तान की कौन गत है ?”^१ इस प्रकार नाटककारों ने “नाटक में विभिन्न पात्रों द्वारा प्रयुक्त अनेक प्रकार की नीतियों की शक्ति से पात्रों के व्यक्तित्व को सजीव कर दिया है तथा पूरे नाटक को तबू य गथे के गहरे रंगों में रंग दिया है ।”^२

अतएव, यह कहना उपयुक्त ही होगा कि भारतेन्दुशुनि नाटककारों का यही ध्यान रहा है कि भाषा को पात्र के अनुसार बनाकर उसमें स्वाभाविकता का^३ समावेश हो और वह लोकोन्मुख हो सके । इस सम्बन्ध में डा० रामविलास शर्मा ने विचार व्यक्त किया है कि —“भाषा के लोग ज्यादातर नागरी ही काम में लाते थे । इस लिपि के जरिए भारतेन्दु जनता के उस तमाम हिस्से को बटोर सके जो उर्दू न जानता था या जिसकी जातीय आवश्यकताएं उर्दू से परे न होती थीं ।”^४ “जनता के इस तमाम हिस्से” की भाषा के समर्थन तथा उसकी साहित्यिक-गरिमा के संबंध में श्री र्णस्थ नाटककार पं० बालकृष्ण भट्ट ने लिखा है कि — “भाषा का पूरा जोर देने के लिए उन लोगों पर ध्यान दीजिए जो एक ढंग के ‘शून्य मीति’ हैं अर्थात् जिन पर किसी तरह की शिक्षा मात्र ने अपना रंग नहीं जमाया है और जो घर में तथा घर के बाहर शोटे बड़े सबके एक-दूसरे की अपनी सहज भाषा बोलते हैं । सब पुष्टि तो ऐसी भाषा से बढ़कर संसार में कोई दूसरी मीठी भाषा नहीं हो सकती । इस कारण अगर ठेठ हिन्दी शब्दों की आपको खोज है तो गतकाल के या वर्तमान समय के नयी-बुखी प्रायः एक ही ठर्रें

१- केशवराम भट्ट -- सज्जाद सम्बुल -- पृष्ठ १ ।

२- डा० कुं० चंद्रप्रकाश सिंह -- मध्यकालीन हिंदी नाट्य परंपरा और भारतेन्दु,

३- डा० गोपीनाथ तिवारी -- भारतेन्दुकालीन नाटक साहित्य, पृ० १३१ ।

४- डा० रामविलास शर्मा -- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पृ० ७८-७९ ।

पर उसी बातें कवियों की वाणी से लेकर सहस्रों धारा से बहती हुई उबीव
ग्रामीण भाषा की देखिए । यदि आप यह तर्क कि शिक्षा के आवेग से ही
जो अल्प या अश्लील शब्द अपनी जीलनाल में बहुत मरते हैं जो साथ ही उनके
यह भी सोचना चाहिए किने हजारों लाखों शब्द ऐसे भी मिलते हैं जिनके पुष्ट
भाव या अर्थ-गौरव की देखकर चकित रह जाना पड़ता है । सब पुष्टि
तो इस पीढ़ी से समय में हिन्दी की कुछ कम विजय नहीं हुई । वे ही तब शब्द
जो किसी समय गंवारा की भाषा समझे जाते थे जो अब कालवक्र के फेर-फार
से अधिकार-शाली पड़े-लिखे लोगों के बर्तव में फिर आने लगे बरन् ठेठ से ठेठ
हिन्दी शब्दों की सोच लोगों की है और वह ठेठ हिन्दी हमारे ग्रामीण जनो
के ही कण्ठ का आभरण है । प्रयोजन यह है कि ठेठ हिन्दी के शब्द
उन लोगों के काम में जो लाए जाते हैं उनके बदले कि गंवारपन की वृत्तों आवे
एक विचित्र लक्ष्महापन और पुष्टता उनमें मरी हुई पाई जाती है और आप
निश्चय जानिए बहुत जल्द ऐसे शब्दों की पूरी विजय होगी । ^१ मर्द की का
यह कथन भारतेन्दुयुगीन नाट्यकारों की भाषा-प्रयोग संबंधी अवधारणा का
सारांश है ।

उपर्युक्त विवेक से यह स्पष्ट है कि भारतेन्दुयुगीन नाट्यकारों ने सही नीति
के प्रचलित रूप के अतिरिक्त अवधी, ब्रज और भोजपुरी भाषा के स्वल्प की ग्रहण
किया है । चित्र-विशेष में अभिनय के लिए नाट्यलेखन की विमित दृष्टि उनकी
नहीं रही । सम्पूर्ण लोकमानस के परिष्कार करने की दृष्टि से उन्होंने प्रभावी
कथानकों का चयन किया है और भाषा की भी व्यापक लोकमानस ने संबंधित
किया ।

इस प्रकार भारतेन्दुयुगीन नाट्यकारों की भाषा-प्रयोग की दृष्टि व्यापक
रही है । उन्होंने कथन की प्रेषणीय बनाने के लिए लोकवेदना से युक्त शब्दों
का प्रचुर प्रयोग किया है, जिससे भाषा में सरसता एवं प्रवाहमयता का सङ्ग हो
समावेश हो गया है ।

-----0-----

अध्याय - ५

भारत-वृद्धि नाटकों में ली-अप

भारतेन्दुयुगिन नाटकों में लोक रंगमंच

भारतेन्दुयुगिन रंगमंच की भूमिका

भारतेन्दु-युग के पूर्व हिन्दी रंगमंच जिस रूप में विकसित हुआ था तथा नाटककारों ने लोक-परम्परा से अनुप्राणित किन-किन शैलियों को वात्सल्य से किया ? भारतेन्दुयुगिन नाटकों के रंगमंचीय विवेक में इस तथ्य का स्पष्टीकरण आवश्यक प्रतीत होता है। भारतीय रंगमंच परम्परा से की साहित्यिक एवं लोकतात्त्विक उपकरणों को युगपद रूप में लेकर बना है। देववाणी संस्कृत का साहित्यिक रंगमंच लोक-परम्परा को उपेक्षित कर एक विशिष्ट वर्ग के अनुरंजन के माध्यम के रूप में विकसित हुआ था, किन्तु मध्यकाल में लोक परम्परा ने समन्वित रंगमंच जनपदों में विस्तीर्ण होकर वहाँ की प्रकृति के अनुकूल विकासोन्मुख रहा। अतएव भारतेन्दुयुगिन नाटकों में लोक रंगमंच के उपकरणों के विरलेषण के पूर्व संस्कृत रंगमंच से लेकर भारतेन्दु द्वारा प्रचलित रंगमंच का विकासक्रम निरूपित करना उपेक्षित है।

संस्कृत के वाचार्थों ने नाटक उस साहित्य विधा को माना है, जिसमें कौमल तथा ललित पद और कथे हों, गूढ़ शब्दार्थ न हों, जो चिन्तनों को सुख देने के योग्य हों, जिसे बुद्धिमान लोग खेत सर्वे, जिसमें ओक रसों के प्रदर्शन का पर्याप्त अवकाश हो।^१ अतएव, कोई भी रचना कथा वार उपादों के समावेश के

१- हितोपदेशजननं नाट्यमेतद्भविष्यति ।

एतद् एतेषु भावेषु सर्वकर्मक्रियासु च ॥१०॥

सर्वोपदेशजननं नाट्यमेतद्भविष्यति ।

दुःखादीनां अमातीनां शोकादीनां तपिरिवनाम् ॥ ११ ॥

--वाचार्थं भरतमुनि -- ^{भरत} स्मृतनाट्यशास्त्र, पृ० ६ ।

उपरान्त भी नाटक कहलाने योग्य तभी होगी, जबकि वह अभिनेय ही। अभिनय के लिए नट या अभिनेता द्वारा जिस माध्यम की संयोजित किया जाता है, उनके स्वरूप और सूक्ष्म उपकरणों का नाम सामान्यतः रंगमंच है। रंगमंच पर सामाजिकों के समक्ष प्रस्तुत अभिनय रस-निष्पत्ति के अभाव में पूर्णता नहीं प्राप्त कर सकता है। इस व्याख्या के अनुसार रंगमंच-कला का प्रमुख गृह्य अभिनेता की मानना चाहिए किन्तु नाट्य-रचना जिस साहित्य-विधा के अन्तर्गत गृहन का रूप निर्मित करती है, उसके मूल में नाटककार की सच्चा निश्चित रूप से स्वीकारि जाती है। अतः, नाटककार एवं उसके नाटक की अभिनेयता दोनों का सामंजस्य ही रंगमंच के स्वरूप निर्धारण का आधार है।

प्रियम संवत् के प्रारम्भ के आसपास भारत मुनि द्वारा रचित नाट्यशास्त्र प्रमाणित करता है कि उस समय भारतीय नाट्य कला विकसित और महत्वपूर्ण हो गई थी, तभी उसके स्वरूप विवेचन के लिए शास्त्रीय रंगमंच ग्रन्थ की अभि-वार्यता हो गयी थी। नाट्यशास्त्र में रंगमंच, स्थापत्य, रंगकला, रंग-तन्त्रीय, रंग प्रयोग तथा विविध नाटकों का विशुद्ध विवेचन यह सूचित करता है कि प्राचीन नाट्यकला अनेक आयामों में विस्तीर्ण हो रही थी। 'नाट्यशास्त्र' में 'लोकृत्तानुकरणं नाट्यमेतन्मया कृतम्'^१ कहकर नाट्य की लोकृत्त के आचरण का अनुकरण करने वाला बताया गया है। लोकृत्त अर्थात् लोकृत्त के अंतर्गत न केवल जाति-विशेष के लोकृत्त-संस्कार एवं रीति-रिवाज, बल्कि समाज में प्रचलित विश्वास एवं परम्पराएं, धर्माचरण एवं कर्मकाण्ड, मनोभाव एवं अवधारणाएं, तंत्र-मंत्र, जादू-टोना, इतिहास-पुराण सभी कुछ आ जाता है। अतः वेदों के पूर्व तथा वैदिक काल में लोकृत्त का कोई रूप निश्चित रूप से रहा

१- लोकृत्तानुकरणं नाट्यमेतन्मया कृतम् ।

उत्तमाधममध्यानां नराणां कर्मजयम् ॥

--आचार्य भारत मुनि -- भारत नाट्यशास्त्र, १। १०६, पृ० ६ ।

होगा, जिसे प्राचीन वात्स्यायनों ने प्रमाणित किया जा सकता है।^१ आदिकवि वात्सीकि ने जयोध्या की गणिकाओं तथा नाटक मण्डलियों ने युक्त कहा है तथा राम के अभिषेक के समय नटों, नर्तकों और गायकों द्वारा जन-वनुरंजन का उल्लेख किया है। वज्रनाम-वध और प्रद्युम्न-विवाह प्रकरण^२ में नाट्य-प्रयोग सम्बन्धी यह विवरण उपलब्ध है। श्रीकृष्ण ने अपनी माया से नट नामक नट उत्पन्न किया। उसके साथ भीमवंश के यादवों को नट बनाकर वज्रनाम की वज्रपुर भेजा। वज्रपुर में प्रद्युम्न नायक बने, साम्ब विदूषक बने, अन्य यादव नटी बन कर 'रामायण' नाटक खेलने लगे। नटों ने स्व अक्षर पर ऐसा सरस अभिनय किया कि दानव समाज विमुग्ध हो गया। नाट्य-प्रस्तुति की सराहना सुनकर वज्रनाम ने उन्हें अपने यहां नाट्य-प्रस्तुति के लिए आमंत्रित किया, जहां उन्होंने 'काँवर रम्भाभितार' नाटक की अवतारणा की।

संस्कृत-व्याकरण के आचार्य महर्षि पाणिनी [ईसा पूर्व ६०० वर्ष] ने शिलाती और कृशाश्व के नट-सूत्रों का नामोल्लेख किया है किन्तु उन सूत्रों का विवरण उपलब्ध नहीं है। तब भी इस तथ्य से नाट्य-अभिनय का प्रमाण तो मिलता ही है। वात्स्यायन के कामसूत्र में एक प्रसंग है -- 'पल्लवाड़े या महीने के निश्चित या प्रसिद्ध वर्ष के दिन से सरस्वती के मंदिर में राजा की ओर से नियुक्त नटों द्वारा नाटक या उत्सव हुआ करें।'^३ इसी ग्रन्थ में बाहर से आने वाले नटों के संदर्भ में व्यवस्था का चित्रण किया गया है। इसके अनुसार पक्षी नट नागरों के समक्ष अपना नाटक प्रदर्शित करें और जो कुछ ठहराव हुआ हो, उसे दूसरे दिन प्राप्त कर लें। यदि पुनः लोग देखना चाहें तो व्यवस्था के साथ उनका खेल देखें अन्यथा उन्हें विदा कर दें। कीटिल्य के अर्थशास्त्र में दूसरे देशों से आने वाली नट मण्डली के लिए प्रत्येक खेल दिखाने का पांच पण कर

१- सीताराम बहुर्वदी -- भारतीय तथा पाश्चात्य रंगमंच, पृ० ७।

२- महाभारत -- हरिवंश पर्व, ६१ से ६७ अध्याय तक।

३- कामसूत्र -- नागर कृत प्रकरण, बृठा निबन्धन।

राजा की दैने का उल्लेख किया गया है। उपर्युक्त भी स्पष्ट किया गया है कि -- "अभिनय कला को सिखाने की व्यवस्था राजा को करनी चाहिये तथा उसका व्यय राजमण्डल की बाय से व्यवस्थित करना चाहिये।" अतएव, देश की तीसरी शताब्दी पूर्व नाट्यविधा को भारतवर्ष में राज्याध्य प्राप्त था।

भारतेन्दुयुगीन नाटकों पर संस्कृत नाट्य-परम्परा के जनोपयोगी तत्वों का प्रभाव पड़ा है। 'जानकी माल' का अभिनय सम्बन्धी उल्लेख इस प्रकार है -- "संस्कृत नाटकों के अनुरूप सर्वप्रथम सूत्रधार ने मंच पर उपस्थित होकर संस्कृत में नांदी पाठ किया। सूत्रधार के भाषण के समाप्ति पर अभिनेत्री ने प्रवेश किया और दर्शकों के मनोरंजन की विधि पर संक्षिप्त बातें कीं। संस्कृत नाटकों का आरम्भ स्त्री रूप में हुआ करता था। संस्कृत नाटकों में तदा ही सूत्रधार और किसी अन्य व्यक्ति में होने वाली एक संक्षिप्त बातों द्वारा नाटक की कथावस्तु का एक परिचय दर्शकों को करा दिया जाता था। प्रस्तुत नाटक में जिस समय कथोपकथन चल रहे थे, पदों के पीछे कोलाहल की ध्वनि हुई। सूत्रधार ने सूचित किया कि श्री राम का वन में जागमग हो रहा है, जिसके कारण कोलाहल हो रहा है। इतना कहकर सूत्रधार और अभिनेत्री उन्हें देखने के लिए दाढ़ते हुए पदों के पीछे चले गए। इसके बाद ही नाटक का प्रथम दृश्य प्रारम्भ हो गया।" ^१ अतएव यह कहना सर्वथा उपयुक्त होगा कि 'भारतेन्दु तथा उनका मण्डल संस्कृत की नाट्य प्रणाली से प्रभावित रहा है। संस्कृत नाटकों के काव्यात्मक वातावरण, रूमानिवत तथा टैलीक की शाय नाटकों पर स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है।" ^२

संस्कृत के साथ ही पालि, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं में भी भारतीय नाट्य मंच की परंपरा समुपस्थित है। राममरणिय सुत जन-ग्रंथ में एक का

१- डा० धीरेन्द्र नाथ सिंह -- जानकी माल नाटक, पृ० ५३।

२- डा० बन्धन सिंह -- हिन्दी नाटक, पृ० १।

उपलब्ध है -- जब भगवान् महावीर आत्महत्या नगरी के अम्बाला वन में अशोक वृक्ष के नीचे बड़ी-सी काली शिला पर जाकर बैठे, उन समय गुर्यापदेव ने वहाँ जाकर, गा-बजा और नाकर पल्ले बंदना की और फिर बसि प्रकार के अभिनयात्मक नाटक से, जिनमें नागर की तरंग, कंदोदय, द्यूदोदय, हामी की गति आदि के भी अभिनय थे।^१ जन-समाज की भाँति ही बीड़ों में भी नाटक के प्रति सम्मान था। बुद्ध देव के समस्त 'सौगन्धिका श्रृंग' नामक रूपक अभिनय उनके शिष्य मौदगलायक और उपतिष्य ने किया था, ऐसे जातक कथाओं में उल्लिखित है। ललित विस्तार, अवदान जातक, सद्धर्म पुंडरीक, आदि ग्रंथों में भी नाटकों के अभिनयात्मक विवरण उपलब्ध हैं।

इसके उपरान्त ही महाकवि मास के नाटकों से नाट्य-रचना एवं प्रस्तुति की परम्परा प्रारंभ होती है। महर्षि पतंजलि ने अक्ष-वध और बलि-वध नाटकों का उल्लेख किया है। नाट्यमंचों के निर्माण के संबंध में भारतीय ग्रंथों में उल्लेख है तथा यह भी स्पष्ट किया गया है कि नगर के मध्य नाट्यशालाओं का निर्माण नहीं होना चाहिए क्योंकि इससे कार्य करने वालों की बाधा पड़ती है। इसी लिए प्राचीन काल में अभिनय-कला का चरम विकास मिलने के बाद भी नाट्यशालाओं के उल्लेख कम मिलते हैं। मध्यप्रदेश के सुरगुजा जिले में समुद्र से लगभग दो हजार फुट ऊँची रामगढ़ पहाड़ी में स्थित दो नाट्यशालाओं का सर्वत्र उल्लेख मिलता है। वे हैं -- सीतारामा और जगन्निभारा में निर्मित नृत्य-शालाएँ। प्राचीन भारतीय प्रेक्षागृह का एकमात्र यही उदाहरण प्राप्त है। संबंध में पं० सीताराम चतुर्वेदी ने लिखा है कि -- "ये नृत्यशालाएँ वास्तव में नाट्यशालाएँ न होकर विलासियों के शिलावेश्म हैं। इस प्रकार के शिलावेश्म केवल नृत्यकला और विलास के केन्द्र थे। ये शिलावेश्म नाट्यगृह नहीं थे क्योंकि पक्की नाट्यशाला बनाने की हमारे यहाँ पद्धति ही नहीं थी। राज्य की ओर से पक्की नाट्यशालाएँ बनाने पर प्रतिबन्ध था।"^२

१- सीताराम चतुर्वेदी -- भारतीय तथा पश्चात्त्य संगम, पृ० १०।

२- वही, पृ० १०।

संस्कृत नाट्य-साहित्य और उसके प्रयोगों का अधिकाधिक विकास का लि-
वाङ्मय में हुआ था। तदीपरान्त रंगशालाओं के निर्माण का उत्प्रेक्ष्य भी
मिलता है। ये रंगशालाएं दो प्रकार की थीं। एक स्थायी जो राजप्रानाद
के भीतर बनाई जाती थी और दूसरी अस्थायी जो सामाजिकों के सुविधा के
लिए एक स्थान से दूसरे स्थान स्थानान्तरित हो जाती थी। प्राचीन काल में
नाट्यगृह या प्रेक्षागृह के वर्णन के अनुसार सभी बड़े रंगशाला एक ही ही भाग
लम्बी थी। मध्यम बांसठ हाथ थी। छोटी त्रिजुजाकार रंगशाला की
प्रत्येक भुजा बत्तीस हाथ होती थी। रंगशाला के दो भाग होते थे। एक भाग
अभिनय करने वालों तथा दूसरा प्रेक्षकों के लिए निर्धारित था।

संस्कृत नाट्यरचना एवं अभिनय का युग ईसा की दसवीं शती तक चला।
इसके उपरान्त वह क्रमशः पतनोन्मुख होने लगा और ग्यारहवीं शती के अंत में
व्यापक इस्लामी आक्रमण के साथ ही समाप्तप्राय हो चला।

रंगमंच की दृष्टि से मध्ययुग अत्यधिक ज्ञान्तिदशी युग था। यदि एक
और इस्लामी विजय ने भारतीय रंग परम्परा को विनष्ट किया तो दूसरी ओर
विभिन्न लोकभाषाओं के उद्गम से संस्कृत का प्रचलन अवलुब्ध होता गया और
संस्कृत नाटकों का अभिनय निष्फल होने लगा। मुस्लिम राज्याध्यय ने विमुख
होने के अतिरिक्त भी छोटे-छोटे हिन्दू राज्यों में पुरानी रंग-परंपरा का
अस्तित्व सुरक्षित रहा। देशी गीतों एवं तंवादों का प्रचलन युग की मांग
बन गई थी। कतिपय विद्वानों ने इस सन्दर्भ में कहा है कि यदि इस देश में
मुसलमानों का आक्रमण न भी हुआ होता तो भी संस्कृत नाटकों का उद्यान
पुनः पल्लवित न होता, क्योंकि प्रकृति के नियमानुसार भाषा के प्रचार और
प्रसार में परिवर्तन होना अनिवार्य है। संस्कृत वाक्प्राप्त की भाषा न होने से
जनता के हृदय से क्रमशः दूर होती चली जा रही थी। राजशेखर के समय तक
इसके एकाधिपत्य राज्य का विभाजन हो चुका था। प्राकृत, अपभ्रंश के नाटककार
राजदरबारों में सम्मान के अधिकारी बने जा रहे थे।^१ अपभ्रंश में लोकनाट्य

१- डा० दशरथ बोस -- हिन्दी नाटक उद्भव और विकास, पृ० ६२।

के विभिन्न रूपों की चर्चा यदा-कदा मिल जाती है। उत्तराखण्ड में यात्राओं और रासनाटकों की भी परम्परा मिलती है। अपभ्रंश काल के बाद जब आधुनिक भाषाओं और बोलियों का उद्भव और विभाग हुआ तो उनके साथ नाट्य साहित्य का भी विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार से विभाग होता रहा।^१

सम्भवतः सर्वप्रथम दसवीं शताब्दी में नेपाल के राजा कुलशेखर वर्मन ने संस्कृत नाटकों के साथ स्थानीय भाषा के मिश्रण की प्रवृत्ति प्रयुक्त की। इस नई परंपरा के प्रयोग का नाम 'कूटियाट्टम' रखा गया, जिसका अर्थ ही है मिला-जुला अभिनय। इसका विद्वान्मय मत्स्यात्म भाषा ही जीतता है और मंच पर सदा उपस्थित रहकर घटनाओं की व्याख्या करता है। इस प्रकार दर्शकाणा सुविधापूर्वक वर्ण ग्रहण कर लेते हैं। त्रिपुर के कुलम्पलम् संग्रह नाट्य मंडप में यह अभिनय आज भी होता है।

मिथिला में इस प्रकार के देशी भाषा मिश्रण का कार्य १४ वीं शती के राजा हरिसिंह देव के संरक्षण में सम्पन्न हुआ। मैथिली गीतों ने युक्त जब तक प्राप्य पड़ता संस्कृत नाटक उभापति उपाध्याय का 'पारिजात हरण' है। महापति विद्यापति की कृति 'गोरदा विजय' नाटक में ऐसा ही प्रयोग है। उसमें पचीस मैथिल गीतों की समाविष्ट किया गया है। पन्द्रहवीं शताब्दी में उड़ीसा के शासक महाराज कपिलेन्द्र देव ने 'परशुराम विजय नाटक' लिखा। इस नाटक में कविता के रूप में भावानुभूति का चित्रण किया गया है, वह मैथिल-शैली विद्यापति की परम्परा का ही प्रतिफलन है। इसी प्रकार पंद्रहवीं शताब्दी के मध्य आसाम में कविशंकर देव ने रासयात्रा (ब्रज की रास शैली पर), कालियदमन, रास विजय, रुक्मिणी-हरण, जेलिगीपान, पत्नी प्रसाद, पारिजात हरण, नाटकों की रचना की और इनकी ओर मंच-

प्रस्तुति की हुई। अस्तु, संस्कृत रंग परंपरा के विघटन के साथ ही अनेक प्रकार के नाट्य लोकनाटकों का विकास हुआ। यही लोक नाटकों की परम्परा गीतकी, तनाशा, भंवाई आदि रूपों में पल्लवित हुई। किन्तु मध्यकालीन रंगमंच का सर्वात्किष्ट रूप भक्ति आन्दोलन से सम्बद्ध है। हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्र में भी अनेक प्रभावी रंग-विधाओं का विकास हुआ, जिनसे आधुनिक काल तक अपार जनसमुह के जीवन की परितृप्ति मिल रही है। ये दो प्रमुख धाराएं रामलीला और कृष्णलीला हैं। कृष्णभक्ति के आश्रय में रामलीला का विकास महाप्रभु बल्लभाचार्य जी की प्रेरणास्वरूप श्री हरिवंश जी द्वारा मथुरा में हुआ और राम के अनन्य भक्त तुलसीदास ने मैथिलीवासी द्वारा रामलीला का प्रचलन काशी में किया। इसी के साथ अकियानट, कीर्तनिया, आदि अन्य अनेक रंग-परम्पराओं का जन्म भी भक्ति आन्दोलन के प्रभावस्वरूप हुआ।^१

साहित्यिक दृष्टि से मध्यकाल में संस्कृत के कुछ नाटकों का पथवद्ध अन्वय किया गया है। जैसे अभिज्ञान शाकुन्तल [नेवाज और धौल मिश्र], मातंगी-माधव [सोमनाथ], प्रबीष चन्द्रोदय [मल्ह कवि, जसवंत सिंह, आशुदास, जन अनन्य, सुरति मिश्र आदि], हनुमन्नाटक [हृदयराम] आदि।

इस प्रकार भारतेन्दु-युग के पूर्व तक नाट्य-परंपरा संस्कृत भाषा की नाट्य-परंपरा से विमुक्त होकर लोकवर्गी नाट्य परंपरा की ओर उन्मुख हो गयी थी।

^१ " By the time we come to the 17th Century, the folk theatre had established itself displacing Sanskrit plays. A stage was there, at any cross-roads, an audience had come into existence, dancers and singers and actors had developed into a professional caste.... contemporary men and ways of life had also a place in drama."

स्वयं भारतेन्दु ने एवं उनके समकालीन नाटककारों ने संस्कृत के नाटकों को अनुकूलित एवं रूपान्तरित किया है। अस्तु, संस्कृत का प्रभाव क्लृप्ति न क्लृप्ति रूप में विराजमान रहा है, किन्तु रंगमंच की दृष्टि से पर्याप्त परिवर्तन हो गया।

जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है कि वैजवाण्णि संस्कृत के संकीर्ण क्षेत्र में आवद्ध होने के कारण जन-जन से संस्कृत साहित्य का तादात्म्य क्लृप्ति विच्छिन्न हो गया और लोकनाट्य परम्परा अपने तीव्र वेग के साथ विकसीन्मुख होती गई। डा० कीथ ने लिखा है कि संस्कृत में जो नाटक मिलते हैं, वे जन-भाषा से बहुत भिन्न थे और उस भाषा के स्वरूप को समझना जनता के लिए प्रायः असम्भव था। केवल अल्पसंख्यक शिष्टवर्ग उस भाषा को समझने में समर्थ था और उसी उच्चपदस्थ अल्पसंख्यक समाज के लिए साहित्यिक नाटक लिखे जाते थे।^१ अतः यह कहना उचित प्रतीत होता है कि 'भारतेन्दुकासीन रंगमंच के स्वरूप निर्धारण में संस्कृत नाट्यमंच की अपेक्षा लोकमंच उसके अधिक निकट था, जिसका उद्भव जन जीवन में प्राचीन काल से ही प्राप्त है और जिसका विकास मध्ययुग में हुआ।'^२

'भारत नाट्यशास्त्र' के अनुसार आदि नाटक की रचना ब्रह्मा द्वारा पंचम वेद के रूप में की गई थी, जिससे अल्पशिक्षित समुदाय को ज्ञान के साथ आनन्द भी उपलब्ध हो। कैसे 'नाटक का तादात्त सम्पर्क तो लोकजीवन के रूपही पक्षों से ही है। नाटक लोकजीवन की भावनाओं को, धरती की भाषा को और जन-मन की इच्छाओं को रूप प्रदान करते हैं।'^३

भारतेन्दु-युग के पूर्व लोकनाट्यों का लोकमानस तक सम्प्रेषण प्रभावी रूप में हो चुका था। भारतेन्दु युग के नाटककारों ने लोकनाटकों के रूप-नाष्ठव

१- डा० कीथ -- कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ़ इंग्लिश लिटरेचर - बाल्युम ५, पृ० २३।

२- अधिक डा० सुशीला धीर -- भारतेन्दुयुगीन नाटक - पृष्ठ २२।

३- श्रीकृष्णादास -- हमारी नाट्य परम्परा, पृ० ४२२।

का माध्यम नाट्य-रचना में ग्रहण किया। उनके समय में उधर भारत के रास-लीला और रामलीला के मंच रुढ़िवादी हो गए थे। उधर बंगाल की 'जात्रा' और मिथिला की 'कीचनिया' ने उन्हें प्रेरणा दी थी। लोकनाटकों में कला का अभाव उन्हें क्लेशा वह तो एक और रहा, पर उन्हें देखते हुए एक राष्ट्रीय मंच का उन्होंने तीव्रतम अनुभव किया। इसलिए लोकनाटकों की पयात्मक संवाद शैली एवं अन्य नाटक पद्धतियों के सम्मेलन की लोकरूचि के अनुसार प्रदर्शन का विषय बनाते हुए उन्होंने मंच की स्थापना की। इस काम में उन्होंने अपने मित्रों, परिजनों, शिष्यों सबको समेटा और अपने समय में अनेक पौराणिक, ऐतिहासिक और सामाजिक नाटकों की रचना कर उनका अभिनय कराया।^१

भारतेन्दुशुक्लिन नाटकों के सहायक लोक नाट्य रूप

लोकनाटकों के विविध रूपों में निम्नलिखित लोकनाट्य-रूप भारतेन्दुशुक्लिन नाटकों की रचना में प्रमुख रूप से सहायक रहे हैं :--

- १- रासलीला
- २- रामलीला
- ३- स्वांग और नाटंकी

रासलीला

रासलीला और रामलीला अत्यन्त प्राचीन लोकनाट्य रहे हैं। हस्तीलक, रासक, प्रेक्षणक द्वारा समारोह वायोजित होने की परंपरा विक्रम की चौदहवीं शताब्दी में प्रचलित थी। 'रासक' का बखणक लक्षण करते हुए शारदासन ने 'भावप्रकाश' में और रामचन्द्र गुणचन्द्र ने 'नाट्यदर्पण' में बताया है कि इसमें सोलह, बारह या बाठ नायिकाएं पिण्डाकार एकत्र होकर एकदूसरे के साथ श्रृंखलाबद्ध हो अपना गुम्फित श्रृंखला को तोड़कर पृथक्-पृथक्

१- डा० श्याम परमार -- लोकगीत नाट्य परम्परा, पृ० ६।

होकर नृत्य करती हैं। प्रेङ्खण एक प्रकार का नृत्य-विशेष था, जो समाज (एक प्रकार के विशिष्ट पर्वोत्सव) में विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा किया जाता था। हल्लीसक एक स्त्री-प्रधान नाटक है, जिसमें नायिका-बाहुल्य के कारण नृत्य और गीत को प्रमुखता मिलती है।^१

राजस्थानी में विशिष्ट साहित्यिक परंपरा का राजा जयरा राम का संबंध रासलीला से स्थापित किया गया है। भागवत के अनुसार दो गोपियों के मध्य में एक कृष्ण का दर्शन जिस नृत्य-नाटिका में होता है, वह रासलीला है। श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के उन्नीस वें तैत्तिरीय अध्याय में कृष्णरास का व्यापक चित्रण प्रस्तुत हुआ है। महाकवि सूरदास और नन्ददास ने हली रास का आधार ग्रहण कर वृजभाषा में लालित्य एवं माधुर्यनिष्ठ रासलीला का विशद चित्रण किया है। तदुपरान्त अनेक कवियों द्वारा इस परम्परा की दिशा मिली और यह लोकव्यापी हो सकी। इस प्रकार रासलीला लोकतत्त्वों से अधिकाधिक अनुप्राणित है। यह कहना उचित होगा कि रासलीला और रासलीला जैसे लोकनाट्यों के मूल में लोकवार्ता के तत्वों को खोजने की चेष्टा की गई है।

‘रास’ का रंगमंच आयताकार तथा छोटा होता है। मंच पर त्रिकृष्ण और राधा के लिए आकर्षक चिह्नावन रखे रहते हैं। समीपस्थ स्थानों में गोपियों के बैठने की समुचित व्यवस्था रहती है तथा सामने संगीत-मंडली विराजमान रहती है। दर्शकगण सुविधानुसार चारों ओर बैठ जाते हैं। पदों आदि का उपयोग नहीं होता है, अतः मंच पर प्रारम्भ से अंत तक सभी पात्र उपस्थित रहते हैं। सचमुच रासलीला नाट्यपरंपरा के माध्यम से ही नाटक का जनता से प्रभावी एवं सीधा सम्पर्क हो सका।

रजिस्टर' 10 मई 1863 में प्रकाशित हुआ था ।^१ इस नाटक ने हिन्दी नाटक अभिनीत होने की स्वस्थ परम्परा का मात्र सूत्रपात ही नहीं हुआ, वरन् दर्शकों में नाट्यानुराग उत्पन्न हुआ । अक्षय कृष्णजीला, रामजीला, रामलीला, कीर्तनिया, स्वांग, हन्दरसभा जादि सारी नाट्य प्रणालियां हिन्दी रंगमंच के उदय की भूमिका के रूप में मानी जा सकती हैं । भारतेन्दु बाबू को सारा संस्कृत नाटक और रंगमंच अथवा उनके पहिले का हिन्दी नाट्य साहित्य ही उत्तराधिकार में नहीं मिला था, बल्कि हिन्दी रंगमंच की भूमिका के रूप में उपर्युक्त

- १- BENARAS, April 4..... Last night a hindi drama named 'Janki Mangal' was acted by natives in the Assembly Rooms, by the order of his Highness the Maharaj of Benaras. Our enlightened Maharaja who generally takes an interest in all the concerns the improvement of his countrymen, was present on the occasion, he was accompanied by Kunwar Sahib and his staff. The principle European and native citizens were invited to witness the performances. A few ladies and many military and civil officers were present, and many rich folks of the city. A native band of music attended the entertainment and played during the intervals of the play. As usual with the Sanskrit drama, first of all Sutradhar (Manager) entered and read a few benedictory verses in Sanskrit. When the manager has finished his speech, an actress entered and hold a short conversation with the manager as how to please the audience. I must tell you that this is the way in which Sanskrit dramas used to commence. There is always a short discourse between the manager and some one else, which brings forth the subject of the play. While the dialogue was going on a noise was heard behind the scenes, and the manager said that Ram had come to the forest, which caused the noise. Thus they hastened to see him.....
(Indian Mail and Monthly Register 7th May 1863)

[श्री शरद नागर, लखनऊ के सौजन्य से प्राप्त]

नाटकीय रूप और स्वांग तथा गीतिनाट्य [बापेरा] भी प्राप्त हुए थे ।...
नारतेन्दु जी ने इन सब परम्पराओं का अध्ययन किया और उनसे लाभ उठाया ।
उन्होंने हिन्दी नाट्य साहित्य और रंगमंच में जो नया रूपांतरण किया उसमें
उन्हें इन सारी प्रणालियों का प्रयोग करने और उनसे बल प्राप्त करने में सहायता
मिली थी ।^१

स्वांग और नाटकी

लोकगीतों नाट्य-परम्परा में स्वांग एक अविन नाट्य-
शैली है । संस्कृत के पतन के उपरान्त अपभ्रंश भाषाओं और अपभ्रंश भाषाओं
के पतनोपरान्त हिन्दी तथा अन्य आधुनिक प्रादेशिक भाषाओं का विकास
हुआ । प्रत्येक भाषा क्षेत्र में, वहाँ की जन-रुचि का मता और परंपराओं के
अनुरूप लोकनाट्य का अस्तित्व हुआ । महाराष्ट्र, पंजाब, राजस्थान, बिहार
और उत्तरप्रदेश के लोकमानस में स्वांग-परम्परा का प्रबल प्रचलन रहा है । नवीं
शताब्दी में सिद्ध कण्ठमा ने डोमरी आह्वान गीत की रचना की थी । स्वांग
का प्रसारण डोमनियों के नाटक के रूप में प्रस्तुत होकर भारतवर्ष में व्याप्त
रहा है । कबीर^२ तथा जायसी^३ के युग में भी स्वांग एक प्रमुख लोकनाट्य था,
जिसने अपार जनसमूह को आकृष्ट किया था ।^४ मौलाना गनीमत ने अपनी पुस्तक
‘नौरंगे दृशक’ में इन स्वांग खेलने वाले भगत बाजों की चर्चा की है ।^५ डोमिनी

१- श्रीकृष्णदास -- हमारी नाट्य परम्परा, पृ० २२० ।

२- होय जहाँ कहीं स्वांग समाशा
तनिक न नींद सतावा रे । -- कबीर

३- पातुर एक हुनि जांगि सवांगि,
साह बखौर हुत बोहि मांगि । -- जायसी

४- डा० सोमनाथ गुप्त -- हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास [तृतीय
संस्करण], पृ० १६ ।

स्त्रियाँ ही पुरुष एवं स्त्री वर्णों में रंगमंच पर अवतरित होती थीं। लोक में यह परम्परा पहले ही से किसी न किसी रूप में जीवित रही होगी, किन्तु तेर-बढ़ बढ़ परंपरा के अभाव में इसके स्वरूप पर गंभीर विचारणा प्रस्तुत नहीं हो सकी है।

भारतेन्दु-गुप्त के पूर्व इस परंपरा पर श्री अम्बाराम ने चरु १९६० के आजपास स्वांग के गाने बनाए तथा उसका अभिनय अभिनय किया। लोक में व्याप्त नाव-शैली का ही आधार श्री अम्बाराम ने ग्रहण किया होगा, अतः यह परम्परा सज्ज रूप में विकास पा सकी है। भारतेन्दुगुप्तीन नाटककारों ने अम्बाराम के कृतित्व से प्रेरणा ग्रहण की और नाटकों में इस शैली को प्रयुक्त किया।

चार या छह तस्तीं को जोड़कर एक मंच निमित्त कर दिया जाता है। दर्शक सुविधानुसार चारों ओर बैठ जाते हैं। अभिनेता समीपस्थ किसी कक्षा में विविध वेशभूषा में सज्जित होकर बातें-जाते रहते हैं। यदि किसी राजनभा या सम्पन्न व्यक्ति के यहां स्वांग होता तो पर्दे का भी प्रयोग किया जाता था। स्वांग या नाटकी का सबसे प्रभावी आकर्षण है इसका नक्कारा। नक्कारे का शब्द श्रुतिपटल पर पड़ते ही लोकप्रणीत वास्तविक हो जाता है। सम्पूर्ण नाट्य गा-गाकर पूर्ण होता है और प्रत्येक पात्र गाने के साथ नृत्य भी करता था। नृत्य में घुंघरू का प्रयोग भी किया जाता था। प्रारम्भ में सूत्रधार मंलाचरण गाता है। तब वह नाटक का परिचय प्रस्तुत करता है। पात्रों के संवादों के मध्य भी यथावसर वह बारम्बार कथात्मक-वृत्त प्रस्तुत कर कथा-प्रवाह को विकसित करता है। पं० प्रतापनारायण मिश्र के नाटकों की समीक्षा करते हुए डा० रामविलास शर्मा ने लिखा है -- "प्रतापनारायण मिश्र के 'संगीत शार्ङ्ग' में कालिदास की नागरिकता का नाम नहीं है। यह ठेठ देहात में दुष्पन्त-शुद्धता की कथा का अभिनय करने के लिए लिखा गया है। इसका ढांचा न संस्कृत नाटकों का है, न ओड़ी नाटकों का, यह नाटकी का एक विशुद्ध रूप है। इसमें कुछ स्त्री पात्रों के गीत ग्रामणियों की धुन पर

बनाए गए हैं।^१ नाटकी के घूम-घड़ाके का प्रभाव भारतेन्दुसुनि पारसी-रंगमंच ने भी ग्रहण किया था। पारसी-थियेटर ने नाटकों पर शैक्षणीयरिय प्रभाव के साथ नाटकी के घूम-घड़ाके का प्रभाव भी देखा जा सकता है। दर्शकों के सामने किसी मनसगीरेज दृश्य को प्रस्तुत कर देना, उनको बाँका देना, वृत्तगंधी गय में संवाद करना इनकी मुख्य विशेषताओं^२ के परलक्षणा में नाटकी लोक-नाट्य परम्परा की ही प्रमुख भूमिका है। डा० हंडुजा अवस्थी ने इस पन्थ में लिखा है -- "भारतेन्दुसुनि नाट्य-साहित्य में मध्यसुनि अर्द्धनाट्य रूपों, कान्शियाँ और लीला-नाटकों के रचना-नियम और व्यवहार भी स्पष्ट देखे जा सकते हैं। इन नाटकों में अनेक ऐसे दृश्य हैं जिनमें रंगमंच पर उसी प्रकार की चित्रोपम कान्शियाँ सजाई जा सकती हैं जैसी कि लीला नाटकों में तथा अन्य धार्मिक अवसरों से संबंधित शोभा-यात्राओं में नजारे जाती हैं।"^३

भारतेन्दु सुनि के विविध रंगमंच

भारतेन्दु-सुनि के पूर्ण विस्तीर्ण नाट्य-परम्परा के रूप-ताँछव के स्पष्टीकरण के लिए संस्कृत नाटकों के स्वरूप और लोकधर्मी नाट्य-परम्परा के विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि लोक-नाट्य-परम्परा ने लोकमानस में अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। क्योंकि लोक-नाट्य मंच साधारण जन की भावना की अभिव्यक्ति प्रदान करने में सक्षम होता है, उसका केन्द्रिय बिन्दु चरित्र वक्ता व्यक्ति न होकर भाव होता है इसलिए इन नाट्य-मंचों का कर्णित से निकटतम सम्बन्ध होता है। इन नाट्य-मंचों पर उपलब्ध किए जाने वाले अथानक स्थानीय प्रभावों से समन्वित होते हैं तथा कमत्कारी दृश्यों के सामंजस्य

१- डा० रामविलास शर्मा -- भारतेन्दु सुनि, पृ० ३७।

२- डा० बच्चन सिंह -- हिन्दी नाटक, पृ० २५।

३- डा० हंडुजा अवस्थी -- नाटक साहित्य का इतिहास, पृ० १६।

तै क्रांतिक की एकरसता समाप्त हो जाती है। साथ ही इन नाट्य प्रयोगों में लोकजीवन के रीति-रिवाज मुखरित होते रहते हैं।

संस्कृत के अतिरिक्त अंग्रेजी, बंगला नाटकों का भी भारोन्दु-युग में रूपान्तरण हुआ है। साथ ही भारोन्दु-युग में पारसी थियेटर सम्पन्न देश के विभिन्न क्षेत्रों में नाट्य-प्रदर्शन में संलग्न थी। सा धूमिका व संनम्नित में भारोन्दु युग के उपर्युक्त नाटकों के रंगमंचों का प्रभाव अभावित हो गया था। अतएव भारोन्दुयुगीन विविध रंगमंचों का अध्ययन आवश्यक व प्रतीत होता है। इसके विभिन्न रूप निम्नलिखित हैं :--

- १- अंग्रेजी रंगमंच
- २- बंगला रंगमंच
- ३- पारसी रंगमंच

अंग्रेजी-रंगमंच

भारत के आधुनिक रंगमंच-आंदोलन का पाश्चात्य सांस्कृतिक सम्पर्क की प्रतिध्वनि का प्रतिकारण कहा जाता है। अंग्रेजी-शासन सांस्कृतिक प्रभुत्व के लिए सदैव प्रयासरत रहा। अंग्रेज अठारहवीं सतावन के गदर के साथ उत्तर भारत में बढ़े थे। इससे पूर्व उन्होंने बम्बई और कलकत्ता में कुछ जम कर अपना खेमा गाड़ रखा था अंग्रेज इन दो केन्द्रों में राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक और व्यावसायिक अथवा अपने पूर्ण सांस्कृतिक जीवन तथा जातीय महिमा के साथ जिंदगी जी रहे थे। उनकी उसी जातीय महिमा में उनका रंगमंच भी था, बहुत सारी चीजों की तरह ही जिसे वे अपने साथ हिन्दुस्तान में ले जाते थे और नियमित रूप से जिसे हमेशा सीधे इंग्लैंड से ले आते रहे हैं। ऐसा उन्होंने दो कारणों से किया था। अपने रंगमंच में अपने नाटकों को देखने की उनकी आदत और शांति तथा हिन्दुस्तान में अपने सौंदर्य-बोध, नाट्य कला का प्रदर्शन। यह भाव भी कि, शक्तिशाली, पराक्रमी, विजयी अंग्रेज जाति की ही तरह उनका रंगमंच भी कितना महान् है -- इस महाग्रन्थ में ने भी उन्हें इस विशा

में जाग्रत किया है।^१ देश के विभिन्न भागों में शैक्षपियर के नाटकों का प्रदर्शन हो रहा था। भारतेन्दु-सुभा के नाटककारों ने शैक्षपियर के नाटकों के माध्यम से ही पाश्चात्य नाट्य-स्वरूप को समझने का प्रयास किया। राजा श्रीनिवास दास ने शैक्षपियर के 'रोमियो' और 'जुलियट' के आधार पर 'रणधीर प्रेममोहिनी' दुस्मान्त नाटक की रचना की। पाश्चात्य नाटकों की भांति इसमें प्रस्तावना, नांदी पाठ नहीं है। रणधीर का नास्त रोमियो की भांति और जूलियट का अथाह प्रेम शैक्षपियर के दुस्मान्त नाटकों जैसा है। स्वयंवर का दृश्य मर्चेंट आफ वेनिस के कासेट रीन पर अवलम्बित है। दूसरे नाटक 'संयोगिता स्वयंवर' के अंतिम दो अंकों में शैक्षपियर के मर्चेंट आफ वेनिस का प्रभाव है। राधाकृष्ण दास के 'मझराणा प्रताप' 'बेमहाराजी पद्मावती' में भी शैक्षपियर का प्रभाव है। यह महत्वपूर्ण तथ्य है कि अंग्रेजी नाटक और रंगमंच की धारा को अधिकांश साहित्यकारों ने सीधे अंग्रेजी साहित्य से न ग्रहण कर बंगला-नाटकों द्वारा ग्रहण किया है। अतएव, अंग्रेजी-रंगमंच के स्थान पर बंगला रंगमंच ही प्रेरक एवं अनुकरणीय रहा है।

बंगला रंगमंच

हिन्दी नाट्य-कला के विकास में बंगाल की नाट्य-संस्थाओं का अमूल्य योग रहा है। समाज को प्रबुद्ध करने एवं अंग्रेजों के अन्यायपूर्ण कार्यों का सशक्त विरोध करने में नाटक पूर्णतः सफल हुए हैं और प्रभावी रंगमंच का स्वरूप निर्मित हो सका है।

सर्वप्रथम बंगाल ही अंग्रेजों का प्रभाव-क्षेत्र रहा है। पाश्चात्य-नाटकों का अभिनय यहां अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में प्रारम्भ हो गया था। माइकेल मछुदन दत्त, मनमोहन बसु, सतीशचन्द्र बसु, गिरिशचन्द्र घोष आदि नाटककारों

ने पाश्चात्य नाटकों से प्रभाव ग्रहण किया था। इनके नाटकों में नामाजिक समस्या, वातावरण-चित्रण, अन्तर्द्वन्द्व, वरित्र-चित्रण, यथार्थ-चित्रण शैक्ष-पियर के दुःखान्त नाटकों की भांति है।

कंगला नाटकों से प्रभाव ग्रहण कर भारतेन्दु ने विद्यासुन्दर का कंगला से अनुवाद किया। रुद्र काशिकेय ने इस विषय में लिखा है -- 'विद्यासुन्दर' की कथा का देश में अति प्रसिद्ध है।..... प्रसिद्ध कवि भारतवन्द्य राय ने इस उपारम्भान को कां भाषा में काव्यस्वरूप में निर्माण किया है और उसकी कविता ऐसी उत्तम है कि कां देश में बाबाल वृद्ध वनिता सब उसकी जानते हैं। महाराज कवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इसे उसी काव्य की अवलम्बन बनाकर जो विद्यासुन्दर नाटक बनाया था, उसी की छाया लेकर आज पंद्रह करा रुप, यह हिन्दी भाषा में निर्मित हुआ है।..... विद्यासुन्दर नाटक गुणों में अद्वितीय न होने पर भी द्वितीय है।^१ इसके कथानक पर रोमान्टिक नाटकों का भी प्रभाव पड़ा है। राजकुमार सुन्दर विद्या की सौन्दर्य-पुष्पमा पर मुग्ध होकर विवाह के लिए प्रेरित होता है। इस प्रकृत प्रयास में मातृनि सहायता प्रदान करती है और विद्या के पिता बाधा उत्पन्न करते हैं, किन्तु अन्ततोगत्वा दोनों का प्रेम विवाह-सूत्र में परिणित हो जाता है। इस प्रकार नाटकीय शिल्प पर पाश्चात्य-प्रभाव परिलक्षित है। नान्दी, प्रस्तावना, सूत्रधार आदि नहीं हैं। पद्य आंशिक रूप में है। हीरा मातृनि व धूमकेतु की वार्ता में आ-बोध स्पष्ट रूप से है। ऐतिहासिक नाटक 'नील देवी' पर पाश्चात्य प्रभाव है। इस प्रकार भारतेन्दु ने पाश्चात्य एवं कंगला नाटकों से प्रभाव ग्रहण कर नाटकों एवं की जग्राह्य एवं लोकानुसुख बनाने का प्रयास किया है। उन्होंने अपने 'नाटक' शीर्षक निबंध में नाटक-रचना के विषय में यह स्पष्ट किया है कि 'नाटकों के जटिल नियम नाट्य-संधियां, अवस्थाएं तथा काये-प्रकृतियां और नान्दी, सूत्रधार तथा रत्न-परम्परा का पालन बाधक होगा।'^२ यद्यपि वे संस्कृत नाट्य-शैली में

१- रुद्र काशिकेय -- भारतेन्दु ग्रंथावली, भूमिका।

२- वही, पृ० ७५५।

जास्था रखी है व उसका अनुसरण किया है, तथापि स्तानुक्त परिवर्तन की भी स्वीकारा है। इसकी आवश्यकता उन्होंने अनुभव की और अपने व्यापक अनुभव से यह अनुमान भी तब लगाया कि जनता की अब प्राचीन नाट्य-परंपरा के जटिलतम स्वरूप के प्रति जास्था नहीं है। अपने इस उद्देश्य का स्पष्टीकरण करते हुए उन्होंने लिखा है -- "अब नाटक में कहीं आशीः, कहीं पंच तंधि या ऐसे अन्य विषयों की आवश्यकता नहीं रही। संस्कृत नाटकों की भांति इनका हिन्दी नाटक में अनुसंधान करना अबवा किसी नाटकांग में नहीं है बल्कि यत्नपूर्वक रखकर हिन्दी नाटक लिखना व्यर्थ है, क्योंकि प्राचीन लक्षणा रखकर आधुनिक नाटकादि की शोभा-उपादन करने से फल उल्टा होता है और यत्न व्यर्थ जाता है।"^१ इस प्रकार नाट्य-रचना में काला नाटकों का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। नाट्य-प्रस्तुति में काला के रंगमंच से भारतेन्दुशुक्ल नाटक-कारों ने प्रेरणा ग्रहण की। स्वयं भारतेन्दु ने काल-प्रान्त की यात्रा की थी, जतः वहाँ के लोकजीवन एवं नाट्य-प्रस्तुति का अवलोकन किया होगा। काल में उस समय यात्रा लोकनाट्य विख्यात था। महाप्रभु बैतन्यदेव ने अपने पीता चन्द्रसेखर के निवास पर रुक्मिणी का अभिनय किया था।^२ 'यात्रा' लोक-नाट्य में श्रीकृष्ण के जीवनवृत्त का आधार ग्रहण किया गया है। लिखित सिद्धांत-अशिद्धांत, नागरिक-ग्रामीण, धनी-निर्धन समस्त वर्गों के लिए यह नाट्य-परंपरा मनोरंजन का प्रमुख साधन रही है। देवपूजा के उत्सव के उपलक्ष्य में मेला, शोभा-यात्रा और नाट्योत्सव -- ये ही इसके उपकरण रहे हैं। यात्रा में स्वांगों के समान गीतों की प्रधानता रही है और रामलीला, रासलीला जैसा रंगमंच एवं धार्मिक वातावरण विद्यमान रहता है। मंदिर के आंगन ही इसके प्रिय नाट्य-गृह रहे हैं किन्तु बड़े भवनों और राजमार्गों पर भी यात्राओं का अभिनय होता रहा है।

१- रुद्र काशिकेय -- भारतेन्दु ग्रंथावली, पृ० ७५६।

२- हेमैन्द्र नाथ दास गुप्ता -- दि इंडियन स्टेज [भाग-२], पृ० ६५।

भारतेन्दु के अतिरिक्त श्री गोपालराम गहमर [दादा जीर में], रामकृष्ण वर्मा [कृष्णसुरारी नाटक एवं पद्मावती नाटक], सुंती उमि उदित नारायण लाल वर्मा [अमृती नाटक] ^{ने} ~~जो~~ ^{ने} ~~क~~ ^{ने} ~~भाषा~~ ^{ने} ~~के~~ ^{ने} ~~नाटकों~~ ^{ने} ~~का~~ ^{ने} ~~हिन्दी~~ ^{ने} ~~रूपान्तर~~ ^{ने} ~~प्रस्तुत~~ ^{ने} ~~किया~~ ^{ने} ~~है~~ ^{ने} ~~।~~

पारसी रंगमंच

अंग्रेजी और बंगला नाटकों के रंगमंच की विवेचना के उपरान्त पारसी-रंगमंच के स्वरूप को समझना आवश्यक है, क्योंकि भारत-रंगमंच के समानांतर यह रंगमंच भी विकसित होता रहा है। इस रंग-परंपरा को व्यंग्यायी नाटक मंडली के नाम से अभिहित किया जाता है। उनकी स्थापना के पूर्व प्लासी-युद्ध के उपरान्त अंग्रेजों ने कलकत्ता में 'प्ले हाउस' और 'कैलस्टा थियेटर' रंगमंचों की स्थापना की। इन रंगमंचों पर बंगला नाटकों का भी अभिनय होता था। अंग्रेजों की देखा-देखी कलकत्ते में काल-थियेटर, थोरियंटल थियेटर आदि की स्थापना हुई थी।

नाट्य-प्रस्तुति की ओर भाँसी के महाराज गंगाधर राव और ललनऊ के नवाब वाजिद अली शाह का भी ध्यान आकृष्ट हुआ।

भाँसी की रंगपरंपरा का शुभारंभ महारानी लक्ष्मीबाई के पति महाराज गंगाधर राव ने किया था वे नाटक खेले-खिलाने के बड़े शौकीन थे और स्वयं स्त्रियों की भूमिका में अभिनय किया करते थे। उनके रंगमंच पर खेले जाने वाले दो नाटकों के नाम मालूम हो सके हैं -- शकुंतला और हरिश्चन्द्र। नाटकों के लिए पैसे तैयार करने का काम सुलाल न नामक एक चित्रकार करता था। रंगमंच की व्यवस्था पर किसी पौराणिक प्रसंग का एक चित्र रखा जाता था। व्यवस्था उठने पर सर्वप्रथम पुष्पमाताजी से सजी गणेश जी की मूर्ति का दर्शन होता था। एक सुसज्जित तिस्रधारी ब्राह्मण बारती उतारता था और

अपनी-अपनी वेशभूषाओं में सजे हुए अभिनेता-अभिनेत्रियाँ गणेश स्तुति करते थे। मंगलाचरण के बाद नाटक की कथा का थोड़ा-सा परिचय दिया जाता था और यवनिका गिरा दी जाती थी। नाटक का आरम्भ कुछ समय बाद यवनिका को फिर से उठाकर होता था। नाटकों में किसी न किसी प्रकार गायन, वादन और नृत्य के लिए भरपूर अवसर निश्चित लिए जाते थे किन्तु संवाद गद्य में ही होता था। नाटकों में किसी न किसी प्रकार की शिक्षा अवश्य निकलती थी।^१

वाजिद अली शाह ने 'किससा राधा कहिया' की रचना की। सन् १८५३ ई० में अमानत ने 'इन्दर सभा' की रचना की। इस कृति ने पर्याप्त लोकप्रियता अर्जित की। 'हिन्दी प्रदेश में रासलीला से प्रभावित होकर नवाब वाजिद अली शाह ने अमानत द्वारा 'इन्दर सभा' के निर्माण के पश्चात् सन् १८५३ ईस्वी के आसपास केंसरबाग, लखनऊ में एक रंगमंच बनवाया था, किन्तु इन्दरसभा का रंगमंच न तो साहित्यिक-शैली का सफ़ रंगमंच था और न जन नाट्य-शैली का ही। इसलिए बहुत कम अंशों में ही वह हिन्दी के साहित्यिक मंच को प्रभावित कर सका है।^२

भारतेन्दु 'इन्दर सभा' की अवस्थितिता के आलोचक बन गए थे। इन प्रवृत्ति के विरोध में उन्होंने 'बंदर-सभा' की रचना की। उन्होंने स्पष्ट रूप से लिखा है -- 'इन्दर सभा उरदू में एक प्रकार का नाटक है या नाटकाभास है और यह बंदर सभा उसका भी आभास है।' इन्दर सभा में परियां जाती हैं, किन्तु बंदर सभा में राजा बंदर और शूरमूर्ति परी जाती हैं। जैसे :--

चौबोले जवानी राजा बंदर के बीच जहवाल अपने के।
पाजी हूं मैं कीम का बंदर मेरा नाम।
जिम फुजूल कूदे फिर मुझे नहीं बाराम ॥

१- डा० वृन्दावनलाल वर्मा -- पृथ्वीराज अविनन्दन ग्रंथ, पृ० ४२१।

२- डा० सुशीला धीर -- भारतेन्दुश्रीव नाटक, पृ० १८६।

सुनो रे मेरे देव रे दिल को नहीं करार ।
जल्दी मेरे वास्ते सभा करो तैयार ॥
लावो जन्मां को मेरे जल्दी जागर हुआ ।
सिर मूँड़ गाँठ करें मुजरा करें यहाँ ।

जाना छतुरमुर्ग परी का बीच सभा में।

आज महफिल में छतुरमुर्ग परी जाती है ।
गोया गहमिल से ब तैली उतरि जाती है ॥^१

भारतेन्दु के अनुकरण पर श्री राममजन मिश्र ने 'सुन्दर सभा' की रचना की --

सभा में राजा सुन्दर की आमद-आमद है ।
परत-पुर्तों के के अफसर की आमद-आमद है ॥
संभल के बैठो करिने के साथ महफिल में ।
हरामजादों के लश्कर की आमद-आमद है ॥^२

'भारत डिमडिमा नाटक' में सूत्रधार कहता है -- "हे प्यारी ! हम इनको सुन्दरसभा की भांति ही कोई नाटक दिखलाएंगे । मेरा अभिप्राय सुंदर सभा के भांति यह नहीं बुझ कि जैसे सुंदर सभा देखकर हमारा भारत नाश हुआ है, वैसे ही इसके तुल्य एक और नाटक देखलाकर नाश करें - परन्तु यह इच्छा है कि गाना-बजाना तो इसी भांति का हो, किंतु देशउपकारी और धर्मरक्षक हो ।"^३
सुंदरसभा की लोकनाट्यमय अभिनय शैली का विवरण ग्रैयड मसूद हसन रिज़वी ने 'लखनऊ का अवाही स्टेज' में प्रस्तुत किया है । 'सुंदर सभा' के प्रदर्शन के लिए

१- रुद्र काशिक्य -- भारतेन्दु ग्रंथावली, पृ० ७२६ ।

२- राम मजन मिश्र -- सुन्दर सभा, पृ० १ ।

३- जगद नारायण -- भारत डिमडिमा नाटक - पृ० १

कोई रंगमंच नहीं बनाया जाता था। खुले आंगन में शामियाना लगा दिया जाता था। शामियाने के नीचे राजा छन्द के लिए तख्त बिछा दिया जाता था। परियाँ के लिए कुर्तियाँ रख दी जाती थीं। साजिन्दे परियाँ के पीछे बैठते थे। सामने तीन तरफ दर्शकों के बैठने के लिए तख्त डाल दिए जाते थे। बीच में जो खाली जगह होती थी वही अभिनय दौत्र का काम देती थी। साजिन्दों के पीछे एक लाल रंग का पर्दा लान दिया जाता था। यही पर्दा पात्रों के प्रवेश के लिए काम में लाया जाता था। रंगमंच की उस सज्जा के साथ नाटक आरम्भ होता था।.... राजा छंदर पदै के पीछे आकर खड़े हो जाते थे और रुक-रुक कर घुंघरू बजाते हैं। इसके बाद गायक छन्दर की वामद गाते हैं। पर्दा उठता है। मेहताब छूटती है और राजा छंदर काले और लाल देव के साथ प्रवेश करते हैं। अभिनय-दौत्र में आकर राजा छंदर अपना परिचय और नाटकीय प्रयोजन बताते हैं, अपना संवाद गाते हैं और नृत्य करते हैं। इसके बाद वे तख्त पर आकर बैठ जाते हैं। काला और लाल देव तख्त के दार-बार खड़े हो जाते हैं। इसके बाद देव पुत्तराज परी को बुलाने जाता है। फिर पहले की तरह पर्दा लाया जाता है। पुत्तराज परी पदै के पीछे छिप जाती है। इसकी वामद गाबी जाती है। इसके बाद पर्दा हट जाता है। वह गाती हुई अभिनय दौत्र में आती है और अपने नाटकीय संवाद प्रस्तुत करती है। इसी क्रम में एक के बाद एक परियाँ आती हैं और अपने संवाद गाकर कुर्तियों पर बैठ जाती हैं। राजा छंदरदेव और परियाँ सभी पात्र नाटक के अन्त तक रंगस्थली में ही उपस्थित रहते हैं। वे अपने संवाद बोलकर वापस नहीं जाते।^१ संगीतात्मक ध्वनि के लिए घुंघरू तथा प्रकाश व्यवस्था के लिए मेहताब का प्रयोग लोकोन्मुखता को व्यक्त करता है। पारसी रंगमंच की परंपरा को डा० बच्चन सिंह ने छंदर सभा की परम्परा से जोड़ा है। उनका अभिमत है कि -- "सन् १८५३ ई० में अमानत ने 'छंदरसभा' नाटक लिखा। यही सही जगह में जोपेरा था। यह

१- डा० सुरेश अस्थी -- छंदरसभा का रूपांत अध्ययन (नटरंग अंक ६)

काफ़ी लोकप्रिय हुआ। पारसी रंगमंचों को 'दर नमा' की परंपरा से जोड़ा जा सकता है।^१

बम्बई में सर्वप्रथम पारसी-गुजराती अव्यवसायी रंग-संस्थान बनीं। पारसी नाटक मंडली ने १८५३ के आसपास गुजराती नाटक 'रुस्तम और नोरोज' की प्रस्तुति की। इसके प्रेरक दादा भाई नोरोजी तथा डा० भाऊ दाजी थे। ऐसे अव्यवसायी रंग-संघटनों की संख्या बीस तक पहुंच गई थी।

अव्यवसायी नाटकों की सफलता से प्रभाव ग्रहण कर अनेक नाट्य मंडलियां ने व्यावसायिक रूप ग्रहण किया। पारसी-रंगमंच का यह रूप सेठ पेस्टन जी फ्राम जी के प्रयत्न से स्थापित हुआ। बम्बई में १८७० में 'गोरिजिनल थियेट्रिकल कंपनी' की स्थापना की। पेस्टन जी स्वयं माने जाने अभिनेता थे। कुरशेद जी बल्लीवाला, सोहराब जी और जहांगीर जी इस थिएटर के कुशल अभिनेताओं में से थे। इसके मंच पर 'खुदा दोस्त', 'चांद बीबी', 'हजरत समा', 'लैला-मजनू' आदि नाटकों की प्रस्तुति हुई। इसी के अनुकरण पर दिल्ली में 'विक्टोरिया कंपनी' की स्थापना हुई। विनायक प्रसाद तातिब इस कंपनी के प्रमुख जेष्ठ थे। उनके सुप्रसिद्ध नाटक हैं -- 'गोपीचन्द्र' व 'हरिश्चन्द्र'। बम्बई में एक दूसरी कंपनी 'जलफ्रेड थिएट्रिकल कंपनी' ने भी नारायण प्रसाद जेताब के नाटकों का प्रदर्शन किया।

भारतेन्दु-युग में पारसी-रंगमंच ने पर्याप्त ख्याति अर्जित की थी। ख्याति का कारण निम्नस्तरीय वर्ग को सस्ता मनोरंजन प्रदान करना था। परिणामतः भारतेन्दु जैसे सुरुचिपूर्ण युग-प्रवर्तक व्यक्तित्व ने पारसी रंगमंच की तीव्र आलोचना की। उनके प्रख्यात प्रबन्ध 'नाटक' की अनेक स्थापनाओं वर में और प्रति-क्रियाओं में पारसी-नाटक की ही चर्चा है। अतः इन पारसी कंपनियों की व्यावसायिक मनोवृत्ति के कारण कलात्मक-विकास की संभावना क्षीण हो गई थी।

धार्मिक-पौराणिक कथाओं पर आधारित नाटकों के माध्यम से धर्मप्राण जन-समूह का सस्ते मनोरंजन के नाम पर शोषण करना इन कंपनियों का लक्ष्य था। इसी लिए इनका रचनात्मक मूल्य न जाँच कर कृष्णात्मक मूल्य जाँचा गया है।

पारसी नाटक कंपनियों के पास रंगमंच की साजसज्जा और चमत्कारपूर्ण प्रदर्शनों के लिए धन की कमी नहीं थी। विविध चमत्कारपूर्ण दृश्य और रंग-बिरंगे पर्दे सामान्य जन के लिए आकर्षण के केन्द्र थे। इनके वतनिक अभिनेता और नाटककार भी थे, जो अपनी कंपनी मालिकों के लिए उनकी रुचि के अनुसार नाटक रचना करते और अभिनय प्रस्तुत करते थे। नाटकों में संगीत और नृत्य की प्रधानता रहती थी। वस्ताऊ गाने और नर्तकियोंचित आभंग प्रदर्शन जनसामान्य को प्रभावित करने के लिए एक प्रमुख साधन था। स्त्री पात्रों के लिए इन्हें पुर्तगाली से काम नहीं लेना पड़ता था। स्त्रियाँ ही इनके नाटकों में काम करती थीं, जिसका साहित्यिक नाट्य-मंचों में अभाव रहता था। पं० देवकीनंदन त्रिपाठी कृत 'सैकड़ों में कस-कस' [हस्तलिखित] शीर्षक प्रहसन के निम्न उद्धृत वातालाप में पारसी-नाटक के प्रति साधारण लोगों की प्रतिक्रिया का स्वरूप उपस्थित हुआ है --

"प्रमोद बिहारी -- "नारायण, फिर भी ऐसी बात कहते हो। जाने दो, मड़हन को। चला, नाट्यशाला की ओर। जहाँ कुछ उन्नति की बातें होती हैं। वहाँ है क्या और नाटक दृश्यत गंवाना है।

दुलारीचरण [खीज के] -- अबी साहब क्या बकते हो। पागल हो गए हो क्या, जो नाट्यशाला-नाट्यशाला पुकार रहे हो। भले आदमियों के शाला होने से पेट नहीं भरा, अब 'नटों के शाला' होने पर भरेगा ?

+ + +

हु० -- भला दो घड़ी से नाट्यशाला-नाट्यशाला बक रहे हो। उन्हें इसका अर्थ तो बताओ, यह सचुरी कौन सी चीज़ है, जो तुम उस पर 'आस' कर रहे हो।

+ + +

दु० -- नाटक किस बिड़िया का नाम है ?

प्र० -- ड्रामा, ड्रामा, ड्रामा समझते हो कि नहीं ?

दु० -- जी हां, ड्रामा को जरा उर्दू में तो ग्यान की जिर ।

प्र० -- उर्दू में तो इसकी कहीं भी जिक्र नहीं है । हम कहां से करें, बाप ड्रामा के माने नहीं जानते ?

दु० [सोच के] -- ड्रामा ! जी हां, जानता हूं -- एक तरह की किताब अंग्रेजी में होती है । लेकिन उसका यहां पर क्या काम है ? बाप क्या उसी बाहियात किताब को पढ़कर 'ऐसा पागल' हो गए ?

प्र० -- बाह जी बाह, बाप तो कुछ-कुछ अंग्रेजी भी जानते हैं । फिर की ऐसी अर्द्ध की सद्द समझ ? जरा अकिल में तेल की पुचाड़ा देकर बाजी तो ड्रामा का अर्थ समझ पड़े ।

+ + +

इन्द्रनाथ [हंस के] -- बाबू साहब, एक वफा एक बक्की सरबो तो जान पड़े नाटक क्या चीज़ है ?

पारसी रंगमंच के रूपगत विवेचन और उसके प्रतिक्रियात्मक स्वरूप के विश्लेषण से स्पष्ट है कि पारसी रंगमंच का प्रभाव-क्षेत्र अत्यधिक व्यापक हो गया था । विरोध के बावजूद भी भारतेन्दुशुक्ति नाटककारों ने पारसी-रंगमंच से प्रभाव ग्रहण किया । यह प्रभाव केवल रंगमंचीय तत्वों की दृष्टि से अनुकरणिय रहा है । हिन्दी रंगमंच का यह प्रारम्भिक बन्धुत्व काल था, जतः उसमें सामयिक रंगमंच के तत्वों का प्रसूत होना स्वाभाविक हो गया था । अनेक नाटककारों ने पारसी रंगमंच के घटना-विधान को भी अपनाया है, इस प्रकार हिन्दी नाटकों पर पारसी रंगमंच का प्रभाव परिलक्षित होता है । इस सम्बन्ध में श्री हुंजर जी अग्रवाल ने लिखा है कि -- "बागै चलकर भारतेन्दु ने कुछ विकसित पारसी नाटक भी अवश्य देखे थे क्योंकि उनका प्रभाव उनकी अंतिम दार की नाट्य-रचनाओं पर विस्तर पड़ता है ।"^१

१- हुंजर जी अग्रवाल -- नटरंग, वर्ष ३, अंक ६, पृ० ४० ।

द्विजकृष्ण दत्त ने 'सुल विहार नाटक' में राधा-कृष्ण के विहार का न चित्र खींचा है। इस नाटक पर ऐतिहासिक ने अधिक पारसी नाटक खींचे का प्रभाव है। नाटक का वर्णन विस्तार में पारसी शक्ति की ओर संकेत करता है।^१ पं० दामोदर शास्त्री के 'रामलीला नाटक' में 'मारिब के दरबार में विदूषक उपस्थित है, जो अंग्रेजी डाकघर या तार आफिस से सूचना पहुंचवाने के फटा में है [बालकांड गमांक ४], यह पारसी नाटकों का प्रभाव है। लेखक ने देशभक्त काल दोष की चिन्ता नहीं की है।^२ इसी प्रकार राय प्रसन्न के 'ड्रापदी वस्त्र हरण नाटक' में पारसी नाटकों के 'कांतुल-विधान', बलदेव जी अग्रहरि के 'सुलोचना-सती' पर समानान्तर कथा-क्रम^३ का प्रभाव है।

'सुलोचना-सती' में एक ओर मत्ता-पुरोहित भाट की कथा है तो दूसरी ओर सुलोचना, सती, रावण, मंदोदरी की पौराणिक कथा का निर्वह हुआ है। इस प्रकार समानान्तर कथा-क्रम का रूप उपस्थित हुआ है।

पुरोहित -- हमारे पूर्वजों ने इन भांडों बाँर भाँटों को इतना शोस बना दिया है कि ये सिर पर चढ़कर केसुरी तान कलापने में भी जरा संकोच नहीं करते।

भाट -- तुम्हारे ही जैसे कवीव्य-शून्य हाँ में हाँ मिलाने वानों ही ने तो स्वतंत्र भारत को दास बना दिया। पति की स्त्री भक्ति को स्त्री की पति भक्ति तथा दोनों ही को ब्रह्मचर्य की शिक्षा न देकर इनको विषई बना दिया। अपने घाँसिक बाँर सामाजिक तेज बल को मिट्टी में मिला दिया। नहीं तो क्या यह स्वप्न में सम्भव था कि पुण्यमय देश पापियों का मण्डार बनेगा।

+ + +

१- डा० गोपीनाथ तिवारी -- भारतेंदुशालीन नाटक साहित्य, पृ० १४०।

२- वही, पृ० १४५।

३- वही, पृ० १५०।

४- वही, पृ० १५१।

मन्दोदरी — हां प्यारी, हा कुतूहल, यह अपयश तेरे ही शिर मड़ि गयी ।

क्या तू हतमाग्निनी हुई । हाय ! हाय ! पुत्र एन्द्रजीत, क्या तुम्हारा नाम आज से इस संसार के इतिहास ने उठ गया । हाय ! हाय ! मेरा खिलाना किसने तोड़ा ? हाय, नाउ हा घर का उजाड़कर कहाँ जा बसे ! क्या आज से मैं बाँक हो गई । हाय मेरा मुँह अब कौन खाँसा-गिनी नहीं देखेगी ।^१ किन्तु इन प्रभावों को सामयिक ही कहा जायगा । काँतुल-विधान तो लोक का अपना विशिष्ट विधान है, जिसे मात्र पारसी-रंगमंच के स्वरूप से संयुक्त करना अनुपयुक्त होगा ।

भारतेन्दु-युगीन रंगमंच का लोक पक्ष

काशी-रंगमंच

भारतेन्दु-युग के व्यापक रंगकार्य का उत्कृष्ट अत्यल्प विवरण सुरक्षित रह सका है । भारतेन्दु का व्यक्तित्व पूर्णतः नाटकीय था । जिन्दादिली, उत्पल-प्रियता, सामाजिक चेतना और पनी कवि दृष्टि ने न केवल उन्हें नाट्यकार बनाया, बल्कि उनमें प्राकृतिक अभिनेता के मूल तत्वों की भी संज्ञा दिया । वे रंगमंच पर नहीं, वास्तविक जीवन में भी अभिनय करते थे । पहली अप्रल की सामूहिक परिहास उनका प्रिय व्यसन बन गया था । वे नारी वेश धारण करके चित्र खिंचवा सकते थे और लाट साहब के दरबार में अपनी आह अपने मञ्जालवी को अपना कपड़ा पहनाकर भेज सकते थे । तरह-तरह की पोशाकें धारण करने और दिन में कई बार कपड़े बदलने की तो उन्हें लत-सी पड़ गई थी, जिसकी राजेन्द्र लाल मित्र ने बालोचना भी की थी । उनकी सहज अभिनयशीलता का एक सुंदर चित्र बाबू शिवनन्दन सहाय ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है --

१- बलदेव जी अग्रहरि -- सुलोचना सती नाटक, पृ० १३ ।

उसी क्लब [पेनी रीडिंग] में बाबू साहब एक श्रांत पथिक का स्वागत बनकर आए थे। मरु गठरी पटककर पैर फलाकर इस डंग से बैठ गए थे कि दर्शकगण आनन्द से लोट-पोट हो गए। एक बार सप्ता फाम्बर बने थे। स्टेज जला था, परदा खुला था। आप सिर नीचे, बनारसी जूरी की फाकनी पहने बांगी पर खड़े थे, आगे रंग-बिरंगा शर्बत बोतलों में भरा था। पं० चिन्तामणि तथा पं० माणिकलाल जोशी शिष्य बनकर बंजर हाथ में लिए दोनों ओर खड़े थे। सैकड़ों गज का गज जोड़कर जन्मपत्री से लपेटे स्वयं हाथ में लिए थे। उषा की खोलते जाते थे और पांचवे फाम्बर का उपदेश पढ़ते जाते थे। अपूर्व दृश्य हुआ था।^१ भारतेन्दु के रंग कार्य की महानता का विवरण 'इंडियन स्टेज' में आदि रंगाचार्य ने प्रस्तुत किया था है।

भारतेन्दु की महानता इस तथ्य में है कि उन्होंने पूर्ण केतना के साथ रंगमंच की दिशा दी।..... वे संस्कृत नाटक के अन्ध-प्रशंसक नहीं थे। वे स्वयं रंगमंच में सक्रिय रुचि रखते थे। उन्होंने जो उपयुक्त समझा, उसे व्यावहारिक रूप प्रदान किया। उन्होंने उत्साही साहित्यकारों तथा रंगकर्मियों का एक क सशक्त समूह बनाया और नाट्याभिनय में योग प्रदान किया। वे इस तथ्य की भलीभांति जानते थे कि रंगमंच की पर्याप्त उन्नति से ही लोकमानस शक्तिशाली बन सकता है।^२

अतएव यह स्पष्ट है कि साहित्यिक हिन्दी के वास्तविक रंगमंच और नाट्य-लेखन की परम्परा का शुभारंभ भारतेन्दु ने किया। इस दृष्टि से सन् १८६८ ई० का बहुत बड़ा महत्व है। यह भारतेन्दु की अभिनय कला और नाट्यलेखन दोनों के आरंभ का काल है। इसके पूर्व हिन्दी के वाद्यनिक रंगमंच के आरंभ के जो भी प्रयत्न किए गए थे, वे अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में थे और

१- नेमिचन्द्र जैन [संपादक] -- नटरंग, वर्ष ३, अंक ६, पृष्ठ ४२।

२- बाद रंगाचार्य -- इंडियन स्टेज, पृ० ८८।

और उसमें हिन्दी के स्थान पर लिखड़ी भाषा का प्रयोग किया गया था, जिससे हिन्दी-क्षेत्र के लोगों की सांस्कृतिक आवश्यकता की पूर्ति संभव नहीं थी ।

यह शुभारम्भ ३ अप्रैल १८९८ को हुआ । इस अवसर पर काशी के महाराज ईश्वरीनारायण सिंह तथा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के उत्साहपूर्ण प्रयत्नों ने पंडित शीतलाप्रसाद त्रिपाठी कृत जानकी मंगल का बनारस थियेटर में अभिनय हुआ । यह स्थान वाराणसी शहर से तीन-चार मील पश्चिम सैनिक क्षेत्र में स्थित है और आजकल पुराना नाचघर के नाम से जाना जाता है । इसकी इमारत मूलतः सैनिकों के मनोरंजन-स्थल के रूप में १६ वीं शती के पूर्वार्द्ध में विजयनगर के महाराजा द्वारा बनवाकर भेंट की गई थी । इस दिन यह नाटक अभिनीत न हो पाता यदि भारतेन्दु अपनी तीव्र प्रतिभा का परिचय न देते । लक्ष्मण की भूमिका करने वाला पात्र रुग्ण हो गया था और इस तथ्य की जानकारी उस समय हुई, जबकि अभिनय का आयोजन पूर्ण हो गया था और प्रमुख लोगों का आगमन हो गया था । अभिनय स्थगित करने के अतिरिक्त अन्य कोई दूसरा विकल्प नहीं था, उसी समय भारतेन्दु वहाँ पहुँचे । उन्हें इस बाधा-यज्ञ का स्थान अच्छा नहीं लगा और उन्होंने अपने आभिजात्य की लेशमात्र परवाह किए बिना ही लक्ष्मण की भूमिका अभिनीत करने का संकल्प लिया । उन्होंने एक घंटे की अवधि में ही न केवल अपनी भूमिका स्मरण की बल्कि पूर्ण 'जानकी मंगल' नाटक कंठस्थ कर लिया । एक अनुश्रुति के अनुसार 'नीलदेवी' नाटक में उन्होंने पागल की भूमिका का निर्वहण किया था । तदोपरान्त उन्होंने अपने जीवन का एक विस्तृत भाग रंगमंच की स्थापना और विकास-कार्य में समर्पित कर दिया । काशी के रंगान्दोलन का नेतृत्व काशिराज ईश्वरीनारायण सिंह ने प्रमुख रूप से किया था । नाट्य-कला के पुनरुद्धार की सदिच्छा ने उन्होंने अपने दरबारी कवि गणेश को इस दिशा में कार्यरत रहने का आदेश प्रदान किया था, जो कि उनकी नाट्य-रुचि का परिचायक है --

“भूप मोंलि श्री ईश्वरीनारायण महाराज ।

तणि मेरे गुन रीफि के जायसु दयो दराज ॥

गये बीति अनान बरष नाटक विधि व्योहार ।

मये गुप्त लेहिं प्रकट करि दरवाजी सुन नार ॥ १

भारतेन्दु की प्रेरणा से ही काशी में 'नेशनल थियेटर [सन् १८८४ ई०] की स्थापना हुई, जिसमें हिन्दी भाषियों के साथ बंगालियों का भी सहयोग रहा । भारतेन्दु इस नाट्य-संस्थान के संरक्षक थे और 'अंधेर नगरी' नाटक इसी संस्था के लिए एक रात्रि में लिखा था । बाबू शिवनन्दन सहाय ने लिखा है -- "पारसी और महाराष्ट्री नाटक वाले अंधेर नगरी प्रहसन प्रायः खेला करते हैं, किन्तु उन लोगों की भाषा और प्रक्रिया सब आम्बद्ध होती हुई । बनारस के दशाश्वमेध घाट पर बंगाली तथा पश्चिमी-उत्तर-देशीयों ने एक नैसर्ग नेशनल थियेटर स्थापित किया था । हमारे चरित्र नायक उसके परम सहायक थे । एक बार उस नाटक वालों ने इनसे अंधेर नगरी के अभिनय की इच्छा प्रकट की तो उन्होंने यह विचार कर कि किसी काव्य कल्पना बिना व सदुपदेश निकले बिना यदि कोई नाटक खेला गया तो वह सर्वथा व्यर्थ है, इस पुस्तक की एक दिन में रचना की ।" १

प्रयाग रंगमंच

हिन्दी रंगमंच के विकास में काशी के उपरान्त प्रयाग का महत्वपूर्ण योग रहा है । भारतेन्दुजीन प्रयाग में हिन्दी रंगमंच को सक्रियता प्रदान करने में वहाँ के साहित्यसेवियों एवं बनुरागियों का सत्प्रयास सहायक रहा है । तत्कालीन गति-विधियों पर विचार करते हुए यह कहना उपयुक्त होगा कि उस समय हिन्दी के प्रायः समस्त प्रमुख नाटकों के मंचावतरण करने का प्रयास प्रयाग क्षेत्र में किया गया था ।

प्रयाग में हिन्दी रंगमंच का प्रारंभ सन् १८७०-७१ में हुआ था । 'बार्थ'

१- मैमिचन्द्र जैन --[संपादक] नटरंग, वर्षी ३, अंक ६, पृ० ४० ।

२- बड़ी, पृ० ४४ ।

नाट्य सभा' [१९७०-७१] ने हिन्दी के अनेक नाटकों को अभिनीत किया। यह संस्था एक नाट्य-पत्र भी प्रकाशित करती थी। इसके संस्थापक पं० देवकीनंदन त्रिपाठी थे। उन्होंने 'भारती हरण' नाटक की भूमिका में लिखा है -- "इस समय में विज्ञान दुःखी भारतवासियों को ऐसे नाटक दिखाने की आवश्यकता है कि जिससे इनको अपनी भलाई-बुराई का भी ज्ञान हो और जो-जो दुःख इस समय इन पर है, उनसे दूर करने को मन चित्त उमड़े। इसी विचार से यहां प्रभु प्रयाग राज में 'जाय्य नाट्य सभा' नाम से एक मंडली बनी थी, उसने अनेक नाटकों का अभिनय किया, उसी मंडली की प्रेरणा से यहां प्रयाग में नाट्य-पत्र नामक मासिक छपने लगा।"

लाला श्रीनिवास दास कृत 'रणधीर प्रेममोहिनी' का अभिनय हिन्दी-प्रदेश की इसी महत्वपूर्ण नाट्य-संस्था ने किया था। 'रणधीर प्रेममोहिनी' की भूमिका काशी से भारतेन्दु ने लिखकर भेजी थी, जिसमें सुत्रधार के माध्यम से भारतेन्दु ने नाटक की महिमा व्यक्त की है। उन्होंने लिखा था, "सच्चा नाटक के प्रकार से इस भूमि का बहुत कुछ भला हो सकता है, क्योंकि यहां के लोग कौतुकी बड़े हैं। दिल्ली से इन लोगों को जैसी शिक्षा दी जा सकती है, वैसी और तरह से नहीं।" 'रणधीर प्रेममोहिनी' ही इस नाट्यसंस्था द्वारा अभिनीत प्रथम नाटक माना जाता है। नाटककार श्रीनिवास दास ने 'रणधीर प्रेममोहिनी' के द्वितीय-संस्करण [सन् १९८०] की भूमिका में लिखा है -- "जाय्य नाट्य सभा ने इस नाटक का अभिनय करके मेरा विचार सफल किया। इस लिए मैं 'जाय्य नाट्य सभा' को भी अनेक धन्यवाद देता हूं। 'जाय्य नाट्य सभा' का यह अभिनय प्रयाग में इठी दिसम्बर १९७१ ई० को हुआ था।" लाला शालिग्राम वैश्य ने अभिनयात्मक-विवरण प्रस्तुत करते हुए लिखा है -- "प्रयाग के लोगों ने श्रीमान् लाला श्रीनिवास दास दिल्लीवासी जो तपता-संवरण, संयोगिता-स्वयंवर, प्रह्लाद नाटक के रचयिता हैं, उन्हीं का रचित 'रणधीर प्रेममोहिनी' नाटक बड़े आनन्द के साथ किया.... जिस समय रिपुदमन मारा गया और उसके शोक में रणधीर ने भी अपने प्राण दिए, उस समय का प्रेममोहिनी का कितना चिलाप सुनकर सैकड़ों मनुष्य नेत्रों से अश्रुधारा बहाने लगे और जब प्रेममोहिनी ने

हाथ रणधीर कहकर अपना शरीर छोड़ा, उस समय सब मनुष्य जवानन हाहाकार कर उठे, सबका हृदय विदीर्ण होने लगा ।^१

२६ अगस्त १८७६ को प्रयाग के रेलवे-थियेटर रंगमंच पर 'जार्ज नाट्य सभा' ने पं० शीतला प्रसाद त्रिपाठी कृत 'जानकी माल नाटक' तथा पं० देवकीनन्दन त्रिपाठी कृत 'जयनार सिंह की' का अभिनय प्रस्तुत किया, जिसका विवरण 'समय-विनोद' ने प्रकाशित किया था । '२६ अगस्त को प्रयाग जार्ज नाट्य सभा के मैमरों ने रेलवे-थियेटर में 'जानकी-माल' नाटक और 'जयनार सिंह की' लीला का अभिनय किया था -- जबकी बार का अभिनय बहुत ही उत्तम हुआ । नाटक रसिकों की भीड़ भी ५०० से अधिक हुई थी ।.... उसमें जानकी के रूप की सजावट और उसकी सखियों का गान, परशुराम का शीघ और मल्लिकार्जुन का गीत -- ये तो अत्यन्त उत्कृष्ट हुए थे ।'^२ इन नाटकों के अतिरिक्त पं० देवकीनन्दन त्रिपाठी कृत 'कलियुगी जनेऊ', लाला शांतिग्राम वैश्य कृत 'काम-कंदला' का भी अभिनय हुआ था ।

'जार्ज नाट्य सभा' के समकालीन रेलवे थियेटर सक्रिय था । यह रेलवे का सांस्कृतिक रंगमंच था, जहाँ अन्य सांस्कृतिक कार्यक्रमों के अतिरिक्त नाट्याभिनय भी होता था । 'भारत साप्ताहिक' की भूमिका में नाटककार ने विवरण दिया है कि "कांग्रेस अधिवेशन में नाटक अभिनीत न हो सका, तो रेलवे थियेटर प्राप्त करना चाहा किन्तु वह भी सुलभ न हो सका ।" 'जार्ज नाट्य सभा' के अनेक नाटकों का अभिनय इसी रंगमंच पर हुआ था ।

भारतेंदु-युगिन प्रयाग की तीसरी महत्वपूर्ण नाट्य-संस्था श्री रामलीला नाटक मंडली (सन् १८८६ ई०) थी । इस संस्था के संघटन के विषय में शिवपूजन सहाय ने लिखा है -- "बात बहुत पुरानी है -- लगभग सन् १८८६ ई० के जमाने की ।

१- डा० श्रीरैन्द्रनाथ सिंह -- जानकीमाल, पृ० २५ ।

२- समय विनोद पत्रिका - नैनीताल १८ सितम्बर १८७६

यह इन्दरसभा, गुलबकावली और लंता मज्नु का युग था। प्रयाग के तीन हिंदी प्रेमी उत्साही बालकों ने विचार किया कि शुद्ध हिन्दी में नाटक खेलना चाहिए। इस भावना से उत्प्रेरित होकर पं० माधव शुक्ल, पं० महादेव मट्ट, तथा पं० गोपालदत्त त्रिपाठी ने इस नाटक मंडली का संगठन किया और निश्चय किया कि रामलीला के अवसर पर नाटक अवश्य ही खेला जाए।^१ इस संस्था के प्राण पं० माधव शुक्ल ने रामचरित मानस की कथा का आधार ग्रहण कर 'सीता-स्वयंवर नाटक' की रचना की, जिसका अभिनय सफलता एवं उत्साह के साथ प्रथम बार सम्पन्न हुआ था। सन् १९०७ तक यह मंडली सक्रिय रही और मतभेद के कारण सन् १९०८ में पं० माधव शुक्ल एवं पं० जनादेन मट्ट ने हिन्दी नाट्य समिति की स्थापना की। यह मंडली विद्युद्द हिन्दी नाटकों का अभिनय करती थी। बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन, पं० मुरलीधर मिश्र, पं० दिनेश नारायण उपाध्याय, पं० लक्ष्मीनारायण नागर, प्रधानचन्द्र प्रसाद, बाबू मुद्रिका प्रसाद, बाबू मोलानाथ आदि इस मंडली के प्रमुख कलाकार थे। पं० बालकृष्ण मट्ट पं० बालकृष्ण मट्ट युक्त कलाकारों को प्रोत्साहन प्रदान करने के लिए सूत्रधार की भूमिका में रंगमंच पर उतरा करते थे। इस मण्डली के तत्वावधान में पहली बार राधाकृष्ण दास कृत 'महाराणा प्रताप' का अभिनय हुआ, जिसमें राधा-कृष्णदास स्वयं उपस्थित हुए थे। इसके अतिरिक्त पं० बालकृष्ण मट्ट द्वारा स्थापित नागरी प्रबुद्धिनी सभा दशहरे के अवसर पर पं० मदनमोहन मालवीय जी के निवास पर कोई न कोई नाटक अवश्य अभिनीत करती थी। मट्ट जी के रंग-काय का उल्लेख करते हुए श्री शिवपूजन सहाय ने लिखा है -- 'बापको [पं० बाल-कृष्ण मट्ट] हिन्दी संसार के अंदर जैसा नाटक का व्यसन था, नाटक में जैसी श्रद्धा-मनोमुक्तता और दर्शनोत्कंठा थी, वह एक मुंह से नहीं कही जा सकती। जराजर्जर शरीर होने पर भी बाप शुद्ध हिन्दी नाटक के नवाभिनय को देखने के लिए रातरात्र जागरण किया करते थे। बापका प्रहसन [सौ अजान एक सुजान] हिन्दी संसार में कबोड़ सासानी सम्फा जाता है। बाप ही के अवरत उद्योग

१- शिवपूजन सहाय रचनावली, खण्ड ३, [१९५७], पृ० ४०१।

से हिन्दी साहित्य का प्रयाग में एक विश्व विभूत नाट्य संस्था हुई थी। उसमें आप भी अभिनय-कार्य संपादन कर चुके हैं और भारत-जननी दुतारे माननीय मालवीय जी की भी उक्त नाट्य समिति के अभिनय मंडल में त्यागपत्र होने का सामान्य प्राप्त हो चुका है। आज की वह हिन्दी नाट्य समिति आधुनिक हिन्दी संसार के भीतर एक ही संस्था गिनी जाती है।^१

कानपुर रंगमंच

भारतेन्दु-मंडल के सदस्यों में पं० प्रतापनारायण मिश्र कानपुर के सांस्कृतिक नेता थे। कानपुर के लोकमानस में नाट्याभिरुचि के विकास के लिए वे सदैव यत्नशील रहे हैं। भारतेन्दु जी के नाटकों के नाट्याभिनय से कानपुर का रंग-कार्य प्रारंभ हुआ था। मिश्र जी ने ब्राह्मण में लिखा था -- "अनुमान १२ वर्ष हुए कि यहाँ के हिन्दुस्तानी भाई यह भी न जानते थे कि नाटक किस चिड़िया का नाम है। पहले पक्ष श्रियुक्त पंडितवर रामनारायण त्रिमाठी (प्रभाकर महोदय) ने हमारे प्रेमाचार्य का बनाया हुआ सत्य हरिश्चन्द्र और वैदिकी लिखा होता था। यह बात कानपुर के इतिहास में स्मरणीय रहेगी कि नाटक के मूल आरोपक प्रभाकर जी हैं।"^२ इस नाट्य-मंडली का नाम अभी तक ज्ञात नहीं हो सका है। नीलदेवी, अंधेर नगरी, भारत दुर्देशा नाटकों का इस संस्था द्वारा अभिनय हुआ। राधाकृष्णदास की जीवनी लिखते हुए पं० रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है -- "कानपुर में पं० प्रतापनारायण मिश्र ने जब अपने नाट्य समाज द्वारा १५ अप्रैल, १८८२ ई० को नीलदेवी और अंधेर नगरी का अभिनय किया था, तो बड़े ही आह्लादित हुए थे और कवि वकील सुधा में पंडित प्रतापनारायण मिश्र के उद्योग की बड़ी प्रशंसा करने की थी।" यह अनुमान सत्य हो सकता है कि इस संस्था का नाम "नाट्य-समाज" रहा होगा। "मिश्र जी स्त्री और पुरुष दोनों का अभिनय पूर्ण सफलता के साथ करते थे। पर स्त्री के पात्रों के अभिनय में अधिक दक्ष थे। कहते हैं कि एक बार इन्हें स्त्री का पार्ट करना था और उसके लिए इन्हें मूँछ मुड़वाने के लिए अपने पिता जी से आज्ञा लेनी पड़ी थी।"^३

- १- शिवपूजन सहाय रचनावली -- खंड ३, पृ० १६५। गुन्थावली प्रथम भाग, पृ० २०५।
 २- डा० विजयशंकर मल्ल -- पं० प्रतापनारायण मिश्र : जीवन और साहित्य, पृ० १५१।
 ३- सुरेशचन्द्र शुक्ल -- पं० प्रतापनारायण मिश्र जीवन और साहित्य, पृ० १५१।

सन् १८८५ ई० में यहाँ 'भारत एंटरटेनमेंट क्लब' की स्थापना हुई और उपर्युक्त संस्था शिक्षित हो गयी। 'भारत एंटरटेनमेंट क्लब' द्वारा उर्दू का 'जंगम-ए-बदी' नाटक दो बार प्रस्तुत हुआ। पारसी शैली पर आधारित होने के कारण पंडित प्रतापनारायण मिश्र इस संस्था के विरोधी हो गए। इसी बीच इस संस्था के सदस्यों में वापसी वैमनस्य के कारण दो नाट्य-मंडलियों की स्थापना हुई। पहली एम०२० क्लब और दूसरी श्री भारत मनोरंजनी सभा।

एम०२० क्लब द्वारा औक नाटक अभिनीत हुए। सन् १८८८ ई० में गोरक्षा विषयक नाटकों का अभिनय-विवरण प्राप्त हुआ है। श्री भारत मनोरंजनी सभा ने मिश्र जी का 'कलि प्रवेश' और 'छठी हमीर', पं० देवकीनन्दन त्रिपाठी का 'जयनार सिंह की' तथा पं० अम्बिकदत्त व्यास का 'गौ संकट नाटक' खेला था। इन अभिनयों के सन्दर्भ में मिश्र जी ने ब्राह्मण में लिखा है -- "एधर श्री भारत मनोरंजनी सभा ने २६ नवम्बर को 'छठी हमीर' और 'जयनार सिंह की' तथा २८ नवम्बर को 'कलि प्रवेश' गीतरूपक एवं गौ-संकट रूपक खेला था, जिसकी प्रशंसा तो अपने मुंह मियां मिट्टू बनना है, क्योंकि इस पत्र के सम्पादक ने भी अभिनय में भाग लिया था और दोनों नाटक भी उसी के लिखे हुए हैं।" ^१ राय देवीप्रसाद पूर्ण ने २ दिसम्बर १८९६ ई० में 'रसिक मंडल' की स्थापना की जिसने नाट्याभिनय में योग प्रदान किया। पूर्ण जी स्वयं गांव में होने वाली रामलीला के नाट्याभिनय में कोई न कोई भूमिका निभाते थे। इसके अलावा 'विक्रमनाट्य समिति' एवं 'विजय नाट्य समिति' के अभिनयात्मक कार्यों का विवरण भी उपलब्ध होता है। 'पुरु-विक्रम' नाटक में नाट्यकार श्री श्री शालिग्राम ने लिखा है कि 'वैष्णो संहार नाटक' कानपुर में घेने अपने नेत्रों से देखा ^२ किन्तु उन्होंने नाट्यसंस्था, रंगशाला आदि का कोई उल्लेख नहीं किया।

१- ब्राह्मण -- सं० ४, सं० ४-५, सन् १८८७ ई०।

२- शालिग्राम -- पुरु विक्रम नाटक -- पृ० ८।

बलिया रंगमंच

भारतेन्दुगान बलिया भी रंगमंच के विकास में अग्रणी रहा है। 'बलिया नाट्य समाज' ने सन् १८८४ ई० के नवम्बर मास में ददरी मैदान के अवसर पर भारतेन्दु की आमंत्रित किया था। इस अवसर पर 'सत्य हरिश्चन्द्र' और 'नीलदेवी' नाटकों का अभिनय किया था। 'सत्य हरिश्चन्द्र' में भारतेन्दु ने हरिश्चन्द्र की भूमिका निर्वह की थी।

बलिया से काशी वापस आने के लम्बा दो मास उपरान्त भारतेन्दु स्वर्ग-वासी हो गए। शोकोद्धार व्यक्त करते हुए बलिया के नाट्यकार पं० रविदत्त शुक्ल ने लिखा था -- "हम बलिया निवासियों के हृदय पर इसका अत्यन्त विशेष-तर है क्योंकि हम लोगों का अग्रगण्य और आग्रह देखकर बाबू साहब ने शरीर धूषित अस्वस्थ होने की अवस्था में भी अपने स्वभाविक शील और सच्च दयालुता से द्रवीभूत होकर यहां आना स्वीकार किया था और गत ददरी मैदान में विराजमान होकर यहां 'बलिया नाट्य समाज' को जो इस समय नया स्थापित हुआ था, बड़ी सहायता दी। सत्य हरिश्चन्द्र और नीलदेवी का अभिनय ऐसी उत्तम रीति से कराया गया कि सब देखने वाले मोहित हो गए। श्रीमान डी०टी० रौबर्ट्स साहब बहादुर मजिस्ट्रेट जिला और अन्य साहब और मेम लोग, जो नाट्यशाला में कौतुक देखने आए थे, बड़े प्रसन्न हुए थे और बाबू साहब की बड़ी सराहना की थी। श्रीमान रौबर्ट्स साहब ने यहां तब कहा कि प्रधान अंग्रेजी के कवि शेक्सपियर के नाटक ग्रंथ भी बाबू हरिश्चन्द्र लिखित 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक की बराबरी नहीं कर सकते।"^१

'कुं की यात्रा' शीर्षक लेख में बाबू गोपाल राम मल्हारी ने प्रसंगवश उल्लेख किया है -- "बयालीस वर्ष पहले की बात है, जब काशी में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने बलिया में सत्य हरिश्चन्द्र नाटक स्वयं हरिश्चन्द्र बनकर रखा था,

१- पं० रविदत्त शुक्ल -- भारत जीवन, भाग-१, बंक ४६, फरवरी, १८८५।

जिसमें हिन्दी के सुलेखक, 'दुःखिनी बाता' के लेखक बाबू राधाकृष्णादास मरिहै हिन्दी लेखक और रविदत्त शुक्ल जैसे कवि ने अभिनय किया था। उस समय पर्दा और सीनों का सुंदर जमाव नहीं था, लेकिन जो कुछ स्टेज उस समय बना था -- बजाज के कपड़े तानकर जो काम भारतेन्दु ने कर दिखाया, उसकी मस्जिमा यूरो-पियन लेडियों तक ने गायी थी। उस समय के क्लब्सर साइब की मेम ने जासुओं से भरा रुमाल निचोड़कर जब साइब की मारफत भारतेन्दु जी को आग्रह किया था कि रानी शैब्या का श्मशान विलाप अब धीरे-धीरे बुझा रहा है -- चीन बदला जा रहा है पर 'सत्य हरिश्चन्द्र' बने हुए भारतेन्दु ने स्वयं जीवर एकट किया था और दर्शक मण्डली में करुणा के मारे ब्राहि-ब्राहि मच गई थी। ... पात्रों का सुंदर उच्चारण हमने उसी समय हिन्दी में नाटक स्टेज पर सुना था।^१ यही कारण है कि भारतेन्दुसुनि नाटक लोकप्रिय हो सके हैं। इस नाट्य संस्थान द्वारा सम्पन्न नाट्याभिनय का विस्तृत विवरण उपलब्ध नहीं हो सका है किन्तु इतना तो स्पष्ट है ही कि उपर्युक्त अभिनय द्वारा बलिया का लोक-मानस रंगमंच के प्रति समर्पित हो गया था। इस सभा में भारतेन्दु ने जो भाषण दिया था, उसका ऐतिहासिक महत्व है। भारतेन्दु ने स्वदेश पर सरल भाषा में प्रभावशाली व्याख्यान दिया था। व्याख्यान को रोचक बनाने के लिए इतिहास की कथाएं, चुटकुले आदि का भी प्रयोग किया था। "चारों ओर दरिद्रता की आग लगी है।" उनके इस एक वाक्य से उन व्याख्यान की छवि स्पष्ट है। उन्होंने कहा था -- "अपनी सराबियों के फल कारण को खोजो। कोई धर्म की आड़ में, कोई सुख की आड़ में, कोई देश की बाल की आड़ में, कोई सुख की आड़ में हिंसे हुए हैं। उन चोरों को वहां से पकड़-पकड़ कर लाओ। उनको बांध-बांध कर कैद करो। हम इससे बढ़कर क्या कहें कि जैसे तुम्हारे घर में कोई पुराना व्यभिचार करने आवे तो जिस क्रोध ने उसको पकड़कर मारींगे और जहां तक तुम्हारे में शक्ति होगी, उसका सत्यानाश करोगे। उसी तरह

इस समय जो-जो बातें हमारे उन्नति-पथ की माँटा हों, उनकी जड़ खोदकर फेंक दो। कुछ मत डरो।^१ स्पष्ट है कि अपनी इस विचारधारा द्वारा वे लोकचेतना को प्रबुद्ध करना चाहते थे। नाट्य-प्रदर्शन के अवसर पर जहाँ लोक-प्राणी का समूह हो, वहाँ ये विचार क्लिष्ट प्रभावी रूप से चेतना का परिष्कार कर सकते हैं, इसका सख्त ही अनुमान लगाया जा सकता है।

बिहार-रंगमंच

दामोदर शास्त्री सप्रे द्वारा सन् १९७२ ई० में बिहार में रंगमंच की स्थापना हुई थी। इसके विकास में पं० केशवराम मट्ट का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। सन् १९७६ में उन्होंने 'पटना नाटक मंडली' की स्थापना की। मट्ट जी कृत 'शमशाद सीसन' नाटक का अभिनय बिहार-बन्धु प्रेस के अस्थायी रंगमंच पर १९७६ ई० में हुआ था। 'बिहार-बन्धु' ने लिखा था -- 'पहले पइल बिहार-बन्धु हापासाने में यहाँ के सम्य और शिक्षित रक्षकों ने अभिनय देख कर बड़ी संतुष्टता प्रकट की थी, बल्कि इस प्रान्त में नाटक का स्थान उसी वक्त लोगों को हुआ था।'^२

भारतेन्दु युग में पटना के उपरान्त वारा के श्री जेनेन्द्र कुमार ने जो स्वयं नाटककार और अभिनेता थे, एक जैन नाटक मंडली की स्थापना की थी। धीरे-धीरे यह नाट्य-मण्डली एक सार्वजनिक नाट्य-मंडली में परिवर्तित हो गई। जेनेन्द्र कुमार कृत कलि कौतुक, प्रद्युम्न चरित आदि का सफलतापूर्वक अभिनय किया गया।

बिहार के दुमरांव नरेश महाराज राधाकुमार सिंह काशी नरेशों की भाँति सांस्कृतिक अभिरुचि के थे। भारतेन्दु के जीवन काल में ही सत्य हरिश्चन्द्र तथा जंघेर नगरी नाटकों का अभिनय दुमरांव दरबार में हुआ था।

१- डा० रामविज्ञान शर्मा -- भारतेन्दु युग, पृ० ४६।

२- बिहार बंधु -- दिसम्बर सन् १९८४ ई०।

मध्यप्रदेश रंगमंच

बिहार की भांति ही मध्यप्रदेश भी नाट्य-चेतना से प्रभावित रहा । मध्यप्रदेश में हिंदी नाट्य परंपरा का समारम्भ भारतेन्दु काल से हुआ था । 'भारतेन्दु युग' में इलीसगढ़ में एक नाटक मंडली की स्थापना हुई थी, जिसमें रंग-मंचीय परिपाटी के विकास में विशेष योगदान दिया । इस मंडली ने अनंत राम पांडे के 'कपटी सुनि' नाटक और मालिक राम त्रिवेदी के 'रामराज्य वियोग' एवं 'प्रबोध-चन्द्रोदय' नाटक को चमत्-सुलभ बनाया । जबलपुर निवासी खिलावन लाल ने प्रेमसुंदर तथा नरसिंखुर निवासी गणपति सिंह ने 'सत्योदय' नामक नाट्य कृतियों का की सृष्टि की ।^१

भारतेन्दु युग में अनेक स्थानों पर नाट्य-प्रस्तुति की सूचना उपलब्ध हुई है, किन्तु नाट्यसंस्थानों का विवरण अप्राप्य है । भारतेन्दु की 'नील देवी' का मंचन जलिया, बागरा, कानपुर तथा काशी में हुआ था । लखनऊ तथा बाराबंकी में भी नाट्य-संस्थाओं की स्थापना हुई थी, किन्तु उनके पूर्ण विवरण उपलब्ध नहीं हैं ।

भारतेन्दु द्वारा प्रवर्तित रंगमंच ने सम्पूर्ण हिन्दी क्षेत्र को जितनी न जितनी प्रकार प्रभावित किया और विद्वज्जनों का ध्यान साहित्य की इस विधा की ओर तेजस्विता के साथ बाधुष्ट हुआ । उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि हिन्दी रंगचेतना का प्रभुत्व तत्कालीन समस्त सांस्कृतिक स्थानों में हो गया था । यह रंगचेतना के विकास का प्रारम्भिक युग था वतः नाटककार और रंगमंची नाट्यशाला निर्माण एवं रंग-तकनीक के विकास की अपेक्षा अभिनयपद्धति की ओर अधिक सज्ज रहें ।

भारतेन्दुयुगीन रंगमंच के विकास की इस कथा के उपरान्त यह उचित होगा कि उस युग के नाटकों में प्रयुक्त लोक रंगमंच के तत्वों का विश्लेषण किया जाए । इस विश्लेषण में हमें यह स्पष्ट करने की चेष्टा की है कि रंगमंचीय तत्वों के

१- डा० लक्ष्मीनारायण दुबे -- मध्यप्रदेश संदेश, १७ फरवरी, १९६८, पृ० ८ ।

प्रति भारतेन्दु युग के लेखकों की क्या धारणाएं रही हैं तथा नाटकों के अन्तर्गत उनका निर्वाह किस प्रकार से हुआ है। इससे ही सुगमतापूर्वक स्पष्ट हो सकेगा कि भारतेन्दु युग का रंगमंच कितना लोकोन्मुख रहा है ?

भारतेन्दुयुगीन नाट्य-साहित्य में लोक रंगमंच के तत्त्व

भारतेन्दु-युगीन नाटककारों का अभिमत रहा है कि नाटक अभिनेय होना चाहिए। भारतेन्दु जी का 'नाटक' निबन्ध पर्याप्त अभिनय संकेतों से परिपूर्ण है। यही कारण है कि 'भारतेन्दु के नाटक संबंधी विचारों की अमुंज गुजराती के प्रसिद्ध नाटककार और नाट्याचार्य नथुराम सुंदर जी शुक्ल के 'नाट्यशास्त्र' में भी मिलती है, जिसमें कई स्थलों पर भारतेन्दु कृत इस निबन्ध के उद्धरण दिए गए हैं। इससे सिद्ध होता है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने न केवल हिन्दी क्षेत्र में बल्कि हिन्दीतर क्षेत्रों में भी नाट्याचार्य के रूप में यथेष्ट प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली थी।^१

भारतेन्दुयुग के नाटककारों की लोकदृष्टि

पं० शालिग्राम सम्भू शास्त्री अपने नाटक 'लावण्यमती सुदर्शन' में दर्शकों की अनिवार्यता को स्वीकार करते हुए प्रस्तावना में लिखते हैं -- "नाटक रचिबो तो भलो, जब रीकें सब लोग, हत उत मुंह तकते रहै, आनन्द और वियोग।" पं० बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमधन' ने 'भारत सौभाग्य नाटक के उपक्रम' में

१- डा० अज्ञात -- बंगला, मराठी और गुजराती के संबंध में हिन्दी मंच का अध्ययन, पृ० ८।

लिखा है -- "जब तक अभिनय न हो नाटक से क्या फल होगा ।

पं० बालकृष्ण भट्ट के 'वेणु संहार' में सूत्रधार कहता है -- "बहा ! पंडित-मंडिता यह सभा कैसी शोभा दे रही है । जैसे विकसित अरविन्द पर मधुलोलुप वंचित नागरिकों का झुंड आकर सुस्थिर हो बैठा रहे, वैसे अभिनय-रसिक ये सुजन महोदय आज यहाँ हकट्टे हुए हैं तो उचित है कि गुण लोभी इन सुजनों को अपने तौर-तरीक वाह्य नाट्यमान से ऐसा जुभावे कि सब लोग प्रसन्न हो जायें । अच्छा, तो आज कौन से नये नाटक का अभिनय उचित होगा [थोड़ा ठहर कर याद कर] हम तो भूल ही गए थे, अच्छी याद आई, हाल ही में हिन्दी प्रदीप के सम्पादक महोदय महाशय ने एक नया नाटक तैयार कर हमें दिया है । वह इस समय के लोगों की रुचि के बहुत ही अनुकूल होगा । कल उसी के लिए तैयार होने को अपने साथियों से कहें ।"

भट्ट जी के 'जैसा काम वैसा परिणाम' का सूत्रधार भी अभिनय से संतुष्ट प्रदान करने की बात कहता है -- "सूत्रधार [नटी से] आये ! तुम बड़ी भाग्य-वती हो जो ऐसे ऐसे प्रतिष्ठित, परम सम्य, धनीमानी लोगों की सभा आज तुम्हारे अभिनय को देखने को एकत्र हुई है । उन्हें यदि तुम अपने गान के तान से रिभाओगी तो यथोचित सम्मान पाओगी । प्रिये ! यह मंडली प्रायः नव-शिक्षित युवा पुरुषों की है । ऐसे लोग बहुधा हास्यरस के बड़े रसिक होते हैं, ऐसे कोई हास्यरस प्रधान अभिनय से उन्हें तृप्त करे ।"

भट्ट जी ने हिन्दी प्रदीप में विचार व्यक्त किया है कि "जो देश सम्यता की जितनी ही अंतिम सीमा को पहुँचता है, वहाँ उतना ही अधिक नाटकों का प्रचार पाया जाता है ।" अतएव देश के सांस्कृतिक विकास के लिए नाट्य-रचना और प्रदर्शन की अनिवार्यता को भारतीय-मुद्रागत नाट्यकारों ने स्वीकार किया था ।

अनन्त राम पाण्डे के 'कपटी मुनि नाटक' का सूत्रधार कहता है -- "बाहा ! आज का भी समय कैसा मनोहर है । तिस पर इतने प्रिय बन्धुजों का सहर्ष समा-गम । क्योंकि हो, नाटक का नाम ही ऐसा सुम्बक है कि यह एक बार बड़े से बड़े

सकान्तवासी उदासी के मन को भी खींच लेता है, फिर देश द्वितीय संसारि-
जीवों की इतनी भीड़ हुई तो क्या आश्चर्य !! अह ह, धन्य है उस सर्वशक्ति-
मान परात्पर परमेश्वर को कि जिसकी कृपा से अब लोगों का मनोभाव बहुत
सुख सुधर गया और भरोसा है कि यह रोग ही उतरोकर सुधरता ही जाएगा ।
यही विचार नाटककार ने भूमिका में व्यक्त किया है -- "सिद्धांत मंडली को
यह मलीभांति विदित है कि नाटक, उपन्यास आदि लिखने का मुख्य उद्देश्य
यह है कि उनसे लोगों का चरित्र संशोधित होकर समाज तथा देश का मंगल हो ।
परन्तु जितने काल में उपन्यास आदि एक प्रौढ़-बुद्धि मनशील पाठक का चित्त
अपनी अकर्षक आकर्षण कर सकते हैं उतने वा उससे अल्पकाल में नाटक दर्शक
समाज की मनोवृत्ति अनायास तदाकार करने में समर्थ हैं । अतः मेरी अल्पबुद्धि में
सम्प्रति औरों की अपेक्षा नाटक अधिकतर उपयोगी जान पड़ता है । ... अतः
मूल आख्यान तुलसीकृत रामायण में आबाल, वृद्ध वनिता सभी पढ़ते, सुनते तथा
जानते हैं ।" अम्नकी मंगल-

जानकी मंगल की भूमिका से नाटककार पं० शीतलाप्रसाद त्रिपाठी की
रंग-बान्दीलन के प्रति जागरूकता और वायित्व की वैतना का स्पष्ट संकेत
प्राप्त होता है । "यद्यपि यह नाटक संस्कृत के बड़े बड़े नाटकों की उत्तमता
और श्रेष्ठता को नहीं पहुँच सकता परन्तु उस विधा का प्रचार और ऐसी
लीला का अभिनय इस देश में आपाततः उन्मूलित हो गया, यहाँ तक कि लोग
जानते तक नहीं कि नाटक क्या काव्य और कौन वस्तु है और न उन्हें यही
यथोचित ज्ञान है कि संस्कृत में थोड़े से नाटक जो काल की गति से शेष रह
गये हैं वे कौन-कौन से परमोत्कृष्ट गुण विशिष्ट हैं अतः हेतु मैंने इसका निर्माण
हिंदी भाषा में किया । आशा है कि यह रसिक जनों की मनोरंजक और
सर्वसाधारण लोगों को आनन्ददायक हो ।"

"कल्पवृक्षा नाटक" में लाल सङ्ग बहादुर मल्ल ने स्पष्ट किया है -- "इन
दिनों देश की कुछ सुदशा और विषादवाह उसमें भी नाटकों पर रसिक जन की
विशेष रुचि और पूर्वाजों के चरित्र जानने की अभिलाषा देखकर नाटक बनाने
का उत्साह द्वितीया की चंद्रकला के समान दिन-दिन बढ़ता जाता है । आगे

नाटककार ने लिखा है कि, "यहाँ के ग्रामीण मनुष्य तथा छोटे-छोटे बालक और स्त्रियाँ तक नाटक देखने को टिड्ढिड्ढल की तरह टूट पड़ते हैं।"

'रामाभिषेक नाटक' की भूमिका में नाटककार रामगोपाल विद्यांत ने लिखा है -- "इस समय तक लखनौस्थ विद्यांत नाट्यशाला में बंगला भाषा में नाटक का अभिनय होता है, वह अन्देशीय महज्जनों की समझ में नहीं आता, सुतरांग उन लोगों को विशेष आनन्द प्राप्त नहीं होता, इस कारण सर्व-जनों के मनोरंजनार्थ नागरी भाषा में अभिनय करने के लिए इस पुस्तक का अनुवाद किया।"

'प्रयाग रामागमन' में 'प्रेमघन' जी ने नाट्यरचना और उसकी अभिनयात्मक उपादेयता का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है -- "प्रयाग की युक्तप्रांतीय महाप्रदर्शनी में सहृदयों के मनोरंजन और उत्तुल्लसदनार्थ स्थानिक सुप्रसिद्ध प्राचीन घटनाओं का ऐतिहासिक दृश्य भी दिखाना निश्चित हुआ और उसका भार नाट्यकला में परम प्रवीण प्रयाग युनिवर्सिटी के ला कालेज के प्रिंसिपल श्रियुक्त मिस्टर जार के० सौराब जी० एम०ए० बैरिस्टर हेट ला को तौपा गया।... श्री रामचन्द्र महाराज का बनयान्ना में प्रयाग जाना और मुनिराज नरदाज का अतिथि होना, जो यहाँ की सर्वप्रधान घटना थी, उसके रूपक रचना के लिए मुझसे अनुरोध किया गया।... यह ग्रंथ उक्त अवसर की लीला से कुछ बड़ा है, क्योंकि उसमें कथा के इतने प्रसार की आवश्यकता न थी, तो भी मैंने यह समझ कर कि इतना परिश्रम केवल एक उसी अर्थ अवसर के अर्थ अलम् न होकर अन्य के अर्थ भी उपयुक्त हो और सामान्य रीति से पुनः अभिनय के योग्य रहे, इससे कुछ विस्तार दिया।" सूत्रधार और नटी के माध्यम से नाटककार शिव-नन्दन सहाय ने 'कृष्ण सुवामा नाटक' में कहा है -- "अ हा हा ! आज क्या आनन्द हुआ है। नाटक दर्शक जनों का सघन वृन्द आया है। इन्हें महाशयों ने नाट्यकर्ताओं के उत्साह को बढ़ाया है। इसी से चित में और उमंग आई है, बढ़ाई है, बढ़ाई है। वहाँ सुख सगनी रजनी आई पर नटखटी नटी अब तक न आई, अच्छा तो क्या हुआ आती होगी अपनी चटक मटक बनाती होगी।"

[नटी कहती हुई जाती है] -- नहीं आई, नहीं आई की धुन लगाई है, आज कौन-सी वस्तु पड़ी पाई है। इसी प्रकार डामोदर शास्त्री सप्रे के 'बालकांड' में नटी कहती है -- "भारत नवीन वस्तु में ही लोगों का अंतुराग रहता है, ऐसा कुछ नियम नहीं है। हाँ, इतना ही मात्र अनुबंधान रखना बन चाहिए कि वही पुराणी वस्तु नये ढंग से दिखाई जाय।" अरण्यकाण्ड में सप्रे जी ने निदेश दिया है कि सर, लक्ष्मण, सैन्यगण [इत्यादि] उक्ति वा समरभाव राम की अन्तिम उक्ति के साथ होना चाहिए। लेख में कई एक विषय आगे पीछे होते हैं। परन्तु लेखने वालों को पात्र के आशय और स्वाभाविक चैष्टा पर ध्यान देकर अनुसार लोकव्यवहार में अपरिहास्य ऐसा अभिनय करना चाहिए क्योंकि सिखाई हुई और बंधा हुआ लेखक कहां तक काम देगा।"

'प्रेमसुंदर' नाटक का सूत्रधार कहता है -- "प्यारी यह तुम्हारा प्रेम है यह कहनावत कदाचित् किसी मूर्ख मनुष्य से तुमने पुन ली होगी, कोई बुद्धिमान मनुष्य कभी ऐसा न करेगा ॥ क्या तुमने महानारत में यह वृत्तान्त नहीं सुना जहाँ यादव राजकुमारों ने वज्रनाम के पुर में जाकर कावेर रम्भा मित्रार नामक नाटक खेलना था और तुम्हारे को कृष्णचन्द्र जी ने नाटक खेलने की आज्ञा दी थी और फिर यदि नाटक बुरा समझा जाता तो इतने बड़े-बड़े कवि कालिदास इत्यादिक जिनके समान गुणवान आजकल देखने में वो क्या सुनने में नहीं आते, क्यों नाटक बनाते। आजकल अंग्रेज लोगों की में देख लो, जिनने अपनी तीक्ष्ण बुद्धि द्वारा ऐसे ऐसे कार्य किये, जो कोई २ समय सरलता से नहीं समझ सकते, उनने भी नाटक को बुरा न समझा, देखो शेक्सपियर के नाटक कहां-कहां खेले जाते हैं, जिनकी बड़े बड़े पंडित प्रशंसा करते हैं। इन बातों से अब तुम्हें मलीमांति विश्वास हो गया होगा कि नाटक को वही मनुष्य बुरा कहेगा जिनकी बुद्धि में कुछ प्रेम पड़ा हो, वही मनुष्य बुरा कहेगा, जो उसका गुण नहीं जानते, सो यह ठीक ही है जो मनुष्य जिस वस्तु का गुण नहीं जानते वे उसे बुरा कहेंगे ही।"

पं० शालिग्राम वैश्य ने 'मोरध्वज' नाटक की भूमिका में लिखा है --
 इस नाटक के लिखने से मेरा यह अभिप्राय है जो हमारे प्राचीन राजे धर्म
 धारण करते थे -- ऊँ उस समय की इस समय से मिलाने से महान अंतर विदित
 होता है, अतएव इस समय वचन बज्जता, वीरता, शस्त्रविद्या, ताँ मारत्वर्ष
 से सर्वत्र नष्ट हो गई, ऊँ दिन ब दिन रही नहीं भी नष्ट होती चली जाती
 है। अब आशा करता हूँ कि इस नाटक को देखने से कुछ कुछ मनुष्य अपने पुरुषार्थों
 के कर्तव्य ऊँ वचनबन्धता को स्मरण कर किञ्चिन्मात्र तो उनके लालन-पालन
 में कटिबद्ध होंगे तो उस समय मेरा मनोरथ ऊँ परिश्रम सफल होगा।"

'ब्रौपदी वस्त्र हरण' में नाटककार रायप्रसूताल ने लिखा है -- "पंडित
 ज्वाला प्रसाद जी का हिंदी में रचा हुआ 'वैष्णो संहार' नाटक मेरे देखने में
 आया इस नाटक को पढ़कर मेरी यह इच्छा हुई कि पांडवों की जिन प्रतिज्ञाओं
 के पूर्ण होने का वृत्तान्त नारायण भट्ट कवि ने अपने इस नाटक के द्वारा
 वर्णन किया है उन प्रतिज्ञाओं के होने के समय का वृत्तान्त भी नाटक ही के
 रूप में लिखा जाए जिससे स्वदेशीयजनों को यह लाभ होगा कि वह पहले इस
 नाटक को पढ़ेंगे और फिर इस 'वैष्णो संहार' नाटक को देखेंगे तो उनको
 सारी कथा महाभारत से भारी गंध को देखने का परिश्रम किए बिना सरलता
 के साथ मालूम हो जाएगी.... मैंने इस नाटक को ऐसी सरल हिंदी भाषा में
 लिखा है कि यदि इस नाटक का खेलने का कोई विचार करें तो उसकी भाषा
 सबके समझ में आवे।"

"होतिकादर्पण" नाटक में नाटककार शिवराम पांडे वैद्य ने लिखा है --
 "माध्याँ आज हम आपके सम्मुख वह क्षेत्र दिखाते हैं जिससे यदि आपमें कुछ तेश
 बुद्धि का है तो अवश्य आपको सिद्धा ग्रहण करनी चाहिए।"

'सरस्वती' नाटक में पं० दुर्गाप्रसाद मिश्र ने लिखा है -- "आजकल के
 साहित्याचार्यों ने इस देश के साहित्य की अंग्रेजी रीतिमय कर डाला है और
 जो प्राचीन ग्रंथ हैं, उन्हें ये लोग कहीं बेर देत चुके हैं, तुम्हें स्मरण होगा कि
 हम लोगों के परमाराध्य हिन्दी साहित्य के जन्मदाता माननीय प्यारै

हरिश्चन्द्र ने अम्बुकी राजा की थी कि जेल हमारे ही नाटकों को लेकर दूसरे उत्साहियों के उत्साह को भंग न करना, वरन् बीच-बीच में उन लोगों को प्रोत्साहित करने के लिए उन लोगों के बनाए नाटकों का भी अभिनय अवश्य करना। अब तुम्हीं कहो आज कौन सा खेल खेला जाए ?

भारतेन्दुयुगीन नाटकों से उद्धृत उपर्युक्त अंशों से यह अनुमान सख्त ही लगाया जा सकता है कि उस युग के नाटककारों की लोकदृष्टि अभिनय के सन्दर्भ में अत्यन्त प्रसार और व्यापक रही है। वस्तुतः रंगमंचीय तत्वों का प्रयोग उनके लिए लोकदृष्टि के अनुसार स्वभाविक हो गया था।

भारतेन्दुयुगीन रंगमंचीय लोक-उपकरण

रंगमंच की सम्पूर्ण रंग-तकनीक को ध्यान में रखते हुए उसके निम्नलिखित अंश निर्धारित किये जा सकते हैं :--

- १- रंगशाला की व्यवस्था
- २- पात्रों का अभिनय
- ३- ध्वनि, संगीत एवं गीत व्यवस्था
- ४- प्रकाश व्यवस्था

अतएव भारतेन्दुयुगीन नाटक साहित्य में अभिव्यक्त रंगमंचीय लोक-उपकरणों का विश्लेषण उपर्युक्त क्रम में से करना उचित होगा।

१- रंगशाला की व्यवस्था

भारतेन्दुयुगीन नाटकों के लोक-रंगमंचीय उपकरणों के विवेचन में सर्वप्रथम रंगशाला के स्वरूप का प्रश्न उपस्थित होता है। रंगशाला के संबंध में जो विवरण 'नाट्यशास्त्र' में उपलब्ध हैं, उनसे तीन प्रकार के तीन प्रकार की रंग-

शालाओं का उल्लेख मिलता है । प्रथम प्रकार की रंगशाला विकृष्ट कहलाती थी, वह जंढाकार और लम्बाई में एक साँ जाठ हाथ होती थी । ये नाट्य-शालाएं देवताओं के अधिभूत थीं । दूसरे प्रकार की रंगशाला चौसठ हाथ लम्बी और बत्तीस हाथ चौड़ी होती थीं, किन्तु थी यह भी जण्डाकार । यह रंगशाला नरेशों की थी । तृतीय प्रकार की नाट्यशाला समभुज त्रिकोणाकार होती थीं । इसकी प्रत्येक भुजा बत्तीस हाथ लम्बी थी । यही गृहस्थ नागरिकों की रंगशाला थी ।

भारतेन्दु-युग में तीसरे प्रकार की रंगशाला का स्वरूप उपलब्ध होता है, जो कि लोकमानस का प्रतिनिधित्व करती है । प्राचीन युग में दर्शकों का नाट्यशाला में स्थानगृहण करने का क्रम-निर्धारण आगे से पीछे की ओर रहता था । सबसे आगे ब्राह्मण और सबसे पीछे शूद्र बैठते थे । भारतेन्दु युग में इस प्रकार की व्यवस्था का कहीं भी उल्लेख नहीं है । अतः स्पष्ट है कि इस युग के नाटककार जाति एवं रंग के भेदभाव को नहीं मानते थे । सम्पूर्ण मानव-जाति के प्रति उनका समभाव था । अभी तक के प्राप्य विवरणों में काशी का 'नाच-घर' और इलाहाबाद का 'रेल्वे थिएटर' ही भारतेन्दु-युगिन रंगशाला कही जा सकती हैं । रंगमंच के विकास में इन रंगशालाओं का ऐतिहासिक महत्त्व रहा है ।

प्रायः यह देखा गया है कि जब किसी भाषा के साहित्य में नाट्य-रचना अधिक हुई है, तो उसका प्रमुख कारण नाटककार के समक्ष उपस्थित रंगशाला ही रही है । उसी के स्वरूप का अध्ययन करके नाटककारों ने नाट्य-रचना की है क्योंकि नाटक और रंगमंच का तात्कालिक सम्बन्ध है । नाट्य-रचना के समय नाटककार के मानस में प्रचलित रंगमंच के स्वरूप का विम्ब सहज रूप से उपस्थित रहता है ।

भारतेन्दुयुगिन नाटककारों के समक्ष लोक-नाट्य परंपरा का एक विस्तृत रूप था, जिसका रंगमंच क्षेत्र-विशेष की विशिष्टताओं के अनुसार सादा और

सजीव होता है, यही कारण है कि इस युग का रंगमंच वादगी से परिपूर्ण है। रंगशाला के आगे का थोड़ा भाग अभिनेताओं के अधिकार में रहता था तथा सज्जागृह के दोनों दरवाजे इस भाग से संबंधित थे, जहाँ वे पात्र वा-जा सकते थे, और नैपथ्य कहते हैं। "अलंकारयिता इसी स्थान में पात्रों की वैषम्यपूर्णतादि से साजते हैं। जब रंगभूमि में आकाशवाणी, देववाणी अथवा और कोई मातृवाणी का प्रयोजन होता है तो वह नैपथ्य में ही गाई या कही जाती है।" १ शेष नीचे का भाग दर्शकों के लिए था, जहाँ लोग दरी और कुर्सी पर आसीन होते थे। "हरिश्चंद्र चंद्रिका मोहन चंद्रिका विद्यापीठ सम्मिलित पत्रिका में पट्टियाँ का उल्लेख बैठने के उपकरणों में किया गया है।" २ इसी प्रकार "हरिश्चंद्र मैग्जीन" में सुरसियाँ और बेंगों का उल्लेख प्राप्त होता है।

इन रंगशालाओं के अतिरिक्त रासलीला के रंगमंच की भाँति कुछ रंगशालाएँ भी मारतेन्दु-युग में प्रचुर रूप में विद्यमान रही हैं। यह रंगमंच सर्वथा आडम्बरहीन होता है। वह खुला हुआ होता है और कुछ सीमित साधनों द्वारा ही सज्जित कर लिया जाता है। वस्तुतः लोक-रंगमंच जन-साधारण के दैनिक जीवन की प्रक्रिया का अंग रहा है और सामाजिक उद्देश्यों को प्रकट करने का एक माध्यम भी रहा है। इसी लिए इसमें जीवन है, व्यायित्व है और है अमरता के गुण। इससे सर्वथा भिन्न नागरिक रंगमंच कलात्मक एवं सप्रयास अभिव्यक्त रहा है। नागरिक, जनसाहित्य के मध्य संतुलन न रहने पर एक कृत्रिम और दूसरा कुरु-विपूर्ण हो जाता अथवा है। मारतेन्दु युग में नागरिक साहित्य तथा लोकसाहित्य पक्षीप्त निष्ठ थे तथा साहित्य की दिशाओं को निश्चित करने वाले प्रमुख साहित्यकार दोनों में समन्वय करना चाहते थे। ३

१- रुद्र काशिकेय -- मारतेन्दु ग्रन्थावली, पृ० ७६३।

२- हरिश्चन्द्र चंद्रिका मोहन चंद्रिका विद्यापीठ सम्मिलित, खण्ड ७,
संख्या १२, पृ० १५।

३- डा० शान्तिप्रकाश वर्मा -- प्रतापनारायण मिश्र की हिंदी गद्य को
देन, पृ० ३५१।

‘परम प्रबोध विष्णु’ नाटक के संकेतों से स्पष्ट है कि उसके रंगमंच का पृष्ठ कनात का था, जो नेपथ्य को रंगभूमि से अलग करता था और उसमें संस्कृत नाट्यशैली के अनुसार रंग-सूचनाओं के लिए नेपथ्य का उपयोग किया गया था। बलिया में ददरी मैले के अवसर पर भारतेन्दु जी उपस्थिति में छुली रंगशाला में बजाज के कपड़े तानकर नाटकों का अभिनय किया गया था। उसी प्रकार लोक-जीवन की भावात्मक एकता से जीत-प्राप्त रूढ़ करने वाले स्थानीय शैली के अवसर पर नाट्याभिनय छुली रंगशालाओं पर होता रहा होगा। इस रंगमंच परंपरा द्वारा नाटककार अपने उद्देश्यों को लोकसमाज तक सम्प्रेषित करना चाहते थे।

रंगशाला के स्वरूप विवेचन के उपरान्त रंगशाला की व्यवस्था की जानकारी के लिए ‘नाटक’ निबंध सहायक है। भारतेन्दु जी ने ‘नाटक’ शीर्षक निबन्ध में लिखा है -- ‘किसी चित्रपट द्वारा नदी, पर्वत, वन या उपवन आदि की प्रतिच्छाया दिखलाने की प्रतिकृति कहते हैं। इसी का नामान्तरण अन्तः पटी वा चित्रपट वा दृश्य वा स्थान है। यद्यपि महामुनि प्रणीत ‘नाट्यशास्त्र’ में चित्रपट द्वारा प्रासाद, वन उपवन किम्वा शैल प्रभृति की प्रतिच्छाया दिखाने का कोई नियम स्पष्ट नहीं लिखा है किन्तु सुधावन करने से बोध होता है कि तत्काल में भी अंतःपटी परिवर्तन द्वारा वन-उपवन पर्वतादि की प्रतिच्छाया अवश्य दिखलाई जाती थी। ऐसा न होता तो पाँच जानपद वर्ग के अपवादभय से श्रीराम कृत सीता परिहार के समय उसी रंगस्थल में एक ही बार जयौध्या का राजप्रासाद और फिर उसी समय वाल्मीकि का तपोवन कैसे दिखलाई पड़ता, है इससे निश्चय होता है कि प्रतिकृति [सीन] के परिवर्तन द्वारा पूर्वकाल में यह सब अवश्य दिखलाया जाता था। ऐसे ही ‘अभिज्ञान शाकुंतलम्’ नाटक के अभिनय के समय सूत्रधार एक ही स्थान में रहकर परदा बंदों बिना कभी कभी तपोवन और कभी दुष्यन्त का राजप्रासाद दिखला सकेगा। ‘सुद्धारादास’ में भी कई उदाहरण इसके प्रत्यक्ष मिलते हैं। मलयकेतु रादास से मिलने जाता है, यह कहकर उसी अंक में कहते हैं कि आसन पर बैठा रादास दिखलाई पड़ा।

स्मरान से चंदनवास को लेकर बाँडाल कुछ बढ़कर पुनारता है कि भीतर कीन है ? अमात्य बाणभ्य से कही इत्यादि । अर्थात् पूर्ण के दोनों दृश्य बदलकर राधास के और बाणभ्य के घर के दृश्य दिखाया पड़े । इसी प्रकार राज-शैली पर आधारित नाटकों में नायक-नायिका कहते हैं -- "अहा देखो । यह फुलवारी बा नहीं ऐसी सुंदर है ।..." ये चित्रपट नाटक में अत्यन्त प्रयोजनीय वस्तु हैं और इनके बिना क्षेत्र अत्यन्त नीरस होता है ।

भारतेन्दु युग में पर्दों का प्रयोग अत्यधिक हुआ है । नाटक को प्रेषणिय बनाने के लिए यह सुगम और लोकचित के अनुकूल साधन है । 'सती चंद्रावली' नाटक में नाटककार ने संकेत किया है कि 'हस्त दृश्य में भीतर का पर्दा भारत-वर्ष के चित्र का अथवा जंगल का होना चाहिये ।' 'देशदशा नाटक' में निर्देश है कि 'रास्ता पदै पर दिखाना होगा ।' 'सरस्वती' नाटक में नाटककार ने पटाक्षौप का कार्य व्यवस्थापकों की अभिरुचि एवं उपलब्ध साधनों पर निर्धारित किया है । 'विद्याविनोद' नाटक की पाद-टिप्पणी में नाटककार ने निर्देश दिया है -- "स्टेज पर एक शीटा सा परदा बना दो । भीतर की और विद्या, कंवला और तड़िता के संग और बाहर की ओर डॉंगल सेन खड़े होंगे ।" इसी प्रकार अनेक नाटकों में पर्दों की व्यवस्था का समुचित निर्देश किया गया है ।

जवनिका या बाह्यपटी [ड्राप सीन] के सन्दर्भ में 'नाटक' प्रबंध में भारतेन्दु ने लिखा है -- "कार्य अनुरोध से समस्त रंग-स्थल को आवरण करने के लिए नाट्यशाला के सम्मुख जो चित्र प्रस्थापित रहता है, उसका नाम जवनिका है । जब रंगशाला में चित्रपट परिवर्तन का प्रयोजन होता है, उस समय यह जवनिका गिरा दी जाती है ।..... इस परदे पर कोई सुंदर मनोहर नदी, पर्वत, नगर इत्यादि का दृश्य वा किसी प्रसिद्ध नाटक के किसी अंक का चित्र दिखलाना अच्छा होता है ।"^१ बाह्य-पटी के उपयोग का पर्याप्त संकेत भारतेन्दु युग के नाटककारों ने दिया है ।

१- रुद्र का शिष्य -- भारतेन्दु ग्रंथावली, पृ० ७५६ ।

रंगमंचीय योजना में दृश्य-योजना विशिष्ट महत्व रखती है। नाट्यकार गभार्क के बारम्बार रंग-संकेत देता है कि मंच पर क्या-क्या वस्तु होगी और पात्र किस प्रकार अपना स्थान ग्रहण करेंगे :--

[अ] "राजा धिराज महाराज रघुराज श्री दशरथ सुवर्ण सिंहासन पर विराजमान हैं। दासगण कर-कर्मों में बमर व्यंजन लिए दधर उधर दुरा रहे हैं। एक ओर समस्त मंत्री यथासनस्थित हैं एक ओर पुरजन महाजनों की मंडली सुशोभित है और एक ओर सकलशास्त्र मंडित पंडित व ऋषियों के वृन्द आनंद से आसीन हैं, सम्पूर्ण राज समाज के राज एकत्र हैं कि इतने में बह्विध विप्रगण समा में उपस्थित हो राजमुकुट मणि को आशीर्वाद देते हैं।" १

[ब] "स्यामसुंदर का घर - सुंदर ओली बैठी है। कुंलैला छिपी लड़ी है। जबरसात और दूसरा चपराकी ये दोनों भिलकर बल्लभ और सुंदर हो घसीटते हैं दोनों हल्ला मचाते हैं।" २

[स] "स्फटिक के चौतरे पर जड़ाऊ सिंहासन बिछा है और उसके दोनों काल रत्नों की दो चौकियों पर दाहिनी ओर बृहस्पति और बाईं ओर का तिक्रिय विराजमान हैं तथा दोनों पट्टी ऊपर बांधे हुए देवतागण हाथीदांत की कुर्सियों पर बैठे हैं।" ३

[द] "मूर्ति के भीतर स्टेज के नीचे एक पात्र बैठा हो वही देवी का पाठ दोनों स्वर से कहता तथा वह स्टेज के ऊपर न होकर अदृश्य में होवेगा।..... देवी की खौसली विशाल मूर्ति घरी है। सामने एक जटाधारी योगी बैठा है।" ४

१- बंदोदीन की क्षिति -- सीता स्वयंवर नाटक, पृ० ३।

२- क्लिबन लाल -- प्रेमसुंदर, पृ० ५।

३- किशोरीलाल गोस्वामी -- नाट्य संभव, पृ० ६७।

४- गोपालराम गहमरी -- देशदशा नाटक, पृ० ३८।

दृश्य-योजना के विवरण में नाटककारों ने आपन्यासिक-शैली का भी प्रयोग किया है। जैसे :--

[अ] मुहम्मद बिन कासिम जो स्लीफा उमर की उस फौज का सेनापति है जो हिन्दुस्तान की फूले के लिए भेजी गयी थी। सिंध देश के राजा को पराजित करके सिंध नदी के किनारे लश्कर उतारे हुए है। व्यतीत रात को फतह के जश्न हुए थे और लश्कर में तरह-तरह की खुशियां मनाई गई थीं। प्रातःकाल सेनापति लेम से निकलकर दरिया के किनारे दो-चार सरस्व सरदारों को साथ लिए ठंडी हवा खा रहा है।^१

[ब] उपकारमल बंदगी करके जाते हैं। मरोसदास प्रश्नः प्रातःकाल बहुत सफाई से अर्जी लिखकर अपनी सरटी फिफ्टे इमात में लपेट इम्मामा बांध बूट चढ़ा झुबड़ी सम्हाल खुमान जी को मनाते हुए साइल के बंगले की तरफ चले। बंगले के फाटक पर पहुंच कर एक अंग्रेज की बाग की रॉस पर टकलते हुए देख कर मरोसदास, कुतारबख्श मिल्त्री से जो पास ही कुएं पर पानी भर रहा था पूछने लगे।^२

[स] भूपाल के समीप गुन्नौर के बाहर मैदान में विजयी खां की सेना के डेरे पड़े हैं। अपने डेरे के अंदर संध्या के समय पलंग पर लेटा हुआ सुखलमान प्रधान पैववान लगाए हुआ पी रहा है। हतने में दरबारी फातरा खुश-मिजाज खां बड़े अवब से सलाम करके सामने बैठता है।^३

[द] पृथ्वीराज की सेना चक्रव्यूह रचकर खड़ी है। युद्ध का बाजा बज रहा है। रणभूमि में जगह-जगह रुधिर, मांस मज्जा बिलर रहे हैं। जहां-तहां अनेक

१- काशीनाथ खत्री -- सिंधुदेश की राजकुमारियां, पृ० ७।

२- बालकृष्ण मट्ट -- निकृष्ट नांकी, पृ० ११।

३- काशीनाथ खत्री -- गुन्नौर की रानी, पृ० २७।

बहुत जल धाया और मृतक शरीर दृष्टि आते हैं। शस्त्र और भूषण वस्त्रादि रुधिर से भरी पड़े हैं। मांस-भक्षी जीव धर-उधर फिरते हैं। जयवंत की तरफ से मुनिवेशधारी केहर कंठीर बहुत से वंरागी साथ लेकर संस्र बजाता जाता है। और पृथ्वीराज की तरफ से आत्तायी संस्रध्वनि करता है... दोनों ने धनुष-बाण चढ़ा लिये। रणवाद्य के साथ नेपथ्य में त्रिदूरा राग आरंभ होती है और ताल के ऊपर पंतरा बदल कर धनुषबाण घुमाते हुए दोनों वीर घूमते हैं। बारंबार तुर्यनाद होता है।^१

इसी प्रकार के और भी अन्यासिक रंग-भंगे भारतेंदुयुग्मि नाटकों में प्राप्त होते हैं, जिससे कथा-प्रवाह के विकास में नाटककार को सहायता मिलती है।

२- पात्रों का अभिनय

भारतेन्दु-युग के अधिकांश नाटककार या तो स्वयं रंगरत्नी थे या किसी न किसी रूप में रंग काय से घनिष्ठता से सम्बद्ध रहे हैं, फलतः उनके नाटकों में सहज अभिनेयता है।

पात्रों का रंगमंच पर आवागमन और कथाप्रवाह के अनुकूल विविध आंगों से विविध भावों का प्रकाशन और कथापथ्य द्वारा स्पष्टीकरण ही अभिनय का प्रमुख अंग है। भारतेन्दु ने अपने युग के नाटककारों को अभिनय के प्रति सजग करते हुए लिखा है --- 'नाटक रचयिता को सूक्ष्म रूप से ओतप्रोत भाव में मनुष्य-प्रकृति की आलोचना करनी चाहिये। जो अनालोचित मानव प्रकृति है, उनके द्वारा मानव जाति के अन्तर्भाव सब विशुद्ध रूप से चित्रित होंगे, यह कभी संभव नहीं है, इसी कारण से कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तल' और शेक्सपियर के 'मेकबेथ' और 'हैमलेट' इतने विख्यात हो के पृथ्वी के सर्वस्थान में सकार से

से परिचरणा करते हैं। मानव प्रकृति की समालोचना करने हो तो नाना प्रकार के लोगों के साथ कुछ दिन वास करे तथा नाना प्रकार के समाज में गमन करके विविध लोगों का आलाप सुने तथा नाना प्रकार के ग्रंथ अध्ययन करे, परंतु समय में अश्वरथाक, गोरक्षाक, दास, दासी, ग्रामीण, दल्यु प्रभृति नीच प्रकृति और सामान्य लोगों के साथ कथोपकथन करे। यह न करने से मानव-प्रकृति समालोचित नहीं होती। मनुष्य लोगों की मानसिक प्रवृत्ति जिस प्रकार अदृश्य है, उन लोगों के हृदय भाव भी उसी रूप अप्रत्यक्ष हैं। केवल बुद्धि वृत्ति की परिचालना द्वारा तथा जगत के कतिपय वाङ्मय कायों पर सूक्ष्म दृष्टि रखकर उनके अनुशीलन में प्रवृत्त होता है।^१ तभी अभिनय की दृष्टि से नाटक रंगमंच पर सफलता प्राप्त करता है।

भारतेन्दु ने भारतीय नाट्य परम्परा के अनुरूप अभिनय को चार प्रभेदों में निरूपित किया है :--

- [अ] आंगिकाभिनय
- [ब] वाचिकाभिनय
- [स] आहार्याभिनय
- [द] सात्त्विकाभिनय

[अ] आंगिकाभिनय

केवल आंगिकी द्वारा जो अभिनय कार्य-साधन किया जाता है, जिस प्रकार सती नाटक में नन्दी का अभिनय है। सती ने शिव की निन्दा श्रवण कर देह त्याग दी। यह सुनकर महावीर नन्दी ने जब त्रिशूल हाथ में लेकर के रंगस्थल में प्रवेश किया, तब केवल आंगिक भाव द्वारा ही क्रोध प्रदर्शित होता

है। 'वैदिकी जिंसा जिंसा न खति' में चित्रगुप्त और यमराज, राजा पुरोहित, मंत्री, गंडकीदास, शंख और वैष्णव के प्रति क्रोध व्यक्त करते हैं, जिस समय वे क्रोध व्यक्त करते हैं, उनका चेहरा तप्तमा उठता है। 'चित्रगुप्त क्रोध से' -- ओं दुष्ट यह भी क्या मृत्युलोक की कवचरी है कि तू हमें घूस देता है और क्या हम लोग वहाँ के न्यायकर्ताओं की तरह जंगल से पकड़कर आए हैं कि तुम दुष्टों के व्यवहार नहीं जानते। जहाँ तू आया है और जो गति तेरी है, वही घूस लेने वाले की भी होगी।^१

'नेहुण' नाटक में अभिनयात्मक संकेत 'मृगुटी चढ़ाय के' कोष्ठक में विद्यमान है। इस नाटक के षष्ठ अंक में विस्तृत रंग संकेत उपलब्ध हैं। "हमि कहिके निकस्यो तब पट अंतर को खोलिके निकरी सिंगार सिंघे इंडानी और चेटी। इंडानी गुरु को प्रणाम करि के पति की ओर देखिके नीची सिर झरि रहि गई। इंड ने इंडानी की ओर देखिके नैनन में नीर भरे। इंतने में प्रविसे सूरज, चंद्रमा, अग्नि, कुबेर, वरुणा, जम, काशिकेय, कंबन-वरन, विश्वकर्मा, चित्रांगद ममेत। सबन ने गुरु को प्रणाम कियो, फेरि इंड को प्रणाम कियो। गुरु ने सबन को आसिवाँद दियो, इंड सबन को कंठलाय के मिले। तब गुरु कंबन वरन को जुनाय के।^२

'कपटी मुनि नाटक' में आंगिकाभिनय के पर्याप्त संकेत हैं। यथा -- फिर घूमकर, कुछ ठहरकर, झप-उधर घूमकर, नेपथ्य की ओर देख कर, सविस्मय, चारों ओर देखकर, हँसकर, फिर दूसरी ओर देख कर, थोड़ी देर ठहरकर, स्मरण करके, कान के पास धीरे से, नेपथ्य के भीतर जा और लौट कर, याद करके, लोगों को दिसलाकर, चौंकर, सक्रोध, हाथजोड़ कर, सुन कर सीनेन बादि। संवाद रूप में प्रयोग इस प्रकार है -- सूत्रधार -- पर हम कहते हैं, नहीं ऐसा वचन कुछ दुर्लभ

१- रुद्र का शिकेय -- भारतेन्दु ग्रंथावली, पृ० २५।

२- गिरिधरदास -- नेहुण नाटक, पृ० ६३।

है । [धूमकर। उत्तम नाटक - जिसको उत्तम नाटक कहते हैं, वही ऐसा वक्ता है, जिसने मुंह से सदैव मीठा और उपदेशपूर्ण वक्ता बह्नीत होता है । [फिर धूम कर] ।... राजा [सीढ़ी] -- हां मेरे राज्य में गो माता को दुःख है । धिक्कार मेरा राज्य धिक्कार, मेरा शासन धिक्कार, मेरा जीवन [कोतवाल तथा मंत्री से] उपद्रवों का यही कारण है, कल प्रातःकाल उसी ओर बाखेट की तैयारी करो । हाय ! मेरे शुभ राज्य में अब ऐसा घोर उत्पात, कल व्याघ्र जिंहों का निर्मूल न किया तो मैं क्या दाक्षिण्य, क्या राजा और क्या मेरा पराक्रम । कल तैयारी करो राजकाज बंद । [इतना कहकर शीघ्रता से जाया चाहता है और परदा गिरता है] १

‘सत्य हरिश्चन्द्र’ नाटक में जो स्थलों पर जांगिक अभिनय द्वारा पात्र मनोगत भावों की तीव्रता प्रदान करने में सक्षम रहे हैं । यथा --

विश्वामित्र [क्रोध से] -- सब है रे पाप पाखंड मिथ्यादान बीर ! तू क्यों न मुझे ‘राज प्रसिद्ध परांगमुख’ कहैया क्योंकि तेने तो कल सारी पृथ्वी मुझे दान दी है, ठहर ठहर देख इस फूठ का कैसा फल भोगता है, हा ! इसे देखकर क्रोध से जैसे मेरी दाहिनी मुजाशाप देने की उठती है, वैसे ही जाति स्मरण के संस्कार से बाईं मुजा फिर से कृपाण ग्रहण किया चाहती है ! अत्यंत क्रोध से लंबी सांस लेकर और बाईं उठाकर ! अरे ब्रह्मा ! सम्हाल अपनी सृष्टि को नहीं तो परम तेजपुंज दीर्घ तपोवर्द्धित मेरे आज इस असह्य क्रोध से तारा संसार नाश हो जाएगा, अथवा संसार के नाश से ही क्या ? ब्रह्मा का तो गर्व मैंने उसी दिन चूर्ण किया जिस दिन दूसरी सृष्टि बनाई, आज इस राजकुलांगार का अभिमान चूर्ण कबड़े कलूंगा जो मिथ्या अहंकार के बल से जगत में दानी प्रसिद्ध हो रहा है । २

१- अनन्तराम पांडे -- कपटी मुनि नाटक, पृ० ६३ ।

२- रुद्र काशिकेय -- मारतेन्दु ग्रंथावली, पृ० २३० ।

‘अंजना सुंदरी नाटक’ में अंजना का क्रोध आंगिक चैष्टाओं को व्यक्त करता है --

अंजना [क्रोधित होकर मिश्रकेशी से] -- अरी दुष्टनी ! तू मेरे सम्मुख क्यों खड़ी है ? निकल जा [वसंतमाला से]। पिताजी ने यह भी कह दी जो कि मिश्रकेशी को मेरे निकट न आने दें। [माथे से हाथ लगाकर रोती हुई] हाथ ! मेरा कैसा भाग्य है, पति ने अभी से तिरस्कार कर दिया। कतुं अपनी माता से तो यह वृत्तान्त कह दूँ।^१

‘द्रौपदी वस्त्र हरण’ में दुःशासन के रंगस्थल पर प्रवेश होते ही अभिनयात्मक स्वरूप साकार हो जाता है --

‘[क्रोध से भरा हुआ दुःशासन का प्रवेश]

दुःशासन [द्रौपदी से] -- हे पांचाली, हे कृष्णा ! तुमको राजा द्रुपद ने गुरु में जीता है और धर्म से पाया है अब तू लज्जा होकर उनके पास चल और कौरवों की सेवा कर ॥ [यह सुनकर द्रौपदी बहुत दुःखी होकर अपने मुँह को अपने हाथों से ढाँपकर रोती हुई राजा धृतराष्ट्र के रनवास की तरफ को भागती है और दुःशासन उसके पीछे गरजता हुआ दौड़ता है और द्रौपदी के बालों को पकड़ के खिंचता है और उसकी खिंचता हुआ समा की तरफ को ले चलता है पीछे-पीछे मदनमोहिनी रोती हुई दौड़ती है।]^२

[ब] वाचिकाभिनय

केवल वाक्यविन्यास द्वारा जो अभिनय कार्य होता है, उसे वाचिकाभिनय कहते हैं। ‘नीलकंठी’ नाटक में पागल रंगमंच पर जाता है, वह उच्चरित

१- कन्हैयालाल -- अंजना सुंदरी नाटक, पृ० २३।

२- रामप्रभुलाल -- द्रौपदी वस्त्र हरण नाटक, पृ० २१।

वाक्य-विन्यास द्वारा अभिनय की गति प्रदान करता है :-

‘मार मार मार - काट काट काट - ले ले ले - बी सी की बीबी
 तुरक तुरक तुरक -- ओ जाया जाया जाया - भागो भागो भागो [दाँड़ता है]
 मार मार मार -- और मार दे मार -- जाय न जाय न -- दुष्ट चाँडाल गो-
 भक्षी जवन -- हमारा सत्यानाश कर डाला..... [भियां के पाप जाकर अट्ट-
 हास करके] रावण का साला, दुर्योधन का भाई अमरुत के पेड़ की फोरे बनाता
 है - अच्छा अच्छा - नहीं नहीं तूने तो हमको उस दिन मारा था न ! हाँ !
 हाँ !! यही है यही - जाने न पावे मार मार ।’^१

‘अंधेर नगरी’ के बाजार दृश्य में अनेक दुकानदार अपनी दुकान की विशि-
 ष्टता की व्यक्त करते हैं :-

हलवाई कहता है -- ‘जले बियां गरमागरम । लै सेब धरती, लड्डू, गुल्लान-
 जामुन, छरमा, हुंदिया, बरफ़ी, समोसा, पेड़ा, क्वीड़ी, डालमोठ,
 पकाड़ी, घेवर गुपचुप । हलुवा हलुवा लै मोलमोल । मीथनदार क्वीड़ी
 क्वाका हलुवा गरम चमाका । धी में गरक कीनी में तरातर चासनी में
 चमाचम । लै भूरे का लड्डू जो खाय सो भी पक़्लाय जो न खाय सो भी
 पक़्लाय । रेवड़ी कड़ाका पापड़ पड़ाका । ऐसी जात हलवाई जिसके
 हलिस कीम हैं भाई । जैसे कलकत्ते के विलसन मन्दिर के भितरिए, वैसे
 अंधेर नगरी के हम । सब सामान ताजा । साजा लै साजा । टोके रेर
 साजा ।’^२

‘सुलोचना सती’ में सरदार पागल-सा होकर कहता है --

‘शान्त, शान्त देवी, शान्त देवी शान्त । नहीं, नहीं, शर्म, शर्म,
 कहाँ, कहाँ । हम केशर्मा की शर्म कहाँ । नाक रहते मैला खाने वालों

१- रुद्र काशिकीय -- भारतेंदु ग्रंथावली, पृ० १२७ ।

२- वही, पृ० १५६ ।

को शर्म कहां । गुप्त या प्रत्यक्षा रूप ने गौ हत्या करने वालों को शर्म कहां । चमड़े के व्यवसाय में रुपये बटाने वाले, विधवाँ.... अपने देवी-देवताओं तथा दीन-दुःखी भाइयों को धूले मारकर गैरों को पीर मजार गिरजवाँ ताजियाँ को पूजने वालों को शर्म कहां । देवी तुम्हारी कहना सत्य है ।^१

‘वाह’ और ‘हा’ से प्रारम्भ वाक्य में स्वतः एक प्रवाह-ता आ जाता है । ‘वाह’ कहते ही विदित हो जाता है कि किसी को उलाहना देने का उपक्रम उप-स्थित हो रहा है । चंद्रावली-नाटिका में इसकी अभिव्यक्ति हुई है :-

‘वाह प्यारे ! वाह ! तुम और तुम्हारा प्रेम दोनों विलक्षण है और निश्चय बिना तुम्हारी कृपा से इसका भेद कोई नहीं जानता, जाने कैसे ? सभी उसके अधिकारी भी तो नहीं हैं, जिसने जो समझा है उसने वैसा ही मान रखा है ।’^२

‘हा’ की अभिव्यक्ति से तो ‘चंद्रावली नाटिका’ परिपूर्ण है, किन्तु ‘हा’ का प्रयोग (शोक एवं विस्मय रूप में) ‘भारत दुर्दशा’ में अत्यधिक प्रभावकारी है --

‘हा ! मारकणों को ऐसी मोहनिद्रा ने घेरा है कि अब इसके उठने की आशा नहीं । सब है, जो जान-बूझकर सोता है, उसे कौन जगा सकता है । हा दैव ? तैरे विचित्र चरित्र हैं, जो कल राज करता था वह आज जूते में टांका उधार लमाता है । कल जो हाथी पर सवार फिरता था आज नी पाव बन-बन की धूल उड़ाते फिरते हैं ।’^३

१- बलदेव जी अग्रहरि -- सुलोचना सती, पृ० १७ ।

२- रुद्र का शिष्य -- भारतेन्दु ग्रंथावली, पृ० ५६ ।

३- वही, पृ० १५६ ।

‘अंजना-सुंदरी’ नाटक में अंजना को संवाद अभिनय-कार्य की पूर्णता प्रदान करता है --

अंजना [बाँलों में बाँसू भरकर ठंडी साँसे लेती हुई] बरि मली ! तू क्या नहीं जानती, हाथ मेरा कैसा माग्य है, अब कहाँ जाऊँ और फिसे अपना दुःख कहीं धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का, माता-पिता न जाने क्या जीचते होंगे वे अवश्य यही कहें होंगे कि कुछ हमारी कन्या में ही दूषण है जो उसका पति ग्रहण नहीं करता ।.... मनुष्य चाहें किसी ही दीन अवस्था में रहें परन्तु आपस की मित्रता से चित प्रसन्न हो तो वह दुःख दुःख नहीं मानता ।*१

‘योवन-योगिनी’ में पृथ्वीराज और मायावती के संवादों में जो तीव्रता है, वह वातावरण को वाचिकान्वय द्वारा प्रभावी बनाता है । ‘पृथ्वीराज ! रे क्या ? महम्मद के हाथ ! क्या पापिष्ट का इतना तात्त्व । जी हो ! पापी यवन हिन्दू सती का सत भ्रष्ट करेगा ? कभी नहीं, हमारे हाथ में तलवार और शरीर में प्रणम रहते हमारी भित्तारिनी का सत नाशेगा । ना, कभी ना । क्या तुम जानते हो उस दुष्ट ने मायावती को कहाँ रखा है या वह पापात्मा कहाँ है ?*२

[स] आहार्याभिनय

वैष्णभूषणादि निष्पाद्य का नाम आहार्याभिनय है । ‘सत्य हरिश्चन्द्र’ में चौबदार वा मुसाहिब जब राजा के साथ रंगस्थल में प्रवेश करते हैं, तो उनकी कुछ बात नहीं करनी पड़ती । केवल आहार्याभिनय द्वारा आत्मकार्य निष्पन्न करना पड़ता है ।

भारतेन्दु ने ‘चंद्रावली-नाटिका’ में ‘वनदेवी’ के लिए हरे कमड़े, पत्ते का

१- कन्हैयालाल -- अंजना सुंदरी नाटक, पृ० १७ ।

२- गोपालराम गहमरी -- योवन योगिनी, पृ० १२२ ।

किरीट और फूलों की माला, राधा के लिए गहरा नारंगी झुंडा और वरुणा के लिए रंग सांवला तथा लाल झुंडे पहिने का निर्देश दिया है। जो गिन के गेरुआ सारी गहना सब जनाना पहिने, रंग सांवला। मिंदूर का लंबा टीका वेड़ा। बाल छुटे हुए। हाथ में सरंगी लिए हुए। नेत्र लाल। अत्यन्त सुंदर। जब जब गावैगी सरंगी बजाकर गावैगी। "भारत दुर्दशा" में भारतपात्र फटे झुंडे पहिने, सिर पर धर्म किरीट, हाथ में टेकने की छड़ी, शिथिल अंग, निर्लज्जता-मात्रा जांधिया, सिर झुला, ऊंची चोली, दुपट्टा ऐसा गिरता-पड़ता है कि अंग झुले, सिर झुला, सानगियों का-ना वैष, भारत दुर्दश पात्र दूर, आधा फिस्तानी, आधा मुसलमानी वैष, हाथ में नंगी तलवार, मदिरा-मात्रा के लिए सांवली सी स्त्री, लाल झुंडा, सोने का गहना, पैर में घुंघरू आदि का निर्देश पाद-टिप्पणी में उपलब्ध होता है।

"सत्य हरिश्चन्द्र" नाटक में नटी के लिए महाराष्ट्री वैष कमर पर पेट्टी कसे वा मर्दाना झुंडा पहिने, पर जेवर सब जनाने; राजा चन्द्र के लिए जामा, कीट, झुण्डल और झुंडे पहिने हुए, हाथ में वज्र; कई फल का छोटा झुण्डा माला लिए हुए, द्वारपार के लिए कुज्जेदार पगड़ी, कमर, घेरदार पाजामा पहिने, कमरबंद कसे और हाथ में कसा लिए हुए, नारद भगवान के लिए धोती की लांग कसे, गाती बांधे, सिर से पांव तक बंदन का खौर दिए, पैर में घुंघरू, सिर के बाल छुटे और हाथ में बीन लिए हुए, विश्वामित्र के लिए धोती, डाढ़ी, जटा, हाथों में पवित्री और कमंडल, खड़ाऊं पर चढ़े, रानी शैव्या लहंगा, साड़ी सब जनाना गहिना, बंदी-बेना, ब्राह्मण - धोती, उपरना, सिर पर चुंदी वा सिर भर बाल, डाढ़ी, हाथों में पवित्री, तिलक, खड़ाऊं, हरिश्चन्द्र सफेद वा केसरी जामा, पंजामा, कमर बंद मर्दाना सब गहना, सिर पर किरीट वा व पगड़ी, सिर पंचतुरां, हाथ में तलवार, दुशाला वा कोई कमकता कमाल जोड़े, बांडाल के मेख में धर्म और सत्य काहा कहे, काला रंग, लाल नेत्र, सिर पर छोटे-छोटे घुंघराले बाल और उ शरीर नंगा, बातों से मतवालापन फलकता हुआ, कापालिक के वैष में धर्म गैरुद वस्त्र का काहा कहे, गेरुआ कफनी पहिने, सिर

के बाल खोले, सँदुर का बड़े चंद्र दिए, नंगी तलवार, गले में लटकाती हुई, एक हाथ में खप्पड़ जतता हुआ, दूसरे हाथ में बिमटा, अंग में मधुत पोते, नशे से जाँख लाल, लाल फूल की माला और बड़े से छड़ी के आभूषण पहिने अवतरित हुए हैं।

भारतेन्दु के पात्रों के वेश-विन्यास एवं रूप-सज्जा के प्रति पूर्णतः सज्ज रहें हैं, क्योंकि वे "अनेक वर्गों, जातियों और पेशे के लोगों की उनकी प्रधान विशेषताओं के साथ रंगमंच पर" ^१ उपस्थित करना चाहते थे। इस प्रयत्न में उन्हें सफलता मिली है।

नागरी-विलाप में देवनागरी एक उज्ज्वल वस्त्र पहने, एक छड़ी से टेक्ती हुई जाती है। यौवन-योगिनी की पाद-टिप्पणी में निर्देश किया गया है कि "सिपाहियों का वेश मुसलमानी और वस्त्र काते, सब के हाथ में तलवार होवे।" "महारास" नाटक की पाद-टिप्पणी में सूत्रधार, नटी, कृष्ण और गोपियों के वस्त्र-सज्जा का संकेत स्पष्ट रूप से किया गया है।

"सूत्रधार -- हरे व नीले साटन की कामदार जांधिया पड़े पटुके के दोनों और लटकाए अंग में किसी अच्छे लपड़े का चुस्त कुर्ता और गले में माला आदि धारण किए। नटी -- सब स्त्रियों के गहने, सुन्दर-सुन्दर महाराष्ट्री पुराणों के कमड़े पहने हुए। कृष्णचन्द्र -- सिर पर मुकुट, कानों में नग जटित कुंडल, गले में वैजयन्ती, मुक्त और फुल्लों की माला, पीताम्बर की कढ़नी और लुख मदीने गहने, हाथ में छड़ी और कमरबंद में बांसुरी लोंसे हुए। गोपियाँ-- हरित, पील, नील, वरुणा और स्वतधारी धांधरादि और उत्तम २ वस्त्र उलटे पलटे और सिर के धूषणा, गले में, कान के सिर पर, हाथ के पर में और पैर के बाजू आदि।

"महामोह-विद्रावण" में "मण्डित मुण्ड, महास्थूलकाय, एक लंगोटा लगाए,

नंग-धड़ंग, आन्तर-बाय दोनों नेत्रों से चौपट महामोह का और काशी स्थ पंडितों का ज्ञा वेण, अति सम्य और मध्यमूर्ति महामोह को भगाने वाता रूप चिद्रावण का है ।

[द] सात्विकाभिनय

स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, कंप और ऋ प्रभृति द्वारा अवस्थानुकरण का नाम सात्विकाभिनय है । 'नहुष नाटके' में छंदानी सजल नयन करिफ कहती है -- 'सुनियत नहुष नरीय को छन्द्रासन गुरु दीन, यासों औरहुं दःख बढ़त, दिन-दिन काया दीन ।' इसके अतिरिक्त निदेश है -- 'हमि कहिके नाकन लाग्यो, तब गुरु मुखकार्यके, हतनो सेनि छंदानि सहमि के मुखहित होय गिरि धा परी । तब ज्यंत उठि के शीतल जल शिरक्यों, कामाकुल होकर, किन्ता सहित, सानन्द जादि ।

बलिया के ददरी मेले में भारतेन्दु ने स्वयं 'सत्य हरिश्चन्द्र' में हरिश्चन्द्र की भूमिका का निर्वोह किया था । शैव्या के समस्तान विलाप में कर्षकों को करुणा से जीतप्रोत्त कर दिया था । तत्कालीन क्लैक्टर की पत्नी ने बांसुजों से भरा रुमात निवोड़ कर आग्रह किया कि यह दृश्य धैर्य जुड़ा कर रहा है, तब भारतेन्दुशुषि को 'बीवर स्फट' करना पड़ा था । इससे स्पष्ट है कि भारतेन्दुशुषि नाटकों में सात्विकाभिनय सर्व व रूप से हुआ है, जिसने लोक-चेतना को सहज रूप से प्रभावित कर लिया था ।

सात्विकाभिनय के प्रचुर संकेत संकेत भारतेन्दुशुषि नाटकों में मिलते हैं । यथा-सस्मित, लजाकर बाप ही बाप, आंस बंद किए ही, चंद्रावली के कान के पास, कुछ ठहरकर, और ऊंचे सुर से, चंद्रावली की पीठ पर हाथ फेरती है, वनदेवी हाथ जुड़ाकर एक ओर वर्णा संध्या दूसरी ओर वृद्धों के पास हट जाती है, ब घबड़ाती सी होकर, धर उधर देखती है, उन्माद से, अर्द्धान्माद की भांति, कभी बांसु भरकर, कभी भाव बताकर, कभी केसुर का ताल ही, कभी

ठीक-ठीक, कभी दूटी जावाज से पागल की भांति गाती है, घबड़ाकर दोनों हाथ लुढ़ाकर बांधू भर के, झंझर विद्या से, प्रसन्नता से, विद्या का हाथ अपने हाथ में लेकर, विद्या आंखों से निषेध करती है, इत्यादि ।

‘कल्पवृक्षा’ नाटक में सत्यभामा के संवाद में सात्विकानिनय का रूप इस प्रकार है । सत्यभामा [करकमल से बांधू पोंकती हुई] मैं आपकी मल्लिभांति जानती हूँ ।..... अधिक कहने-कहलाने से क्या लाभ है ? क्या अपने मन से समझ जाऊँ । पर मुख्य तो यह है कि आपनी सोना खोटी नयी तो दोष कहा है परेखनिहार की । “द्रीपदी वस्त्र हरण” में नैपथ्य में कलकल की ध्वनि होती है और द्रीपदी कहती है -- द्रीपदी [सुनकर और घबड़ाकर] यह क्या कलकल बाहर हो रहा है, मदनमोहिनी । इस समय सारे स्वप्न हुरे हो रहे हैं मैं समझती हूँ मेरा अंतकाल आ पहुँचा है, हाय । मैं अपने प्यार स्वामियों और अपने प्यारे पुत्रों से भेंट कर न पाऊँगी अथवा नहीं, है नहीं । मैं अपने पातिव्रत धर्म की रक्षा के हेतु प्राण अवश्य त्यागूँगी, ले मदनमोहिनी । मैं तुझसे भी विदा होती हूँ ।”

‘प्रभास मिलन’ नाटक में कृष्ण रोदन करते हुए कहते हैं -- “मैया ! बताओ तो मैया कहाँ गई ? अभी तो मैया ने गोपाल कहकर पुकारा था ।। बहक पुकारते पुकारते मैया किधर की चली गई मध्या । तुम्हारे हाथ जोड़ूँ मेरी मैया की मुक्ति दिलाओ । [इधर उधर देखकर] मैया ! मैया ।। कहाँ गई मैया ।।। एक बार जाओ माँ ! बहुत दिन से तुम्हारे वरणकमलों का दर्शन नहीं किया है ।”

‘वृणु संहार’ नाटक में अश्वत्थामा दाहिनी ओर देखकर बांधू भरकर कहते हैं -- मातुल ! मातुल ! जो शूरवीरों की मयंक सगर लुजली के निवारणकर्ता और जिस सेनापति के साथ आज तुम रणभूमि में आए, जिनके संग तुम्हारे नित्य चित्र-परिहास होते थे, वह तुम्हारी मणिनी के श्लाघमूर्ति आज कहाँ गए ?”

‘महारास’ नाटक में गोपियों की सुन्दरता देखकर, अत्यन्त प्रसन्न और विभ्रम दशा देखकर, कुछ मुस्कराते हुए, आप ही आप, कुछ हर्ष से पृथ्वी की

और देखकर, डाह से, ठंडी सांस लेकर, जांस मीं से सैन बताकर आदि संकेत उपलब्ध हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है --

“कृष्ण [प्रीतिपूर्वक प्रगट] वनिताजों ! मेरा अपराध क्षमा करो ! मैं तुम्हारे भवत प्रेम का बड़ा नेत्र देखता था, जो देख चुका जाओ मेरे निकट बैठो [अति हर्ष से सबकी गले से लगाकर और राधा की बांह पकड़कर] प्यारी क्षमा करो, जाओ बैठो [श्रीकृष्णचंद्र के साथ बीच में राधा और सब गौपियां बैठ गई।]”

“प्रयाग रामायण” नाटक में निषाद विह्वल होकर कहता है -- हे दीन-बंधु ! महाराज हैं काव कहिए ? कालि रात जौन-जौन कुछ मोरे गरीब के कीन भा, ताए पिए के समान कहियों, तांनो सब नहीं लीका, उससे पानी पी के महाराज पर रहे। मैं इहाँ कइयों कि इहाँ राज महाराजे के है, इहं रहैं। मुना उहाँ नाही मानिन। अब कहयें कि तुमसे बिदा लेहत है। भला, मैं साथ जोड़ि हों ? मैं साथ चलिहों। कहयें कि उपकार ? अरे मैं काव कहियों हें ? जो मेरे नामे के छह पनहुं महाराज पहिरें, तबो मैं दे के तौ अपनी करनी से उरिन होऊं। महाराज की बांह में तो मैं राजकरत हों।^१

“सीता स्वयंवर नाटक” में राजा कशरथ की भाव-विह्वलता की प्रस्तुति सजीव रूप में हुई है। “राजा कशरथ [कुछ सावधान हो जाप ही] यह बातों तो इनकी मान लेने योग्य है। मैं जानता हूँ कि रामचंद्र सब रानियों को प्राण समान प्रिय हैं। तो इस अवस्था में रामचंद्र के देने का सम्मत कोई रानी न देगी [प्रगट विश्वामित्र] अच्छा स्वामी ! यह तो आपने सुष्ठ सम्मान कहा अब मैं फिर मंदिर जाकर रानियों से पूछता हूँ जैसा वे कहेंगे वैसा कहंगा [राजा चल देते हैं और पदां गिर जाता है]।^२

१- बदरी नारायण “प्रेमघन” -- प्रयाग रामायण, पृ० ११।

२- बंदोदीन दीक्षित -- सीता स्वयंवर नाटक, पृ० ५ व ७।

‘अभिमन्यु नाटक’ में भीमसेन का संवाद है -- “अर्जुन ! मैं अपने आपको बड़ा बड़ा प्रतिष्ठित सम्मत्ता था, परंतु आज मेरा भी पाषाण हृदय विदीर्ण हो गया, यह क्या ? हरि ! यह क्या ? तुम जिसके सहायक उसी की यह गति ? शिव को पृथ्वी पर रखकर बत्स ! व्यूह में तेरा अनुशरण नहीं कर सके थे, परन्तु आज अनुशरण करेंगे, पुत्र मैं तुम्हें न भूला हूँ। तेरे लिए जितना अपमान सहा, भगवान ही जानता है, हा अभिमन्यु ।”^१ इसी प्रकार ‘मोरघ्वज’ नाटक में क्षुमावती विरह-वैदना का स्पष्टीकरण करती है। सात्विक अभिनय का प्रश्रय ग्रहण करती है। “क्षुमावती -- वरी ! जिसके हृदय में विरह की आग भड़कती है, वही उस ज्वाला की जलन को जानता है। कुवरा उस प्रकृत लपट को अनुभव नहीं कर सकता, तुम मेरे सन्मुख से हट जाओ, मुझे अपने जी की भास निकालते बन लेंगे दो। हा नाथ ! [आप ही आप] है नाथ ! मुझसे कोई अपराध भी तो ऐसा नहीं हुआ, जो मेरा त्यागन किया। मैं विनयपूर्वक बारम्बार आपकी प्रार्थना करती हूँ, मुझे दर्शन दे क्यों नहीं देते। अब मेरा अपराध क्षमा कर मुझे दासी को दर्शन दीजें। नहीं तो मैं तुम्हारी सेवा करने के कारण परलोक में ही जानकर सन्भागिनी बूझूँ हूँगी। तुम बिन संसार क्षुण्य दृष्टि आने लगा। मैं अब तो किसी आश्रय में यहाँ रहूँगी। है कलावती ! है चंद्रकला ! अब मैं क्या करूँ ?”

अभिनय विषयक अन्यान्य स्फुट नियमों के अन्तर्गत भारतेन्दु ने ‘नाटक’ प्रबंध में उल्लेख किया है कि -- “नाटक की कथा की रचना ऐसी विचित्र और पूर्वापर आवद्ध होनी चाहिये कि जब तक अंतिम अंक न पड़े किम्बा न देखे, यह न प्रकट हो कि खेल कैसे समाप्त होगा।.... शोक, हर्ष, हास, क्रोधादि के समय में पात्रों को स्वर भी घटाना-बढ़ाना उचित है। ‘आप ही आप’ ऐसे स्वर में कहना चाहिये कि बोध हो कि धीरे-धीरे कहता है किंतु तब भी इतना

१- शास्त्रिग्राम बंश्य -- अभिमन्यु नाटक, पृ० १७७।

२- “ -- मोरघ्वज नाटक, पृ० ११६।

उच्च हो कि श्रोतागण निश्चिंत सुन लें ।..... यद्यपि परस्पर वार्त्ता करने में पात्रों की दृष्टि परस्पर रहती किंतु बहुत से विषय पात्रों को दर्शकों की ओर देख कर कहने पर पहुँचेंगे । इस अवसर पर अभिनय-चातुर्य यह है कि यद्यपि पात्र दर्शकों की ओर देखें, किन्तु यह न बोध हो कि वह बातें वे दर्शकों से कहते हैं ।..... नृत्य की भाँति रंगस्थल पर पात्रों को हस्तक भाव का मुक्त नेत्र मू के सूक्ष्मतर भाव दिखलाने की आवश्यकता नहीं । स्वर-भाव और यथायोग्य स्थान पर आंगभंगी भाव ही दिखलाने चाहिये ।..... यह एक साधारण नियम की माननीय है कि फिरने या जाने के समय जहाँ तक हो सके पात्रगण अपनी पीठ दर्शकों की बहुत कम दिखलावें । किन्तु इस नियम का इतना आग्रह न करें कि जब जहाँ पीठ दिखलाने की आवश्यकता हो वहाँ भी न दिखलावे ।... पात्रगण वापस में वार्त्ता जो करें उनको कवि निरै काव्य की भाँति ग्रथित न करें । परस्पर वार्त्ता में हृदय के भावबोधक वाक्य ही कहने योग्य हैं । किसी मनुष्य वा स्थानादि के वर्णन में लम्बी-चौड़ी काव्य-रचना नाटक के उपयोगी नहीं होती ।^१

भारतेन्दु की अभिनयात्मक-जागरूकता का उपर्युक्त विवरण प्रमाण रूप में ग्रहण किया गया है । भारतेन्दु-युग के नाटककारों ने भारतेन्दु की दिशा-निर्देश का पूर्णरूपेण अवलम्बन लिया है । पं० बालकृष्ण भट्ट, श्रीमती लाली, लक्ष्म बहादुर मल्ल, श्री निवासदास, किशोरीदत्त लाल गोस्वामी आदि और नाटककारों के नाटकों में अभिनय सम्बन्धी उपर्युक्त संकेत पर्याप्त मात्रा में प्रलंबित हुए हैं तथा उनसे भारतेन्दुयुगिन रंगमंच को लोकमत संवय करने में पर्याप्त सफलता मिली ।

३- ध्वनि, संगीत एवं गीत व्यवस्था

नाटकों में ध्वनि-वाज ध्वनिविस्तारक यंत्र सुलभ हैं, अतः संयोजना रंगमंच पर प्रस्तुत पात्रों के संवाद एवं गीत-संगीत की सुगमतापूर्वक दर्शकों तक प्रेषणीय किया जाता है, किन्तु भारतेन्दु-युग में यह सुविधा उपलब्ध न थी ।

१- रुद्र का शिष्य -- भारतेन्दु ग्रंथावली, पृ० ७७४ ।

ध्वनि-प्रभाव दर्शकों तक गूँधीत हों, इनके लिए नाट्य-प्रस्तुति में पात्र तीव्र गति से संवाद बोलते थे। नाटककारों ने यथास्थान धीमे एवं तीव्र गति से संवाद प्रस्तुत करने के संकेत दिये हैं।

भारतेन्दु झा के नाट्य-साहित्य में दीर्घ-कथन का प्रयोग रंगमंचीय व्यक्तियों के समुचित संयोजक की दृष्टि से ही किया गया है। ये कथन पात्रगण तीव्रता से उच्चरित करते थे ताकि दर्शकों तक उनका सम्प्रेषण सुस्पष्ट रूप से हो सके। नाटककार इस तथ्य से अवगत रहे हैं कि यदि अधिकांश कथन लघु हुए तो पात्र-गण परस्पर संवाद करते समय अभिनयात्मकता की ओर ही अधिक ध्यान रखेंगे। इस प्रकार नाटककार के विचार दर्शकों तक सम्यक् रूप से नहीं पहुँच पायेंगे। ध्वनि-विस्तारक यंत्र के अन्वेषण के पूर्व तक नाटकों में दीर्घ कथन का प्रयोग निरन्तर होता रहा है और लोकमान्य की उद्देक्षित करने की दृष्टि से इस प्रणाली का अनुकरण आवश्यक भी था।

‘सीता स्वयंवर नाटक’ में जाकाशवाणी होती है --

‘हे मुनि ! सिद्ध !! देवताओं !!! मय न करो तुम्हारे जय मनुष्य रूप घर अपने अंशों सहित परम उदार सूर्यवंश में अवतार लूंगा। कश्यप और अदिति ने बड़ी तपस्या की है, उनकी मैंने प्रथम से ही वर दे रखा है। वे दशरथ काँक्षत्या रूप से अयोध्यापुरि में नरराज हो विद्यमान हैं तिन रघुकुल श्रेष्ठ के घर में जाकर अवतार लेंगे। लक्ष्मी सहित अवतार लेकर नारद ने सब वन सत्य कहेगा और तम्पूणं भूमि का भार हलंगा। अब तुम सब देवता निडर हो।’

प्रारम्भ में संजीवन में तीव्रता से ध्यानाकर्षण और फिर जाकाशवाणी का उच्चारण स्वर-योजना पर आधारित रहा कि कथन दर्शक तक प्रेषणीय हो जाए। इसी प्रकार विवाहसुंदर नाटक में विद्या करुणा स्वर में कहती है--

‘प्रभो ! आज तुमने हमारी क्या दशा कर रखी है। आज हमारा सब सुख, हमारी सब सम्पत्ति, हमारी सब सामर्थ्य, हमारी प्यारी

सखियाँ किन्ना काम आती हैं ? हाँ ! ईश्वर !!! तूने क्या ऐसे ऐसे कठोर दुःख हमारे लिए संग्रह करके रखे थे ? प्यारी कन्दला ! क्या तुमने भी जन्म का साथ छोड़ दिया ? हाँ प्यारी, तड़िता ! क्या तूने भी सुकून चुना दिया ? हाँ ! क्या कल ? कहाँ जाऊँ ? किससे क्या कहूँ ? यहाँ तो चारों ओर वृषा और कल्लाड़ जंगलों के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं ।

ध्वनि-स्तीव्रता संबंधी ये संवाद मोरध्वज नाटक, सत्यजी नाटक, सावित्री नाटक, माधवानल कामकंदला नाटक, मदनमंजरी नाटक, न्याय तमा नाटक, रुक्मिणिका-मस्तिष्क नरक, नागरी विलाप नाटक, अमिमन्थु नाटक, गंगोत्री नाटक, रुक्मिणी परिणय कण्ड आदि नाटकों में प्रयुक्त किए गए हैं ।

नाटकों में संगीत-
संयोजना

भारतेन्दु स्वामी ने नाटककारों ने संगीत व्यवस्था की ओर ध्यान दिया है । रासलीला और रामलीला के मंच की भांति ही रंगमंच पर सामने ही संगीतकार स्थान गृह्य करते थे । भारतेन्दु [नाट्य-रूपक] में श्री 'मानु' ने निर्देश दिया है कि 'संगीतज्ञ पुराने रंगमंच की भांति सामने न बैठकर एक ओर नेपथ्य में बैठेंगे और वहीं से संगीत तथा ध्वनि प्रभाव देंगे ।' इससे स्पष्ट है कि भारतेन्दु-सुनि रंगमंच पर संगीतकार सामने ही बैठते थे । भारतेन्दु ने सामूहिक वाद्य-प्रयोग की ओर 'नाटक' प्रबंध में विचार व्यक्त किया है । 'जब एक विषय समाप्त होगा, जबकि पात करके पात्राणा अन्य विषय दिखलाने को प्रस्तुत होंगे, तब तब पटाक्षीप के साथ ही नेपथ्य में चर्वरिका आवश्यक है, क्योंकि उसके बिना शुष्क ही जाता है । जहाँ बहुत स्वर मिलकर कोई वाद्य बजे या गान ही उनकी चर्वरिका कहते हैं । इससे नाटक की कथा के अरूप गीतों का वा रागों का बजना योग्य है । जैसे सत्य हरिश्चन्द्र में प्रथम अंक की समाप्ति में जो चर्वरिका बजे व मैरवी आदि सबेरे के राग की ओर तीसरे अंक की समाप्ति पर जो कौ बड़े रात के राग की होनी चाहिये ।'^१ नाट्य-प्रस्तुति में इस निर्देश का समुचित

पालन किया गया है। 'नयोंगिता स्वयंर नाटके' में तूर्यनाद एवं शंखध्वनि का उल्लेख मिलता है। 'रामलीला नाटके' में नाटककार कहता है कि 'ड्राफ्टीन होते ही मंगलवाद्य बजना चाहिए।' आगे एक स्थल पर निर्देश दिया है कि बाणा न छोड़कर कणविध्वन शब्द होने चाहिए, ताकि बाणा टूटने का शब्द मिल जाए।^१

'देशवशा नाटके' में ध्वनि-संयोजन की दृष्टि से नेपथ्य में कीटी बजाने, घंटा मारने एवं धमधम और गरगराहट की ध्वनि का उल्लेख है। 'जानकी मंगल नाटके' में कोष्ठक में बाजा बजने की ओर संकेत किया गया है। 'रामचन्द्र चारों ओर देखते हैं और धनुष उठा लेते हैं, चढ़ाके तोड़ डालते हैं, बड़ा ह शब्द मचता है, जै जै मचता है, पुष्प की वृष्टि होती है और बाजा बजता है। 'जानकी मंगल' के प्रथम अभिनय [४ अप्रैल १८६८] का समाचार लंदन के इंडियन मेल एंड मंथली रजिस्टर [७ मई १८६८] में प्रकाशित हुआ था, जिसमें मंगोरजन एवं नाट्य-प्रस्तुति की प्रमाणी बाने के लिए मध्याह्न-तरण में देशी संगीत का देशी बाजों द्वारा होने का उल्लेख किया गया है।^२ अम्बिकादत्त व्यास ने 'गोमंकर नाटके' में नेपथ्य में हुगहुगी बजने का संकेत दिया है। 'प्रेमजी गिनी' के प्रथम अंक में घंटी, घंटे और घुंघरू की सम्मिलित ध्वनि से मंदिर का वातावरण प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त शंखध्वनि अनेक स्थानों पर होती है। भारत दुर्देशा के अंक ४ में अंधकार-पात्र के प्रवेश के समय निर्देश किया गया है कि बांधी बाने की भांति शब्द सुनाए पड़ता है। 'अभिमन्यु नाटके' में मक्का मेघार्जन का शब्द हो, उसका उल्लेख है। प्रस्तावना के आरंभ में संगीत निर्देश दिया गया है कि 'नेपथ्य में शंख का शब्द सुनाई पड़ रहा है, कभी-कभी बीच में गम्भीर स्वर से रणसिंह का घोर नाद होने लगता है, बांसुरी के स्वर से

१- "A native band of music attended the entertainment and played during the intervals of the play."

[श्री सरद नागर, लखनऊ के सांजन्य से प्राप्त]

मिले हुए गायन, लोग वियोग के रसीले पद गा रहे हैं और कीर्णा मृदंगादि
अनेक प्रकार के यंत्र बज रहे हैं। 'सराफी नाटक' में जहाँ-जहाँ घंटी बजति,
इसका उल्लेख नाटककार ने किया है। 'दुर्लभ बंधु' नाटक में प्रथम दृश्य के समाप्त
होने पर तुरही बजने का उल्लेख है। चंद्रावली के चौथे अंक में जोगिनी के लिए
निर्देश है कि जब जब गावैगी सारंगी बजाकर गावैगी 'भारत दुर्दशा नाटक'
में मदिरा-पात्रा के पेर में छुंछू होने का नाटककार ने संकेत किया है। अतः
स्पष्ट है कि विवेच्य युगीन नाटककारों ने संकेत किया है। अतः स्पष्ट है कि
विवेच्य युगीन नाटककारों ने लोक में व्याप्त वाद्य-यंत्रों, शंख, तुरही, घंटी,
झुंझुगी, बांधुरी, छुंछू, सारंगी, मृदंग आदि का प्रचुरता से प्रयोग किया है।
साहित्य-साधना के साथ भारतेन्दु संगीत विद्या के विकास के लिए प्रयत्नशील
रहे, इस संदर्भ में उन्होंने लिखा है -- 'वाद्य, नृत्य और गाना यह तीनों वस्तु
जिसमें ही, उसकी संग त संज्ञा है। इस काल में हिन्दुस्तान में संगीत शास्त्र
जानने वालों का कुछ आदर नहीं और लोग इस विद्या से लज्जा करते हैं परंतु
ये ही इस देश के दुर्दिन का उदाहरण हैं, अब भी भारतवर्ष के जिस प्रदेश में
यह विद्या बच गई है, वहाँ बहुत अच्छी है, जैसा कि ईस्वी १८७१ में व्यंकट
गिरि के संग एक नर्तकी शारदा का नाम की आई थी। भिस्देह बड़ हम विद्या
में बहुत प्रवीण थी। नृत्य और नृत्य दोनों में अपूर्व काम करती थी। नृत्य और
नृत्य में भेद यह है कि जिसमें भाव मुख्य हो वह नृत्य और जिसमें लय मुख्य हो वह
नृत्य कहलाता है। भाव, नेत्र, माँह, मुख, हाथ और स्वर से प्रगट होते हैं।
लय भी हाथ पैर, गले और माँ से होती है। नृत्य के शास्त्रों में १०८ भेद लिखे
हैं और लागडांट, डरप, तिरप, हस्त भेद इत्यादि इसके अंग हैं, जिसमें केवल
छुंछू बजाने के सात मुख्य भेद हैं। लाट्य और ताण्डव इसके दो मुख्य भेद हैं और
यह नृत्य एक से लेकर बहुत से मनुष्यों ने भी होता है। हम शिखर से प्राप्ता
करते हैं कि यह विद्या संबंधी संगीत शास्त्र हमसंगों में फैले और यह प्रचलित
सुखीतमय लज्जा का कारण विषय इसी संगीत हमारे शत्रुओं की मिले। १

भारतेन्दु संगीत में एक श्रान्तिकारी परिवर्तन चाहते थे। जो लोग पैसा देकर पक्का गाना सुनते थे उनसे उन्होंने लोक समाज में प्रचलित गाने सुनने की अपील की थी -- 'जो लोग धनिक हैं वह यह नियम करें कि जो गुण हनकी गायेगा उसी का वे लोग गाना सुनेंगे।'^१

नाटकों में लोकीतों का प्रयोग

नाट्य-साहित्य में गीतों का प्रयोग रंग तकनीक के एक अवयव के रूप में स्वीकारा गया है। भारतेन्दुशुक्लिन नाट्य-साहित्य में लोकीतों का प्रचुर रूप में प्रयोग हुआ है। हम युग के साहित्यकार कवि तथा नाटककार दोनों रूपों में साहित्य-सेवा करते रहे हैं। इस समय तक लोकमानस परम्परागत काव्य-प्रवाह से पूर्णतः मुक्त नहीं हो पाया था, अतः उनकी संवेदनशीलता को जागृत करने के लिए गयांश के साथ ही बंबोदीन में काव्यांशों का प्रयोग नाटकाकारों ने सहज प्रवृत्ति के रूप में किया है। काव्यांशों द्वारा वे लोकमानस के समस्त नाटक के पात्रों का चरित्रिक विश्लेषण करने में सक्षम रहे हैं।

गीतों का प्रयोग भारतेन्दुशुक्लिन नाटकाकारों ने दो रूपों में किया है। एक तो उन्होंने लोकप्रचलित कवियों के गीतों को यथास्थान उद्धृत किया है और दूसरे कथाप्रवाह के अनुकूल उन्होंने गीतों की रचना स्वयं की है। इस प्रकार के गीतों की रचना लोकप्रचलित गीत-शैलियों के आधार पर हुई है।

'सीता स्वयंवर नाटक' में शेषव और तुलसी के काव्यांशों को सीताहरण प्रसंग को पूर्णता प्रदान करने के लिए प्रयुक्त किया है।^२ 'उद्वेग सीता नाटक'

१- डा० रामविलास शर्मा -- भारतेन्दु युग, पृ० ५।

२- बंबोदीन की द्वािता -- सीता स्वयंवर नाटक, पृ० ७, ८, ११, १५।

में सूर, परमानन्ददास, भारतेन्दु आदि कवियों के पद उद्धृत किए गए हैं।^२
 'संगीत शाकुंतल' में दुष्यंत के विरह चित्रण में मेघदूत के श्लोकों को तरस काव्य में रूपान्तरित किया गया है। यथा--

“शिला में गेरू से कुपित लगना तौहि लिस धरौ
 जो लौं चाहूं तन अपन तेरे पगन में
 चले तालीं आंसु डगन मा रोके उमगि के
 नहीं धाता धाती बहत झम याहू विधि मिले।”^३

‘जय रामचरित नाटक’ में रामचरित मानस की चौपाइयां यथावत् प्रयुक्त की गई हैं।^३ ‘शकुंतला नवीन नाटक’ में नाटककार ने मूमिका में लिखा है -- ‘राग-रागिनी में व लावनी में व शेरतानी में महाभारत और श्रीमद्-भागवत व वाल्मीकि रामायण का सार निकालकर और-और प्राचीन पुराणों का मतलब लेकर और कालिदास कबीर शकुंतला नाटक की छाया लेकर यह नाटक तैयार किया गया।’ नाटककार ने कवित्त, दोहा, लोकोपदेश एवं काव्य रूप होली, बारहमासा आदि का प्रयोग किया है।^४ ‘माधवानल कामकुंदला’ में सेनापति, देव बिहारी आदि के दोहे, कवित्त, सवैथे पदों का प्रयोग किया गया है। यथा--

दोहा -- मारि जारि करि भस्म पिय राखहुं हृदय मंकार ।

जब जी चाहै तब मिला, आं पैम रसधार ॥^५

सोरठा-- करत मुई को जाप, जियत कठिन दुख दैत हो ।

जब पिय कोन शराप, तज समीप बिहुरन करत ॥^६

१- गोवर्धन गौसाह -- उद्वेलीला नाटक, पृ० ६, ११, १५, १७ ।

२- पुतापनारायण मिश्र -- संगीत शाकुंतल, पृ० २७ ।

३- जय गौविन्द मालवीय -- जय रामचरित नाटक० प्रारंभ से समाप्त तक ।

४- लाला गणेशप्रसाद साहव -- शकुंतला नवीन नाटक, पृ० ७, ११, १५, १६ ।

५- शालिग्राम -- माधवानल कामकुंदला, पृ० १३ ।

६- वही, पृ० १७ ।

साथ ही बारहमासा लोक काव्य रूप का भी प्रयोग किया है।

“जाणाढ़ मास जा लगा.... सावन में मिलतर सत नार
भादों में मेघ जति बरसै मेरा जी तरसै.... जा गया महीना
खार.... आदि।^१

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के लगभग सभी नाटकों में गीतों का प्रयोग हुआ है।
“वैदिकी हिसा हिसा न भवति” में पीओ रे भाई लोक धुन की टेक पर गीत
लिखा गया है --

रामरस पीओ रे भाई, जो पीर सौ बमर होय जाई।
बीके भीतर मुरदा पाकें जवेलें नहाय के रेवन जनम जर जाई।

जो जी बकरी पत्ती खात है ताकी काढ़ी खात।
जो जे नर खन बकरी खात है तिनकी जान खात ॥
रामरस पीओ रे भाई?

‘कुन्दकली नाटक’ में दोहा, सोरठा, कुंडलियां, कवित्त आदि मात्रि
कंदों का प्रयोग किया गया है। ये कंद लोककंद कहे गए हैं। “संस्कृत के वाचि-
जात्य काव्यों की रक्षा के लिए वाणिजिक कंदों का व्यवहार बहुत अधिक मात्रा
में किया गया है और उक्त कौटि के काव्यों में बहुत अधिक मात्रा में किया
गया है। और उक्त कौटि के काव्यों में इनका स्थान उर्वारि है। इसके
विपरीत जाति कंद जो प्रकृति से मात्रिक एवं संगीत प्रधान हैं, लोकभाषाओं
के कंद हैं, इसकी परंपरा लौकिक रही है।^२ कुन्दकली नाटक में इन लोककंदों
के प्रयोग से नाटक लोकानुसृतता ग्रहण कर सके हैं। क्या --

दोहा -- निष्फल श्रम सब लोयकी काग चुगाय कपर।

वर्णक न वाणी त्यागि है, रहें कूर के कूर ॥

१- शालिग्राम -- माधवानल कामकंदता, पृ० ४६।

२- रुद्र काशिकेय -- भारतेन्दु ग्रंथावली, पृ० १६।

३- ए०बी० कीथ - २ हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, पृ० ४१८।

अधिक प्रीति चुवकारिए, स्वर्णाग्निन बैठार ।
बासन पं डुगि हैं अवशि फाहिं चौबहिं मार ॥^२

गोरठा -- जस-जस निरखैं तीय, तस-तस फुया बढ़ावहीं ।
तस-तस डोउत नीय, कहु विचित्र विपरीत गति ॥^२

कुंडलिया - मोती पायो कहुं पर्यो मिल्ल बनाड़ी जाय ।
गुंजाबी फल जान के पूरी माल बनाय ॥
पूरी माल बनाय, हाय मुक्ता गुन लीयो ।
स्वर्णजट्टिता त्याग मूसैकर नीच कहायो ॥
उच्चकुलन की हार सुन्दरिन रूप करोती ।
देस गुनन की हान-मान तज रोवै मोती ॥^३

‘सांगीत रूप कसंत’ में दोहा और चौबोला में ही संवाद प्रस्तुत किए गए हैं । यथा --

अजी बजा हमारा डोल, झुहर की लूब करौ तईयारी जी ।
चन्द्रसेन राजा जी की अब जाती अधिक उवारी जी ।
प्यारे जी ज्वारी चौर छिनार शहर के पकड़े जायें ।
ढाडू और बदकार कि रह्यन फांसी पायें ।
हस्ताफ खानकर होता है वाराम जमाना पाता है ।
जो काम बुरे करता है, उसको राजा सजा दिलाता है ॥^४

‘कल्पवृक्ष नाटक’ में दोहा, गोरठा, सबैया का प्रयोग किया गया है । वृ
ठुमरी काव्य-रूप में लोकगीत प्रस्तुत किया गया है । यथा --

१- जगन्नाथ प्रसाद शर्मा -- कुन्दकली नाटक, पृ० ६ ।

२- वही, पृ० १६ ।

३- वही, पृ० १७ ।

४- लाल गुलाब सिंह -- सांगीत रूप कसंत, पृ० १७ ।

पिया प्री मिलन कली जाति गुजरिया ।
 डिय हुस्रावति राति उजरिया ॥
 मारी डरारी रैन बीति गर्ह ।
 निसरि गर्ह दई मारी बदरिया ॥
 बैरिन सासु ननद घर नाहीं ।
 निरमय भई वन प्यारे की बटरिया ॥^१

‘अंजना सुंदरी नाटक’ में भी ठुमरी से कथा-प्रवाह के अनुसृत वातावरण
 निमित्त किया गया है —

आई बसंत नव पल्लव निकसे, आम्रकली भई बिल्वतरी ।
 कीकिल शब्द सुनाय रसीले, देख मोर भये हरषतरी ।
 अरुणा फूले टेपू के फले, मदन दिखाई रंगतरी ।
 घर घर गान करे सक सतिया, गहकर कीन अरु बरबतरी ।
 फंगल मोद झूरी चहुं दिशि, मैं, जंग जंग भये पुलकतरी ।^२

‘रणधीर और प्रेममोहिनी’ में लोक-गायन शैली में अनेक गीत प्रस्तुत किए
 गए हैं ।

देख्यो प्रेम की पंथ जुवो ही
 जाने पीति रीति रस चाख्यो, ताहिनि भावत कोई,
 दीपक की झुवि लख पतंगै, पंख आपनी सोई,
 बेधत मधुप काठ परहित बस कमल न हैदत सोई,
 जाकी प्रीत लगी काहुं सो, याको जानत वोई ॥^३

† † † †

१- बहादुर मल्ल -- कल्पवृक्षा नाटक, पृ० ४ ।

२- कल्यालाल -- अंजना सुंदरी नाटक, पृ० १३ ।

३- श्रीनिवास दास -- रणधीर प्रेममोहिनी, पृ० २१ ।

पंडितन की जै सीखे भागवत ज्ञान गीता,
 श्रीता हस्त साध्यों सार वेदन की बांचनी ।
 कवि के काजि सीखे फिरोल पुरान छंद,
 दोहा गार्ह बाँपाई कवित्त न की साँचनी ।
 कलाउन्त काजि भजन बारहमासी सीख लीन,
 आप मुक्त गावै राग रागिनी न रावेवा ।
 देव के काजि राजा छतने कसब मिले,
 कसर रही है एक ताता धैर नाचनी ॥^१

† † †

दांत न थे जब दूध दिया अब दांत दिये कहा अन्न न दें,
 जो जल में थल में पंही, पशु की सुधि लेत पू तेरी हु लैं ।
 काहे को सोच करे मन मूरख सोच करे कुछ हाथ न रें है,
 जानकूँ देत अजानकूँ देत जहान को देत सी तो कुछ दें हैं ।^२

‘सत्यवती नाटक’ में बघाई गीत प्रस्तुत किया गया है --

‘सखी मिल गावो री आज बघाई,
 पुलकत अंग उमंग चहुँ दिशि गर्जत गमन दुहाई ।
 प्रेम फाड़ी बर्षात मन हुलसत हर्षात सब बन राई ॥
 सखी मिल गावो री आज बघाई ॥’^३

इसी प्रकार भजन भी प्रस्तुत किया गया है --

‘जगत सब फूँटा है जंजाल, माया रैन का स्वपना ।
 बाई, बंधु, कुंडुब, कजीला, दी दिन के साथी ॥’^४

१- श्रीनिवासदास -- रणधीर प्रेममोहिनी, पृ० २७ ।

२- वही, पृ० ३५ ।

३- कृष्णलाल कासलीवाल -- सत्यवती नाटक, पृ० २३ ।

४- वही, पृ० १७ ।

‘सज्जाद सम्बुल’ नाटक में प्रस्तुत दोहों में मध्यकालीन व्यक्तिधारा का रूप समा-
हित है --

‘करी डुराईं सुख चहे, कैने पावे जौय ?
जीये पेड़ बबूल झा, जाम कहाँ ने होय ?’^१

भारतेन्दुयुगिन नाटककारों ने युगिन समस्याओं के प्रति लोकमानव की
गीतों के माध्यम से सचेत करने का प्रयत्न किया था। ‘वीर वामा नाटक’
का पात्र वीर सिंह कहता है --

‘नाश किया भारत को बहुविध, बहुविध ताहि सतायो
जाम अंत ग्रंथ बहु नाशे, धनकहिं धरि मिलायो
नाशे जानित सुमगधाम निष्कण्टक तिनहिं लूट्यो
बलकरि धर्म प्रुष्ट तौह कीन्हों ऐसी कीन्ह डिठारै
पतित सतीत्व कीन्ह बहु जबला मुख तौं नहिं कहि जाई
व्यसनाग्रित हृन्दित्र्य लोलुप हो बहु दिश ऊद उठारै
कुसह दुःख दीन्हें लोगनको सब विधि पतित करारै ।’^२

‘भारत सौभाग्य’ में भारत की अधोमुखी स्थिति का चित्रण किया गया है --

‘भारत विषय भोग को प्यारी ।
पाद संग अंगरेजी को जब जूँ गया अधिक दुलारी । भारत० ॥
वतर सेवती अरु गुलाम के अब नाहीं याही भावत ।
भाँति भाँति लखे राउर सीसी ला दिजहाज मंगावत । भारत० ॥
बीना झाड़ि जवाह पथानों उमंगत ताहि माहि ।
दूध मलाई तबि चखि फिसलुट, गहत तिया की बांछी । भारत० ॥

१- केशवराम मट्ट -- सज्जाद सम्बुल, पृ० २६ ।

२- बैजनाथ -- वीरवामा नाटक, दृश्य ८ ।

लासन खेल तमाशा यार्न इंग्लैंड त मंगायै ।

मुकवि बैठ जब सोच करत तुम जात हम् बौराय । भार ७।^१

‘भारत दुर्दशा नाटके’ में भारत-भाग्य भारतवाकियों को जगाने का यत्न करता है --

‘जागो जागो रे भाई ।

सौवत निसि कै गंवार्ह । जागो जागो रे भाई ॥

निसि की कान कहै दिन कीत्यो काल राति बलि आई ।

देखि परत नहिं छि अनहित कहु परे बैरि क्य जाई ॥

निज उद्धार पथ नहिं सुकत सीस धुनत पश्चिआई ।

जबहुं चैति, पकरि राखो जिन जो कहु बकी बड़ाई ।

फिर पछिआर कहु नहिं ह्वैं हैं रहि जैही सुं जाई ।

जागो जागो रे भाई ॥^२

‘बंशेर नगरी’ में चूर्ण बेचने वालों की लोकायम शैली में समस्याओं का चित्रण किया गया है --

‘मेरा चूरन जो कहि साए, मुककी लोड़ कहिं नहीं जाय ॥

हिन्दू चूरन इसका नाम । विलायत पुरन इसका काम ॥

चूरन जल से हिन्द में आया । इसका धनकत नभी घटाया ।

चूरन ऐसा छूटा-छूटा । कीना दांत सभी का छूटा ॥^३

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारतेन्दु-सुभा के नाट्यकारों ने गीत-योजना द्वारा रंगमंचीय शैली को पूर्णता प्रदान करने में जो योग प्रदान किया, वह पूर्णतः लोकतत्त्व से अनुप्राणित है ।

१- बम्बिकादत्त व्यास -- भारत साभाग्य, पृ० २१ ।

२- रुद्र का शिष्य -- भारतेन्दु ग्रंथावली, पृ० १५४ ।

३- वही, पृ० १७० ।

४- प्रकाश व्यवस्था

ध्वनि विस्तारक यंत्र की भांति भारतेन्दु युग में विद्युत प्रकाश भी सुलभ नहीं था। लोक से प्राप्य प्रकाश व्यवस्था का आधार विवेक्युग्मिन नाटककारों ने ग्रहण किया और नाटकों में समुचित निर्देश दिया है।

भारतेन्दु जी ने 'भारतजननी' में भारत-सरस्वती के प्रवेश के समय उफड़ चंद्र ज्योति होड़ने और भारत-दुर्गा के प्रवेश के समय लाल चंद्र ज्योति [मेहताब] होड़ने का निर्देश दिया है। भारत लक्ष्मी का प्रवेश हरी चंद्र ज्योति के प्रकाश में होता है। 'प्रेमघन' ने 'भारत श्रीभाग्य' और राधाचरण गोस्वामी ने अपने नाटकों में रंगीन चंद्र ज्योति होड़ने का संकेत दिया है। 'यमक मंजरी' की प्रस्तावना में शतरंजी मशाल द्वारा प्रकाश होने का उल्लेख प्राप्त होता है। रेडियो रूपक 'हिन्दी रंगमंच के तीं वर्षों में' पं० अमृतलाल नागर ने लिखा है -- "गैस के बॉल्बों की रोशनी भी रंग बीजाळा चढ़ाती थी.... और जब गैस की नहीं थी तो बरगल लैंपों और मशालों और तेल के बड़े बड़े डिप्पो से अपने स्टेज को कमाचम बनाय था। फुट लाइट, हेडलाइट सब इसी से बना लेते थे।"^१

नजीर के कंपनी से संबंधित स्वर्गीय बदन मिल्त्री ने एक साक्षात्कार में स्पष्ट किया है कि "मिट्टी के कम पंद्रह प्याले जिनमें ताम बीनी चढ़ा होता था, उनमें बिनीले भरकर जला देते थे। स्टेज के ऊपर जहाँ जब बड़ी लाइटें लगाते हैं, वह बड़े बड़े काल लटकाए जाते थे और हर पखवाह के ऊपर एक मशाल वाला तैनात रहता था।"^२

'चंद्रावली' के अंक दो में नाटककार ने निर्देश दिया है -- संध्या का समय, कुछ बादल छाए हुए हैं अर्थात् संध्या के अरूप प्रकाश व्यवस्थित किया जाना चाहिए। इसी प्रकार नील देवी के पाँचवें दृश्य में [सूर्यदेव के डेरे का बाहरी पुंख

१- पं० अमृतलाल नागर -- हिन्दी रंगमंच के तीं वर्षों, पृ० १७।

२- शरद नागर द्वारा -- बदन मिल्त्री से एक साक्षात्कार के आधार पर।

प्रांत रात के समय का संकेत है, तभी नेपथ्य में राजा दुल निंदिया प्यारे लन
 कलमल दीप सिर पर धुनत आरं की नीतात्मक अभिव्यक्ति होती है।
 'भारत दुर्दशा के अंश बार में मदिरा-पात्रा के जाने के उपरांत यह निदिष्ट
 किया गया है कि 'रंगशाला के दीपों में ते अनेक बुझा दिये जायें' और
 इसी के उपरान्त अंधकार-मात्र प्रविष्ट होता है, अतः अंधकार की रूपरेखा
 निर्मित करने के लिए उपर्युक्त संकेत दिया गया है। श्री 'मानु' ने नाट्य-रूपक
 'भारतेन्दु' में प्रकाश-निर्देशन द्वारा समय का बोध एवं रंगीन प्रकाश द्वारा
 दुःखावली के अनुरूप वातावरण उपस्थित किया है।

'योवन योगिनी' नाटक में मायावती के अभिनय में उज्ज्वालीक का संकेत
 है। 'मायावती.... बली तुम्हारी योवन योगिनी बली, संसार में मेरा
 नाम रहा योवन योगिनी, बली अब योवन योगिनी [पृथ्वीराज के ऊपर से
 तलवार उठाकर उससे मायावती का आत्मघात करना]। अतएव ही उज्ज्वालीक
 प्रकाश और प्रतिध्वनि योवने योगिनी। महा० — मैंने पहले ही से समझा
 था। यह कोई आम औरत नहीं है। शुरु है योवन योगिनी [अतएव ही उज्ज्वल
 प्रकाश और प्रतिध्वनि योवन योगिनी]।

प्रकाश-व्यवस्था के उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारतेन्दुसुग्नि नाटक-
 कारों ने लोक में व्याप्त उपकरणों का अवलम्बन ग्रहण कर नाटकों में स्थान-
 स्थान पर प्रयुक्त प्रकाश-व्यवस्था द्वारा नाट्य-प्रस्तुति को विशेषणिय बनाया है।
 ■ समग्रतः भारतेन्दु-सुग्नि नाट्य-साहित्य में लोक-रंगमंचीय तत्त्व प्रचुरता के
 साथ प्रयुक्त हुए हैं। भारतेन्दुसुग्नि नाटककारों के समक्ष यह सुनिश्चित विशा-
 दृष्टि थी कि रंगमंचीय चेतना का लोकमानस में अधिकाधिक प्रसार कर लोक-
 चक्षु प्राप्ति को सही अर्थबोध से जगत कराना आवश्यक है। इसीलिए लोक-
 रंगमंच का आधार ग्रहण करना नाटककारों के लिए एक प्रकार से सख्त एवं
 उपयोगी हो गया था। क्या रुझानों से पल्लवित प्रख्यात ज्ञानकर्ता तथा
 लोकभाषा के साथ ही रंगमंच के लोकानुसूत रूप को अपनाकर भारतेन्दुसुग्नि
 नाटककारों ने हिन्दी नाट्य साहित्य को सर्वथा नयी दिशा प्रदान की।

उन्होंने अपनी नाट्य-रचना में लोकोमानस को अभिव्यक्ति देकर सुगोचर की
 सशक्त बनाया । कदाचित् अपनी लोक्यमी केतना के कारण ही भारोन्दु-सु के
 नाट्यकारों ने विभिन्न रंगमंचीय लोक उपकरणों को प्रश्रय देकर लोकोमानस को
 अभिव्यक्ति प्रदान करने में व्यापक स्तर पर सफल हो गये ।

अध्याय - ६

मूल्यांकन और स्थापनाएं

मूल्यांकन और स्थापनाएं

भारतेन्दु-युग एक महान् क्रान्तिदशी युग था। क्रान्तिदशी इस सन्दर्भ में कि हिन्दी साहित्य रीतिशालीन का यधारा से मुक्त होकर लोकजीवन से व्यापक स्तर पर संपृक्त हो रहा था। इस युग में लोकजीवन की भावनाओं-प्रवृत्तियों के अनुकूल साहित्य-रचना के आग्रह प्रयोगों-मुख होकर व्यापकता ग्रहण करने लगे थे। और लोक प्रवृत्ति उस साहित्य में अपने व्यक्तित्व एवं रीति-नीति के विविध रूपों को प्रतिबिम्बित पाकर साहित्यिक गतिविधियों से ^{समन्वित} होने में गौरवान्वित होने लगा था। आधुनिक जीवन की समस्याएं समस्या के विकास के साथ ही जटिल हो गई हैं, युग और परिवेश के अनुसार उनके स्वरूप में परिवर्तन भी हुआ है, किन्तु उन समस्याओं के समाधान में भारतेन्दु युग का कार्य बाज भी प्रेरणा-सूत्रों को विश्लेषण करने में सक्षम है।

भारतेन्दु-युग में नाट्य-रचना साहित्यकारों का एक प्रमुख लक्ष्य बन गया था। नाटककारों ने यह मलीभांति हृदयंगम कर लिया था कि लोकमानस के मनोगत भाव-विचारों की सच्ची अभिव्यक्ति नाटक और रंग-प्रस्तुति के माध्यम से ही हो सकती है और नाटकों के कथानकों में वह यथाल्थान सुबोध के अनुकूल विचारों के सम्प्रेषण करके उनके मानस को प्रेरित-उत्तेजित किया जा सकता है। इसीलिए भारतेन्दुयुगीन नाटककारों का लोकजीवन से अत्यन्त निकटतम सम्पर्क रहा है और लोकजीवन की प्रभावी दिशा प्रदान करने के लिए वे नाटककार यत्नशील रहे हैं। अपने इस प्रयत्न को सार्थक, सक्षम एवं प्रेषणिय बनाने के लिए उन्होंने लोकतत्वों का प्रचुर प्रयोग किया है।

भारतेन्दुयुगीन नाट्यशिल्प की लोकतत्वों ने विभिन्न स्तरों पर प्रभावित किया है। नाट्य-शिल्प के अन्तर्गत कथानक, प्रयोजन [रुढ़ि], भाषा और

रंग-व्यक्ति का तकनीक का स्थान सर्वापरि है। भारतेन्दु-युग के नाटककारों की लोकदृष्टि प्रखर होने के कारण नाटकों के कथाकथन में उन्होंने लोककथानकों की जात्मसात किया है क्योंकि लोककथाओं के माध्यम से लोकमानस में व्याप्त मूल-भावना स्थूल रूप में अभिव्यक्ति पाती है। परिणामतः लोककथानकों के आधार पर संयोजित कथानकों के माध्यम से नाटककार लोकमानस को सांस्कृतिक गरिमा से सम्पन्न कराने में सक्षम रहे हैं। सामयिक धर्म, समाज, एवं राजनीतिक परिवेश से प्रभाव ग्रहण कर जो नाटक प्रस्तुत हुए हैं, उनका वाङ्मय-रूप लोककथात्मक परिधान से सम्बद्ध नहीं है, तब भी नाट्य-शिल्प के अन्य तत्वों की दृष्टि से ये नाटक लोकोन्मुखता ग्रहण किए हुए हैं। ऐसे नाटकों के माध्यम से नाटककार अपनी मूलचेतना की प्रभावशीलता के कारण ही लोकमानस की नवोन्मेषी विचारधारा से अलग कराने में समर्थ हो सके हैं।

रामकथापरक भारतेन्दुयुगीन नाटकों में नाटककारों की मूलदृष्टि लोकमानस में व्यापक प्रभाव रखने वाली रामकथा के माध्यम से लोक को उद्बोधित करके नयी समस्याओं के प्रति सचेत करना रही है। इस युग के ओर नाटकों की रचनाओं पूर्णरूपेण लोकनाट्य परंपरा रामलीला के आधार पर हुई है। भारतेन्दुयुगीन कृष्णकथापरक नाटकों में लोकरंजक नायक कृष्ण के जीवन-वृत्त के विविध प्रसंगों को अभिव्यक्ति मिली है, जिनमें नाटककारों की गहरी मानवीय संवेदना समाहित हो गई है, जतः नाटकों का प्रभाव जोर व्यापक हो गया है और नाटककार अपने अभीष्ट उद्देश्यों को लोकमानस तक सम्प्रेषित करने में सफल प्राप्त कर सके हैं। महाभारत के कौरव-पाण्डव के कथानक से सम्बन्धित नाटकों में भारतेन्दुयुग के नाटककारों ने महाभारत की परम्परा से प्राप्त कथा-स्वरूप का विकास किया है, जिससे लोक का प्राणिक चारित्रिक-गरिमा के साथ ही प्राचीन संस्कारों के सूत्रों की जात्मसात कर सका है। पातिव्रत्य-धर्म कथापरक नाटकों में भारतेन्दुयुगीन नाटककारों ने जिन पतिव्रता नारियों के यज्ञों को अभिव्यंजित किया है, वे भावप्रवण लोकप्राणी की पुरातन-सूत्रों से सम्बद्ध कराने में सहायक रहे हैं। तथ ही युगबोध के अनुकूल उसे सक्षम दिशा भी मिली

है। लोकप्रसिद्ध लोककथापरक भारतेन्दुसुनि नाटकों में लोकमानस के दृष्टिकोण की चारित्रिक-गरिमा मार्मिक रूप में प्रस्तुत हुई है। लोकजीवन के विविध आयामों को ये लोकप्रसिद्ध लोक कथे स्तर संस्पर्श करते रहे हैं, अतएव उनकी कथाएं नाट्य-रूप में अत्यन्त सजीवता ग्रहण कर सकी हैं और भारतेन्दुसुनि नाटककार सजग होकर अपने उद्देश्यों को व्यक्त करने में समर्थ हो सके हैं।

लोकप्रचलित प्रेमाख्यानों के आधार पर भारतेन्दुसुनि नाटककारों ने मर्मस्पर्शी नाटकों की रचना की है। लोकप्राणी की समग्र अभिव्यक्ति प्रेमरस से परिपूर्ण होती है। इन प्रेम कथाओं की परम्परा अत्यधिक प्राचीन है। लोककथा से अनुप्राणित प्रेम-नाटकों में भारतेन्दुसुनि नाटककारों ने लोकप्रचलित कथाओं को प्रत्यक्ष देने के साथ ही सामाजिक समस्याओं के विविध पक्षों का साक्षात्कार किया है। इस प्रकार भारतेन्दु-सुनि के मर्मउत्क नाटककारों ने लोकप्रचलित कथाओं को प्रत्यक्ष देने के साथ ही सामाजिक समस्याओं के विविध पक्षों का साक्षात्कार किया है। इस प्रकार भारतेन्दु-सुनि के नाटककारों में व्याप्त लोककथात्मक रूप [धर्मगाथाओं तथा प्रेमाथाओं] का ही विशिष्ट रूप से आधार ग्रहण किया है। लोक कथाओं के प्रति नाटककार की प्रगाढ़ वात्स्या ही भारतेन्दु-सुनि की लोकचेतना से अधिकतम आवेष्टित कर सकी है और विविध स्तरों पर लोकतत्त्वों का प्रस्फुटन संभावित हो सका है।

भारतेन्दुसुनि नाट्य-शिल्प पर लोककहानियों का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। लोकमानस में सहजतः विविधसुनि लोकसंस्कृतियों के अवशिष्ट रूप विद्यमान रहते हैं, जो कथानक निर्माण में अपने अस्तित्व को समर्पित करते हैं। भारतीय साहित्य में कथानक की गति और घुमाव देने के लिए अनेक अभिप्राय अत्यन्त दीर्घकाल से व्यवहृत होते रहे हैं, जो अल्पसिमा तक यथायथ रहते हैं और आगे चलकर कथानक-कहानियों में परिवर्तित ^{हो गये} रहते हैं और आगे चलकर ^{अन्य} कथानक-निर्माण में लोकव्यापी विविध कहानियाँ ही अपने स्वरूप की गत्यात्मक रूप प्रदान करती रहती हैं। भारतेन्दु-सुनि के नाटककारों ने नाट्य-रचना में लोककहानियों का प्रचुर

प्रयोग किया है, जिससे कथा-प्रवाह, नाटकीय-संवेदना और प्रभावान्विति में सर्वांगी नए आयाम संयुक्त हो गए हैं। लोककथाओं लोककविताओं की विशिष्ट अंग हैं। एक लोककथा अनेक लोककविताओं के समन्वय से लोककलात्मक रूप ग्रहण करती है, कविताओं में लोकमानस की अनुभूति एवं संवेदना घनीभूत रूप में समाहित रहती है। अतएव लोककवि लोककविताओं के प्रयोग से नाटककार अपने अभिलषित भावों-विचारों को लोकसाहित्य बना रहे हैं।

भारतेन्दु-युग के नाटककारों ने लोक में व्याप्त कविताओं को ग्रहण कर लिया है, अपितु उन्होंने उन्हें लोककविताओं की अपनाया है, जो लोककविता को उद्घेलित कर सकती है, कथा-प्रवाह से सख्त तादात्म्य स्थापित कर सकती हैं। ऐसी कविताओं जो कि लोकमानस को पतनोन्मुख करती हैं, उनका नाटककारों ने उग्र विरोध किया है। परिष्कार की यह भावना सामयिक लोकजीवन की यथार्थ-दृष्टि प्रदान करने में सक्षम रही है।

लोककथा एवं लोककविता समर्पित भारतेन्दुयुगीन नाट्य-साहित्य में लोकभाषा ने भरपूर वात्रय ग्रहण किया है। भाषा के प्रति भारतेन्दुयुग के नाटककारों की नीति स्पष्टतः लोकचित्त के अनुकूल रही है। परिणामतः नाट्य-साहित्य में लोकभाषा-प्रयोग के माध्यम से भारतेन्दु-युग की चेतना की सम्मिश्र मिला और नाटक उनकी चेतना एवं आकांक्षाओं का प्रतीक बन गया। भारतेन्दु-युग के साहित्यकारों की लोकसाहित्य रचना के प्रति स्पष्ट अवधारणा रही है और इसी विशावर्द्धक कार्य के आधार पर भाषा विषयक प्रगति हुई है। लोकसाहित्य की योग देने का अर्थ यही था कि बोलचाल के उन शब्दों को अपने युग के नाट्य-साहित्य में प्रयुक्त किया जाए जिन्हें वैज्ञानिक कहा जाता है। क्योंकि बिना इन शब्दों के ग्रहण किए लोकचेतना का स्वरूप ही लुप्त हो जाता है। भारतेन्दु-युगीन नाटककारों ने इसी लिए लोकभाषा तत्व की अत्यन्त प्रसन्नता प्रदान की। उन्होंने यह मनीषा प्रति जात्मसात कर लिया था कि कथावस्तु तथा पात्रों के चारित्रिक विकास के लिए संवादों में प्रयुक्त भाषा ही एक ऐसा उपकरण है, जिससे एक ओर कथावस्तु को सुनिश्चित एवं प्रेरक दिशा मिलती है, तो दूसरी ओर पात्रों का सख्त चारित्रिक विकास होता है। भारतेन्दु-युग के नाटककारों

में प्रयुक्त संवादों में पर्याप्त मात्रा में देशीय शब्दों, मुहावरों और कहावतों का प्रयोग किया है। इसी से भारतेन्दु-युगिन नाट्य-शिल्प में लोकमानसों, लोक-रुढ़ियों एवं लोक-रंगमंच के प्रयोग से उसकी एक प्रभाव-प्रेषणियता में सङ्गतः अभिवृद्धि हो गई है।

नाटक का प्रस्तुति पक्ष ही नाट्य-रचना की सफलता की पूर्णता प्रदान करता है। भारतेन्दु-युग के नाटककारों ने रंगमंच एवं प्रदर्शन दोनों क्षेत्रों में समान रुचि ली है। रंगमंच की प्रभावोत्पादकता को समझते हुए भारतेन्दु-युग के नाटककारों ने लोकजीवन की ऊर्ध्वगामी बनाने के लिए नाटक का अवलम्बन ग्रहण किया। नाटक का साक्षात् सम्पर्क लोक जीवन के रूपरस पदार्थों से है। नाटक लोकजीवन की लोकभावनाओं और लोकभाषा को एक ठोके संवेदनशील रूप प्रदान करता है। नाट्य-प्रस्तुति के प्रति भारतेन्दुयुगिन नाटककारों की दृष्टि व्यापक रही है, अतः उन्होंने अपने नाटकों में यथास्थान पर्याप्त रंग-मंच दिए हैं, जिससे सरलता के साथ लोक-उपकरणों का प्रयोग करके नाट्य-प्रस्तुति संभावित हो सकी है। भारतेन्दु-युगिन नाटककारों के समस्त लोकनाट्य-रूपों यथा राम-लीला, रासलीला, स्वांग और नौटंकी की परम्पराएं विद्यमान थीं, जिनकी प्रवृत्तियों के प्रयोग से उनके नाटकों की रंगमंचीय-संवेदना में स्वाभाविक प्रभावशीलता उत्पन्न हो गई है। इसके साथ ही भारतेन्दुयुगिन नाटककारों ने समकालीन हिंदी रंगमंच, ओड़ी, बंगला, एवं पारसी रंगमंच के लोकित स्वरूप को परिष्कृत रूप में ग्रहण किया है। भारतेन्दु द्वारा प्रवर्तित लोक-रंगमंच ने देश के विस्तृत क्षेत्रों को प्रभावित किया है। इस शृंखला में काशी, प्रयाग, कानपुर, बलिया, बिहार और मध्यप्रदेश की भारतेन्दुयुगिन रंगमंचीय प्रवृत्तियों से नाट्य-रचना के प्रति नाटककारों की प्रखर दृष्टि स्पष्ट हुई है कि वे नाट्य-साहित्य के माध्यम से लोकमानस को अत्यन्त सफलता के साथ सामयिक-बोध से समन्वित करने में सफल रहे हैं।

सम्मतः भारतेन्दुयुगिन नाट्य-साहित्य के लोकतात्त्विक विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि वह वस्तु और शिल्प के स्तर पर लोकानुमुखी रहा है।

उत्तम सांस्कृतिक गरिमा एवं जातिजात्य-परम्परा के साथ लोक-उपकरणों को सशक्त एवं श्लाघ्य अभिव्यक्ति मिली है। नारतुन्दुयुतिन नाट्यसाहित्य में इसीलिए सुखबोध का वृत्त अत्यन्त व्यापक है। उत्तम सामयिक लोकमानस को अभिव्यक्ति देकर लोक को प्रेरित एवं उद्देक्षित करने की अद्भुत क्षमता है।

परिशिष्ट - १

भारतेन्दुशर्मा नाट्य-साहित्य की सूची

भारतेन्दुजी के नाट्य-साहित्य की सूची

नाटककार	नाटक	प्रकाशक	प्रकाशन काल	संस्करण	प्राप्य स्थल
अमान सिंह जी गिया और जागेश्वर दयाल	मदनमंजरी	--	सन् १८८४ ई०	प्रथम	बजरत्नदास पुस्तकालय
अयोध्याप्रसाद चौधरी	प्रबोध चंद्रोदय	देवीदीन उपाध्याय नार्मल स्कूल, आगरा	सं० १९४३ वि०	//	सभा, काशी
अन्ना जी हनामदार	गोपीचंद	--	--	--	सरस्वती पुस्तकालय
अनन्तराम पांडे	कपटीमुनि	भारतजीवन प्रेस, काशी	१९०३ ई०	प्रथम	भारतजीवन प्रयाग
अम्बिकादत्त व्यास	भारतजीवाग्र्य	सह्यग विलास प्रेस, बांकीपुर	१८८७ ई०	//	सभा काशी
	कलियुग और पी	शिवनाथ भट्ट नारायण प्रेस, मुजफ्फरपुर	१८८३ ई०	//	//
	सलिता	ग्रंथकार वैष्णव पत्रिका कायलिय, काशी	१९४० वि०	//	//
	गो संकट	सह्यग विलास प्रेस, बांकीपुर	१८८३ ई०	//	//
	मन की उमंग	देवीप्रसाद नारायण यन्त्रालय, मथुरा	१९४८ वि०	//	//
उदित नारायण	सती नाटक	भारतजीवन यन्त्रालय, काशी	१८८६ ई०	//	भारतजीवन प्रयाग
उदित नारायण शर्मा	कृमती नाटक	भारतजीवन प्रेस, काशी	१८८८ ई०	//	सभा काशी
कन्हैयालाल	अंजनासुंदरी	वैकटेश्वर प्रेस, बम्बई	१९४४ वि०	//	//
	शीलसावित्री	//	//	//	//
का र्तिक प्रसाद खत्री	उषाहरण	हरिप्रकाश यन्त्रालय, काशी	१८९१ ई०	//	//
काशीनाथ खत्री	ग्राम पाठशाला या निगृष्ट नांकी	भारतजीवन प्रेस, काशी	१८९३ ई०	दूसरा	//
	विधवा विवाह	ग्रंथकार सिरसा, इलाहाबाद	१८८२ ई०	प्रथम	//

काशीनाथ खत्री	परम मनोहर ऐति- ग्रंथकार सिरसा, हा सिद्ध रूपक:- शलाहाबाद	१८८३ ई०	प्रथम	समा काशी
	१-सिंधुदेश की राजकुमारी			
	२- गुन्नार की सम्बन्धन- रानी			
	३- लव जी का स्वप्न			
कामताप्रसाद	कन्या सम्बन्धनी	ग्रंथकार रामाबाद, शलाहाबाद	१८४१ ई०
किशोरीलाल गोस्वामी	मयंक मंजरी	नवल किशोर प्रेस, लखनऊ	१८६२ ई०
	नाट्यसंनव	लहरि प्रेस, काशी	१८७४ ई०
	चौपट चपेट	राजस्थान यंत्रालय, अजमेर	१८६१ ई०
भैरव राम भट्ट	सज्जाद सम्बुल	बिहार बंधु प्रेस, बांकीपुर	१८७७ ई०
केताशनाथ वाजपेयी	विश्वा मित्र	मेडिकल प्रेस, ज्ञानपुर	१८६७ ई०
कृष्णाजी महाराज 'तक'	विद्याविलासी व सुख बंधनी	नवल किशोर प्रेस, लखनऊ	१८८५ ई०
कृष्णानन्द त्रिवेदी	विद्या विनोद	भारत मित्र प्रेस, ३६ नया बाईना बाजार, कलकत्ता	१८८४ ई०
खिलावन लाल	प्रेमसुंदर	शंकरलाल रंढा जी, कोत्वाली बाँक, जबलपुर	१८६२ ई०
ख्वाबहादुर मल्ल	कल्पवृक्षा	ख्वाबहादुर प्रेस, बांकीपुर	१८८८ ई०
	भारत भारत	१८८५ ई०
	भारत ललना	१८८८ ई०
	रत्नसुमा सुख	१८८५ ई०
	महारास	१८८५ ई०
	हरिता लिका	१८८७ ई०
गोपालराम गुप्त	वैशदशा	ग्रंथकार गहमर, गाजीपुर	१८६२ ई०
	यौवन यौगिनी	एस० पी० वी० बां० माकैट, बम्बई	१८६४ ई०
	वित्रांगदा	--	--	--
	विद्या विनोद	सुमंत प्रेस, कालाकांकर	१८६२ ई०	प्रथम समा काशी

गौरीकवच मंडित	सरफिगी	जैननागरीप्रचारिणी सभा, मेरठ	१८६०ई०	प्रथम	सभा काशी
गुलाबसिंह	संगीत रूप क्रांत	ग्रंथकार काशी समान यंत्रालय, मयुरा	१६४८वि०
गोपालचंद्र [गिरिधर दास]	नहुषा	सभा काशी	२०११वि०
[आपादन : ब्रजरत्नदास]					
घनश्यामदास	वृद्धावस्था विवाह	--	--	--	भारती- भवन, प्रयाग
छगनलाल कासलीवाल	सत्त्वती	ग्रंथकार, अजमेर	१८६३ई०	प्रथम	सभा काशी
जगन्नाथ भारतीय	नवीन वेदान्त	लाल रामचंद्रवैश्य, मेरठ	१६४७वि०
	समुद्र यात्रा	ग्रंथकार शिपीवाहा दिल्ली	१८८७ई०
जगन्नाथ शरण	प्रह्लाद चरिता- मृत	ग्रंथकार रतनपुरा, हमरा	१६००ई०
जगन्नाथप्रसाद शर्मा	कुंदकली	ग्रंथकार सुपरिण्टेंडेंट पौ० आ०, जबलपुर	१८६५ई०
जगेश्वर दयाल	मदनमंजरी	भारतजीवन प्रेस, काशी	१८८४ई०
जगत नारायण	बकबर गोरक्षा न्याय	बालियाबाद, बाराबंकी	--	भारतीभवन प्रयाग	
	भारत डिमडिमा	ग्रंथकार दशाश्वमेध, काशी	--	सभा, काशी	
जयगोविंद मास्कीय	अधरामचरित्र	माधोप्रसाद चौबे, अहियापुर, प्रयाग	१८६४ई०	प्रथम	..
ज्वालाप्रसाद मिश्र	सीता वनवास	वैकुण्ठेश्वरप्रेस, बम्बई	१६६२वि०
	वैष्णवी संहार	--	--	..
तौताराम वकील	विवाह विडम्बन	भारतबंधु यंत्रालय, कलीगढ़	१६००ई०	द्वारा	..
	सीता स्वयंवर	संस्कृत मुस्तकालय, सदर बाजार, मेरठ	१६६०वि०	प्रथम	..

वामोदर शास्त्री सप्रे	रामलीला नाटक	सह्य विलामप्रेस, बांकीपुर	१८८२६०	प्रथम	सभा काशी
	बालकाण्ड
	अयोध्याकाण्ड	..	१८८३६०
	अरण्यकाण्ड	..	१८८४६०
	किष्किंधाकाण्ड	..	१८८७६०
	सुंदरकाण्ड	..	१८८७६०
	युद्धकाण्ड	..	१८८७६०
	उत्तरकाण्ड	..	१८८८६०
	बालसेत या धूमचरित्र	..	१८८९६०
दरयावसिंह मदनराजजी	मृत्युसभा प्रहसन	लक्ष्मी वेंकटेश्वरप्रेस, बंबई	१८९५६०
द्विज कृष्णादत्त	श्री युगलविहार	हिंदी सभा प्रेस, लखीमपुर	१८९६६०
देवकीनन्दन त्रिपाठी	कृतयुधि जनेऊ	जगन्नाथशर्मा धामिक यंत्रालय, प्रयाग	१९४३ वि०
	कृतयुधि विवाह प्रहसन	..	१९४६ वि०
	जयनारासिंह जी	भारतजीवन प्रेस, काशी	१८८४६०	द्विपुत्रा	..
देवदत्त शर्मा पंडित	अति अंधेरनगरी	रामनारायण प्रकाश यंत्रालय, फरुखाबाद	१८९१६०	प्रथम	..
	बाल्य विवाह	किताबगि यंत्रालय, फरुखाबाद	१८९७६०	चतुर्थ	..
देवराज	सावित्री नाटक	ग्रंथकार, जालंधर	१९००६०	प्रथम	..
देवदत्त मिश्र	बाल्यविवाह दुर्गा	सह्य विलामप्रेस, बांकीपुर	१८८५ वि०
दुर्गाप्रसाद मिश्र व कालीप्रसाद मिश्र	सरस्वती	उक्ति वक्ता यंत्रालय, ३५ सूतापट्टी, कलकत्ता	१९५२ वि०
राममजन मिश्र	सुंदर सभा	मुलतान प्रिंटिंग प्रेस, शिवनी नीमच	१९५७ वि०
रामशरण शर्मा व ठाकुरदास शर्मा	अपूर्व रहस्य	राशरण शर्मा, बागरा	१८८८६०
रघुदत्त शर्मा	वार्यमत मार्तण्ड (भाग-१, २)	वार्य भास्कर प्रेस, गोकुलचंद्र शर्मा, बही हट्टा, कलकत्ता	—	—	भारतीभवन
	पाण्डव मूर्ति	..	१८८८६०	प्रथम	सभाकाशी

निहोलाल मिश्र	विवाहिता विलास वैकुण्ठेश्वर यंत्रालय, बंबई	१८६८ २०	प्रथम	भारती भवन
प्रतापनारायण मिश्र	भारत बुद्धिशा रूपक	१९५६ वि०	॥	सभा
	संगीत शास्त्र	१९०८ २०	द्वितीया	काशी
	कलिकालीन रूपक	--	--	॥
प्रभुलाल कायस्थ	अथ द्रौपदी वस्त्र	१९५३ वि०	प्रथम	॥
अष्टाना	हरण अर्थात्			
	पांडव वनगमन			
बालकृष्ण भट्ट	शिक्षादान	महादेव भट्ट, अजयपुर	१९६६ वि०	॥ सम्मेलन
	दमयंती स्वयंवर	सम्मेलन, प्रयाग	१९६६ वि०	॥
	[सं० धर्मजय भट्ट]			
संपादन	वृद्धनला	सभा, काशी	२००४ वि०	॥
धर्मजय भट्ट	वैष्णु संहार	॥	॥	॥
	जैसा काम वैसा परिणाम	॥	॥	॥
	पद्मावती	हिंदी प्रदीप ५० ६-६१	१९७८ सितंबर	॥ सभा काशी
	चंद्रमन	॥ ७-२०	१९७७ सितंबर	॥
	किराताजुनीय	॥ १६-३३	१९७७ अक्टू ० से	॥
	शिशुपालवध	॥ ४०-५२	१९६६ सितंबर से	॥
	आचार विठम्बन	॥ १०-१६	१९८४ अक्टू ०	॥
	नई रोशनी का विषय	॥ १५-१८	१९८२ सितंबर	॥
	सीता वनवास	॥ १३-२१	॥	॥
	पतित पंचम	॥ १४-१७	१९८८ अगस्त	॥
	मेघनाद वध	॥ ४-८	१९६४ नवंबर	॥
बजरप्रसाद पंडित	मालतीवसंत	ग्रंथकार हित चिंतक प्रेस, काशी	१९५६ वि०	॥
बैजनाथ विद्यापी	वीरवामा	॥ काशी, मथुरा	१९४० वि०	॥
बालमुकुंद पाण्डेय	गंगोत्री			॥ सम्मेलन
बालमुकुंद गुप्त	रत्नावली	भारत मित्र प्रेस, ६७ बोरबागान	१९५६ वि०	॥ सभा
		कलकत्ता		
बंदोदीन दीक्षित	सीतास्वयंवर	अ. वैकुण्ठेश्वर यंत्रालय, बंबई	१९०० ६०	॥ भारती भवन
	अर्थात् धनुष यज्ञ			

२६०

बंदोदीन दीक्षित	सीताहरण	लखनऊ प्रिंटिंग प्रेस	१८६५ ई०	प्रथम भारतीयमेवन
	सुदामाकृष्ण	पं० नीलकण्ठ, बमीनाबाद, लखनऊ	१८६६ ई०	द्वारा समा
बदरीनारायण शर्मा	भारत सौभाग्य	जानंदकादंबिनी प्रेस, मिर्जापुर	१८८६ ई०	प्रथम भारतीय०
बदरीनारायण प्रेमचन	प्रयाग रामागमन	..	१८६८ ई०
बलदेव जी अग्रहारि	सुलोचना सती	ग्रंथकार इपरा	..	समा
	रामलीला विजय	बलदेवप्रसाद विचार समा, इटावा	१८८३ ई०
बलदेवप्रसाद मिश्र	नंद विदा	इंडिया लिटरेचर सोसाइटी मुरादाबाद	१८०० ई०
	प्रभास मिलन	वैद्येश्वर प्रेस बंबई	१८६० ई०
	लत्ता बाबू प्रहसन	..	१८५७ ई०
भवदेव उपनाम रज्जी दुबै	सुलोचना सती	नरस्वती लिलास प्रेस, नरसिंहपुर	१८६३ ई०
भिनगाधिम देव दिनैश	प्रेममंजरी	ग्रंथकार भिनगा	१८५१ ई०
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	वैदिकी शिक्षा	समा काशी	२० २७ ई०	सम्मेलन
[सं० रुद्र का शिष्येय --भारतेन्दु ग्रंथावली।	विषय विषमौषधम	समा काशी
	श्री चंद्रावली
	भारत दुर्वशा
	जंघेर नगरी
	पांचवै (ब्रूसा) पंगंबर
	प्रेम जोगिनी
	सती प्रताप
	सत्य हरिश्चंद्र
	विदूषा सुंदर
	धर्मजय विजय
	मुद्राराक्षस

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	कूर्पर मंजरी	सभा, काशी	२०२७ वि० प्रथम सम्मेलन	
दर्शन शंखु	
रत्नावली	
पाखंड विडंबन	
भारत जननी	
सबै जाल गोपालकी	
बसंत पूजा	
जा नि विवेकिनी सभा	
संड मंड्यो त्वाद	
बंदर सभा	
श्री रामलीला	
मधुसूदन लाल पंडुर्गा- प्रताप शर्मा	प्रभास मिलन	कृष्णानन्द शर्मा ६७ बीबागान, कलकत्ता	१९५३ वि०	सभा
माधव शुक्ल	महाभारत पूर्वाह्न	रामचंद्र शुक्ल, हुंवा धनश्याम दात, प्रयाग	१९७३ वि०	..
रघुवीर सिंह वर्मा	मनोरंजनी	महावीर सिंह मंत्री, आयुक्तमार्ग, कलकत्ता	१९६० ई०	..
रत्नचन्द्र सुंशी	हिन्दी-उडू	कुशुमचन्द्र, प्रयाग	१९६० ई०	..
	भूमजालक	नवल किशोर प्रेस, लखनऊ	१९८२ ई०	..
	न्यायसभा	धार्मिक यंत्रालय, प्रयाग	१९६२ ई०	..
रविदत्त शुक्ल	धर्मसंस्था देवादार चरित्र	धर्मसंस्था यंत्रालय, बलिया आर्य देशोपकारिणी सभा बलिया	१९८४ ई०	..
राधाकृष्णदास	धर्मताप	धर्मसंस्था यंत्रालय, काशी	१९४२ वि०	..
	दुःखिनी बाला	ग्रंथकार चौसम्भा, काशी	१९५८ वि०	..
	महाराणा प्रताप सिंह	सभा, काशी	१९३५ वि०	जाठवां
	महारानी पद्मावती	ग्रंथकार, चौसम्भा, काशी	१९५० वि०	प्रथम
रामारीब चतुर्वेदी	नागरी विज्ञाप	ग्रंथकार राजकीय पाठ- शाला, काशी	१९८५ वि०	..

राजेन्द्र बहादुर सिंह	प्रेमवाटिका	ग्रंथकार भिनगा	रु६२६०	प्रथम	समा
रामागोपाल विद्यान्त	रामाभिषेक	नवल किशोर प्रेस, लखनऊ	रु७७६०	//	भारतीमवन
राधाकान्त लाल	देशी भुतिया	ग्रंथकार हनुआ	रु६८८०	//	समा
	विलायती बोल				
राधावरण गोस्वामी	तम मन घन	ग्रंथकार वृन्दावन	रु८६०६०	//	//
	गुसांई जी की अर्पण				
	बूढ़े मुंह मुंहसे	भारतजीवन प्रेस, काशी	रु६४४वि०	//	//
	भंग तरंग	ब्रजभूषण यंत्रालय	रु६४४वि०	//	//
	सती चंडावली	राजस्थानी यंत्रालय, अजमेर		//	
	अमरसिंह राठौर	ग्रंथकार, मथुरा	रु६५६०	//	//
	श्रीदामा नाटक	वैदंटेस्वर प्रेस, बंबई	रु६६१वि०	//	//
रामनजन मिश्र	मुकुन्दर समा	मुलतान प्रिंटिंग प्रेस, झावनी	रु६५७वि०	//	//
		नीमव			
रामशरन शर्मा व	अपूर्व रहस्य	रामशरन शर्मा, जागरा	रु८८८०	//	//
ठाकुरदास शर्मा					
रुद्रदत्त शर्मा	कार्यमत मार्तण्ड	बाबासागर प्रेस,			भारतीमवन
	[भाग १, २]				
	पाखंड मूर्ति	गोकुलचंद्र शर्मा, दहीहट्टा,	रु८८८०	//	समा
		कलकत्ता			
रामकृष्ण वर्मा	कृष्णामुरारी	भारतजीवन प्रेस, काशी	रु८६६०	दूसरा	//
	पद्मावती	//	रु८६६०	प्रथम	//
	वीरनारी	//	रु८६८०	//	//
रामप्रभुलाल	द्रौपदी वस्त्र हरण	वैदंटेस्वर प्रेस बंबई	रु६५३वि०	//	//
लाली श्रीमती	गोपीचंद	जैन प्रेस, लखनऊ	रु८६६०	//	//
विजयानन्द त्रिपाठी	प्रबोध चंद्रोदय	बनारस स्टेट प्रेस, समा			//
	महामोह विद्रावण	ब्रह्मामृतवर्णिणी समा	रु८७९०	//	भारती०
		काशीपुरी			

विंध्येश्वरीप्रसाद त्रिपाठी	मिथिलेशकुमारी	सङ्गविलास प्रेस, बाँकीपुर	१८८८०	प्रथम	ममाकांशी
विद्याधर त्रिपाठी	उद्धव वशी ठि	रामचन्द्र खानवीकरव जडींग, मथुरा	१८८७०
विश्वनाथसिंह शु. वैव	जानंदरघुनंदन	ईश्वरीप्रसाद नारा- यण सिंह बहादुर काशी नरेश	१८२८३०
शालिग्राम वैश्य	माधवानल कामकंदला	वैद्येश्वर प्रेस, बंबई			सम्मेलन
	लावण्यमती मुदर्शन
	अमिमन्यु
	पुरुविष्म	..	१८५३३०	..	सभा
	मोरध्वज	..	१८६००	..	भारती०
शिवशंकरलाल बाजपेयी	रामयशवर्षण (तीनों भाग)	कैलाश यंत्रालय, जानपुर	१८६२२० १८६३
शिवराम पांडे वैय	हो लिङ्गावर्षण	सिटी एलवियन प्रेस,	१८६५०	..	सभा
शीतलाप्रसाद त्रिपाठी	जानकीमाल	सभा, काशी	२०२३ वि०	..	सम्मेलन
	संपादन डा०धीरेंद्र नाथ सिंह।				
श्रीनिवासदास	तप्ता संवरण	सङ्गविलास प्रेस, बाँकीपुर	१८८३०	..	सभा
	रणधीर और प्रेम- मोहिनी	उचित वक्ताप्रेस सूता- पट्टी, कलकत्ता	१८४० वि०	तृतीय	..
	ज्योतिषा स्वयंवर	सदानन्द मिश्र, सुधा- निधि कार्यालय, कलकत्ता	१८४२ वि०	प्रथम	..
	प्रह्लाद चरित्र	वैद्येश्वर प्रेस, बंबई	१८५२ वि०
श्रीहर्ष	दमयंती स्वयंवर	सुखी स्वामी, सरस्वती यंत्रालय, प्रयाग	१८६५०
सुदर्शनार्य शास्त्री	अनघनल चरित्र	लक्ष्मी वैद्येश्वर प्रेस, बंबई	१८६५ वि०
सुमंत सिंह	सती चरित्र	राजपूत हंगल ओरियंटलप्रेस आगरा	१८०००	..	सम्मेलन
हरिबाबू ज्योत्ष्यासिंह	प्रभुम्न विजय व्यायोग	भारत जीवन प्रेस, काशी	१८६३०
उपाध्याय	रुक्मिणी परिणय	१८६४०

परिशिष्ट-२

भारत कला भवन काशी में अध्ययन की गई प्राप्य भारतेन्दु युगोन साहित्य की सूची

- १- राधाकृष्ण की राधाकृष्ण गीस्वामी द्वारा लिखित पत्र
- २- वैदिकी लिखा- भारतेन्दु १८७३ई० प्रथम संस्करण
- ३- भक्ति सूत्र वैजन्ती - भारतेन्दु १८७७ ई० प्रथम संस्करण
- ४- श्री चन्द्रावली नाटिका- भारतेन्दु १८७७ई० प्रथम संस्करण
- ५- विजयिनी विजय वैजन्ती - भारतेन्दु १८८२ ई० - -
- ६- कपूर मंजरी- भारतेन्दु १८८२ ई० - -
- ७- प्रेम प्रताप - भारतेन्दु १८८३ ई० प्रथम संस्करण
- ८- मुद्रा राजस - (बनुवादक) भारतेन्दु १८८३ ई० ---
- ९- नाटक - भारतेन्दु १८८३ ई० प्रथम संस्करण
- १०- हिन्दी भाषा - भारतेन्दु - १८८३ ई० -----
- ११- रिपनाष्टक - भारतेन्दु - १८८४ ई० प्रथम संस्करण
- १२- बलिया में व्याख्यान - भारतेन्दु - प्रस्तावना लेखक- पं० रविदत्त शुक्ल, १८८४ ई०
- १३- अंधेर नगरी - भारतेन्दु - १८८४ ई० - पंचम संस्करण
- १४- शिक्षा आयोग में भारतेन्दु जी का साक्ष्य
- १५- पत्रक- भारतेन्दु के नाम हिन्दी प्रेमियों का- एजुकेशन कमिशन के संदर्भ में
- १६- गीरी संग्रह - भारतेन्दु जी (संग्रहकर्ता)
- १७- मछार छिंडोला कजली जयन्ती - भारतेन्दुजी (संग्रहकर्ता) प्रथम संस्करण १८८२ई०
- १८- उचित वक्ता को भारतेन्दु की अदाजलि
- १९- श्री हरिश्चन्द्राष्टक - पंडित श्रीधर पाठक - सन् १८८८ ई०
- २०- दुःखिनी बाला - बाबू राधाकृष्णदास - सन् १८८०ई० प्रथम संस्करण
- २१- बाबू राधाकृष्णदास लिखित महाराणा प्रताप नाटक की पाण्डुलिपि पृष्ठ ३३ से ४६ तक
- २२- रामचरितमानस- सदाश मिश्र का संस्करण सं० १८६७ वि०
- २३- इतिहास तिमिरनाशक - राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द १८७७ई० प्रथम संस्करण
- २४- परोक्षा गुरु- ठाठा श्रीनिवासदास द्वितीय संस्करण सन् १८८४ ई०

- २५- राजा शिवप्रसाद के लेखर- संग्रहकर्ता पं० चिन्तामणिराव बनारस - १८८५ई०
- २६- सड़ी बोली का पद्य-(पहला भाग) संग्रहकर्ता कवीध्याप्रसाद तन्त्री-मुजफ्फरपुर १८८७ई०
- २७- सरस्वती - एक हिन्दू गार्हस्थ रूपक- रचयिता-पं० दुर्गाप्रसाद मिश्र कलकत्ता-१८८८ई० प्र० सं०
- २८- ठेठ हिन्दो का ठाठ- लेखक कवीध्यासिंह उपाध्याय- ३०।३।१८८९ई०
- २९- जयनारसिंह की - पंडित देवकीनन्दन, तीसरा संस्करण बनारस - १८९६ ई०
- ३०- गुलजारी पुरबहार-(पढ़ने व गाने लायक पद्यों का संग्रह) संग्रहकर्ता भारतेन्दु, तृतीय सं० १९००
- ३१- कलिकांतुल्य रूपक- पंडित प्रतापनारायण मिश्र, द्वितीय संस्करण, काशी १९०४ ई०
- ३२- हिन्दो भाषा- बाबू बालमुकुन्द गुप्त कलकत्ता, १९०७ ई०
- ३३- संगीत शाकुन्तल- प्रतापनारायण मिश्र १९०८ ई०, द्वितीय संस्करण
- ३४- भारतेन्दु और राव भरतपुर स्त्री वेश में तथा अन्य दुर्लभ चित्र
- ३५- श्री हरिश्चन्द्र कामुखो- मासिक पत्रिका भाग-१, संख्या-२, काशी, १९०८ ई०
- ३६- साहित्य सुधानिधि- मासिकपत्र भाग-२ संख्या १, २, ३ संपादक- श्री ज्ञानाध्याप्रसाद
रत्नाकर तथा श्री देवकीनन्दन तन्त्री
काशी १८९४ई०
- ३७- बिहार-भूषण- मासिक पत्रिका संपादक भाग-१ संख्या-१ गया सं० १९५३ वि०
- ३८- हिन्दो प्रदीप- मासिक- संपादक- पं० बालकृष्ण मट्ट जिल्द २२ संख्या-५ प्रयाग १८९६ई०
- ३९- भाषा चन्द्रिका- मासिकपत्र, संपादक- श्री हरिकृष्णदास काशी, १९००ई०
- ४०- समालोचक- मासिक पत्र- संपादक बाबू गोपाल राम गल्मरी, जयपुर सन् १९०२ई०
- ४१- आनंदकादम्बिनी- मासिक माला चार मैघ ५, ६, ७ (१९०२ई०), मैघ १०, ११, १२ (१९०३ई०)
संपादक - प्रमथन मिश्रपुर
- ४२- नागरी हितैषिणी पत्रिका- त्रैमासिक संपादक- जैनेन्द्रकिशोर और पं० सकलनारायण
पाण्डेय वर्ष-१ संख्या-४ वाराणसी सन् १९०४ई०
- ४३- भारतीसर्वस्व- मासिक संपादक- गणेशगोपाल रागणोकर, वर्ष-१, अंक-१ हरदा १९०६ई०
- ४४- भारत भानु- मासिक संपादक- माधवप्रसाद शास्त्री गाँड़ सं०-१ संख्या-१ बम्बई १९०५ई०
- ४५- श्री हरिश्चन्द्र चन्द्रिका- सं०-२ संख्या-४ (१८७५), सं०-३ संख्या-८-१२ तक (१८७६ई०),
सं०-४ संख्या-२ (१८७६ई०) सं०-५ संख्या-२ (१८७७ई०) सं०-६ सं०-४ (१८७८ई०)
- ४६- हरिश्चन्द्र चन्द्रिका और मोहन चन्द्रिका- सं०-७ संख्या-६ संवत् १९३७ वि०
- ४७- कविवचन सुधा सप्लिमेंट- जार्ज नाट्य समा, प्रयाग की अपील हलाहाबाद १८७६ ई०

- ४८- कविवचन सुधा- संपादक भारद्वाज- जिल्द ३, एवं ७ से १८ तक अथात् सन् १८८६-८७ तक
 ४९- नवोदिता हरिश्चन्द्र चन्द्रिका- खंड ११ संख्या-१ सन् १८८५ई०
 ५०- प्रयाग समाचार - सन् १८८२ ई०

-----:०:-----

परिशिष्ट-३

पत्र-पत्रिकाएं

नाम	प्राप्य स्थल
१- 'आज' वाराणसी	सभा, काशी
२- नागरी पत्रिका, वाराणसी	
३- नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वाराणसी	
४- काशी पत्रिका, वाराणसी	
५- आनंद कादम्बिनी, मिर्जापुर	
६- कवि वचन सुधा, वाराणसी	
७- बिहारबन्धु - पटना	
८- श्री नाट्य पत्रिका, वाराणसी	
९- धर्मयुग, बम्बई	
१०- हरिश्चन्द्र चन्द्रिका- वाराणसी	
११- ब्राह्मण, कानपुर	
१२- संगम, इलाहाबाद	
१३- न्यायधर, लखनऊ	
१४- सरस्वती, इलाहाबाद	
१५- नटरंग, दिल्ली	
१६- सम्मेलन पत्रिका, इलाहाबाद	
१७- माध्यम, इलाहाबाद	
१८- द्वात्रिंश पत्रिका, वाराणसी	
१९- हिन्दी प्रदीप- इलाहाबाद	
२०- हरिश्चन्द्र मैगधोन, वाराणसी	
२१- हरिश्चन्द्र चन्द्रिका और मोहन चन्द्रिका, वाराणसी	
२२- हरिश्चन्द्र चन्द्रिका मोहन चन्द्रिका विद्यार्थी सम्मिलित, वाराणसी	

२३- स्वतंत्र भारत, लखनऊ	सभा, काशी
२४- समालोचक, जयपुर	
२५- भारतीय साहित्य, आगरा	
२६- शतदल, गोरखपुर	
२७- नवजीवन, लखनऊ	
२८- माधुरी, लखनऊ	
२९- उचित वक्ता, कलकत्ता	
३०- नागरी द्विदिविणी पत्रिका, बारा	

संदर्भ ग्रन्थ

हिन्दी

रचनाकार कृति प्रकाशक प्रकाशन काळ संस्करण

अयोध्यासिंह उपाध्याय

'हरिवाँष' १- हिन्दी भाषा - पटना -
और उसके साहित्य -डूनिवर्सिटी १६३४ई० प्रथम
का विकास
" २- ठेठ हिन्दी का ठाठ- सुहृगविलास
प्रेस, बाँकीपुर १६२२ई० "

अरविन्दकुमार देसाई,
(डा०) भारतेन्दु और सरस्वती पुस्तक-
नगरी साहित्य सदन, बाँकीपुर १६६५ई० "

आलम माधवानल कामन्दला सभा, काशी -- --

इन्दिरा जोशी(डा०) हिन्दी उपन्यासों में लोकतत्व -- --

इन्दुजा अवस्थी(डा०) नाटक साहित्य का अध्ययन --
अनुवादिका -- --

उषा माथुर(डा०) भारतेन्दु की लड़ी सभा, काशी
बोली -- --

उदयनारायण तिवारी भाँगीपुरी भाषा
और साहित्य -- --

रम० ईश्वरी भारतेन्दु शब्द शैली -- --

कमलापति त्रिपाठी पत्र और पत्रकार ज्ञानमण्डल लि० २००२वि० प्रथम
बनारस

कपिलदेव सिंह(डा०) बुझाभाषा बनाम विनोद पुस्तक १६५६ई० "
लड़ी बोली मदन, बाँकीपुर

कामिल बुल्की(डा०) रामकथा उत्पत्ति विश्वविद्यालय --- प्रथम
और विकास प्रयाग

कुंवर चन्द्रप्रकाश सिंह १- हिन्दी नाट्य भारती ग्रन्थ- १६६४ई० "
साहित्य और रंगमंच मण्डार,
की मोमासा दिल्ली

" २- मध्यकालीन हिन्दी नाट्य परम्परा और ग्रन्थ कटोर, १६५८ई० "
काँपुर
भारतेन्दु

कमलिनी मेहता(डा०) नाटक के तत्व सभा, काशी २०००ई० "

कृष्णदेव उपाध्याय(डा०) लोक साहित्य समर-कम्पे --- --
की भूमिका

किशोरोलाल गुप्त(डा०)	भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि	--	--	--
गोपीनाथ तिवारी(डा०)	१- भारतेन्दु काजीन नाटक साहित्य	हिन्दी भवन, इलाहाबाद	१९५६ई०	प्रथम
"	२- भारतेन्दु के नाटकों का शास्त्रीय अनुशीलन	राजकमल प्रकाशन दिल्ली	१९७१ ई०	"
गोविन्दचन्द्र	भारत नाट्य शास्त्र के नाट्यशास्त्रियों के रूप	काशी मुद्रणालय	१९५८ई०	"
चन्द्रमान	रामचरितमानस में लोक- वाणी	--	--	--
चतुरसेन शास्त्री	१- हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास	गौतम बुक डिपॉ दिल्ली	१९४६ई०	प्रथम
"	२- कथं रत्नामः	शारदा प्रकाशन भागलपुर	१९५५ई०	"
चन्द्रप्रकाश त्यागी	देशी शब्दों का भाषा- वैज्ञानिक अध्ययन	लिपि प्रकाशन दिल्ली	१९७२ई०	"
चन्द्रराज मण्डारी	नाट्यकला दर्शन	हिन्दी साहित्य प्रचारक कार्यालय-नरसिंहपुर	१९२५ई०	"
चंदूलाल	हिन्दी नाटकों का रूप- विधान और वस्तु विकास	दिल्ली प्रकाशन पुस्तक सदन	१९७०ई०	"
चेनी शैलान(अनु: - त्रिकृष्णदास)	रंगमंच	हिन्दी समिति, उत्तराखण्ड	१९६५ई०	"
जयनाथ नलिन	हिन्दी नाटककार	आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली	१९५२ई०	"
दशरथ जीफा(डा०)	हिन्दी नाटक-उद्भव और विकास	राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली	१९५४ई०	"
दिनेशनारायण उपाध्याय	हमारे नाट्य परम्परा	रामनारायणलाल बुक्सलर इलाहाबाद	१९४०ई०	"
देवचंद्र सनाढ्य	हिन्दी में पौराणिक नाटक	बौद्धिमा विद्या-भवन वाराणसी	२०१७वि०	"
धोरेन्द्र वर्मा (डा०)	हिन्दी साहित्य का ज्ञानमण्डल, वाराणसी	ज्ञानमण्डल, वाराणसी	२०१५वि०	"
नामवरसिंह (डा०)	हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग	--	--	--
नन्ददुलारे बाबुराय	१- राष्ट्रीय साहित्य तथा अन्य निबन्ध	विद्यामन्दिर	१९६५ई०	प्रथम
"	२- हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी	लोकभारती, प्रयाग	१९६६ई०	"

नारायणम् एन०वाई०	हिन्दी और मलयालम के नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन	जवाहर पुस्तकालय मधुरा	१९७२ई०	प्रथम
नन्दिकेश्वर (अन : वाचस्पति गैरीला)	भारतीय नाट्यपरंपरा और अभिनव दर्पण	संवर्तिका प्रकाशन प्रयाग	१९६७ई०	"
पूराभुपटकर	हिन्दी और मराठी के ऐतिहासिक नाटक	समा, काशी	--	"
बलदेवप्रसाद मिश्र (डा०)	नाट्य प्रबन्ध	वैकटेश्वर प्रेस बम्बई	१९६०ई०	"
बच्चनसिंह (डा०)	हिन्दी नाटक	लोक भारती प्रयाग	१९६७ई०	द्वितीय
बाळमुकुन्द गुप्त	हिन्दी भाषा	भारतमित्र प्रेस कलकत्ता	१९६४ वि०	प्रथम
बिहारोलाळ वर्मा	विश्वधर्म दर्शन	--	१९५३ई०	"
ब्रजेन्द्रनाथ पाण्डेय	भारतेन्दु कालीन व्यंग्य परम्परा	--	२०१३ वि०	"
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	१- नाटक	मल्लिकार्जुन एण्ड कौ०काशी	१८८३ई०	"
"	२- हिन्दी लेखन	समा, काशी	--	"
महावीरप्रसाद द्विवेदी	१- हिन्दी भाषा की उत्पत्ति	इंडियन प्रेस, प्रयाग	१९११ई०	"
"	२- नाट्यशास्त्र	--	--	"
मन्मथ राय	हमारे कुछ प्राचीन लोकौत्सव	साहित्य भवन प्रयाग	१९५३ई०	"
मोहन कृष्ण दत्त	काश्मीर का लोक साहित्य	आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली	१९६३ई०	"
माताप्रसाद गुप्त (डा०)	तुलसीदास	विश्वविद्यालय, प्रयाग	--	प्रथम
मुकुन्ददेव शर्मा (डा०)	हरिदास व्यक्ति और साहित्य	--	--	--
रवीन्द्र प्रमर (डा०)	हिन्दी भक्ति साहित्य-भारती में लोकतत्त्व	साहित्य मन्दिर, दिल्ली	१९६५ई०	प्रथम
राजेन्द्र सिंह गढ़ी	१- हमारी नाट्य साधना	मेहरा कं० बागरा	१०१० वि०	"
	२- हमारे नाटककार	"	"	"

रामविलास शर्मा(डा०)	१- भारतेन्दु युग	विनाद पुस्तक मन्दिर बागरा	१९६३ई०	प्रथम चतुर्थी
	२- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	विद्याधाम दिल्ली	१९५५ई०	प्रथम
रामचन्द्र शुक्ल	१- हिन्दी साहित्य का	समा, काशी	२००६ वि०	--
	इतिहास			
	२- भारतेन्दु साहित्य	हिन्दी पुस्तक उद्योगियासराय	१९५५ई०	प्रथम
राजकुमार	नाटक और रंगमंच	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय काशी	१९६९ई०	,,
राजेन्द्र शर्मा(डा०)	हिन्दी के गद्य निमाता	विनाद पुस्तक मन्दिर, बालकृष्ण मठ	१९५८ई०	,,
		हास्पिटल रोड, बागरा		
रामजोशाल बघीलिया	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	--	१९५८ई०	तृतीय
रामस्वरूप चतुर्वेदी(डा०)	भाषा और संवेदना	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन	१९६४ई०	प्रथम
राजेन्द्रकुमार (डा०)	परवर्ती हिन्दी कृष्ण-	स्मनस्त्रयमन्त्रालय प्रयाग	१९५४ई०	द्वितीय
	भक्ति काव्य	शब्दपीठ प्रकाशन-	१९७३	प्रथम
रामकुमार वर्मा(डा०)	१- हिन्दी साहित्य का	रामनारायणलाल, प्रयाग	१९४८ई०	द्वितीय
	बालीबनात्मक इतिहास			
	२- साहित्य - चिंतन	किताब मल्ल, प्रयाग	१९६५ई०	प्रथम
रविशंकर शुक्ल	संयुक्त प्रान्त की देशभाषा	गंगा ग्रन्थागार, लखनऊ	२००३वि०	,,
राधाकृष्णदास	१- भारतेन्दु का जीवन चरित्र	--	--	--
	२- हिन्दी भाषा के सामयिक	चन्द्रप्रभा प्रेस बनारस	१९६४ई०	प्रथम
	पत्रों का इतिहास			
रामगोपालसिंह चौहान	भारतेन्दु साहित्य	विनाद पुस्तक मन्दिर बागरा	१९५७ई०	,,
रघु काशिकेय	भारतेन्दु ग्रन्थावली	समा, काशी	२०१७वि०	,,

राम किशोरी श्रोवास्तव	हिन्दी-लोकगीत	--	१९६४ वि०	प्रथम
रामदहिन मिश्र	हिन्दी मुहावरे	ग्रन्थमाला बांकीपुर	--	--
रघुवंश (डा०)	१- प्रकृति और हिन्दी- साहित्य भवन, प्रयाग	काव्य	१९५१ ई०	प्रथम
"	२- भरत का नाट्यशास्त्र	मोतीलाल बनारसीदास	१९६४ ई०	"
"	भाग-१			
"	३- नाट्यकला	नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली	१९६१ ई०	"
रामनरेश त्रिपाठी	कविता कमुदो	बम्बई नव प्रकाशन	१९५५ ई०	"
	भाग-३			
रमाशंकर शुक्ल रसाल (डा०)	नाट्य निर्णय	कगुवाल प्रेस आगरा	१९३० ई०	"
रामरतन भटनागर	१- भारतेन्दु साहित्य	किताब मकान, प्रयाग	१९४८ ई०	"
	एक अध्ययन			
"	२- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	"	१९५० ई०	"
रणधीर उपाध्याय (डा०)	हिन्दी और गुजराती	नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली	१९६६ ई०	"
	नाट्य साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन			
रमासेन गुप्ता (डा०)	हिन्दी तथा बंगला	कमल प्रकाशन इन्दौर	१९७१ ई०	"
	नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन			
रामसागर त्रिपाठी	भारतीय नाट्यशास्त्र और	अशोक प्रकाशन दिल्ली	१९७१ ई०	"
	रंग मंच			
लक्ष्मीसागर वाष्णीय (डा०)	१- आधुनिक हिन्दी	विश्वविद्यालय, प्रयाग	१९४१ ई०	"
	साहित्य			
	२- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	साहित्य भवन, प्रयाग	१९६५ ई०	"
बनबुबनहरचन-बनबुबन (डा०)	संमेलन-बनारस-नाटक-को-नेशनल-पब्लिशिंग-हाउस			
	मुम्बई			
लक्ष्मीनारायण मिश्र	कवि भारतेन्दु (नाटक)	--	--	--

लक्ष्मीनारायणलाल(डा०)	रंगमंच और नाटक	नेशनल पब्लिशिंग हाउस	१९६५ई०	प्रथम
	की भूमिका	दिल्ली		
वासुदेवशरण अग्रवाल(डा०)	पृथ्वीपुत्र	सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली	१९४९ई०	,,
वृजरत्नदास	१- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	हिन्दुस्तानी स्कैडेमो, प्रयाग	१९४८ई०	,,
,,	२- हिन्दा नाट्य साहित्य	हिन्दी साहित्य कुटोर		
		बनारस	१९५५ई०	,,
,,	३- सड़ी बोली हिन्दी			
	साहित्य का इतिहास	,,	१९६८वि०	,,
विद्यावती लक्ष्मण				
(विनम्र) (डा०)	हिन्दी रंगमंच और	विश्वविद्यालय प्रकाशन	१९७२ई०	,,
	पं०नारायणप्रसाद बैतान	काशी		
वृजकिशोर पाठक(डा०)	भारतेन्दु की गद्यभाषा	--	--	,,
विमलकुमार जैन(डा०)	हिन्दी के अर्वाचिनरत्न	नेशनल पब्लिशिंग हाउस	१९५६ई०	,,
		दिल्ली		
विश्वनाथप्रसाद मिश्र	हिन्दी में नाट्यशास्त्र	साहित्य सेवक कार्यालय	१९६५वि०	,,
	का विकास	काशी		
श्याम परमार	१- लोकगीतों नाट्य परंपरा	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय	१९५६ई०	,,
	२- भारतीय लोक साहित्य	--	--	--
श्यामसुन्दरदास(डा०)	राधाकृष्ण ग्रन्थावली	--	--	--
श्यामसुन्दरदास एवं	रूपक रत्नस्य	हॉडियन प्रेस प्रयाग	१९८८वि०	५
पाताम्बरदास बहुध्वाल				
शान्तिप्रकाश शर्मा(डा०)	प्रतापनारायण मिश्र	विश्व साहित्य भवन दिल्ली	१९७०ई०	,,
	को हिन्दी गद्य की देन			
शान्तारानी(डा०)	हिन्दी नाटकों में हास्य	रचना प्रकाशन	१९६९ई०	,
	तत्त्व			
श्री भानु	भारतेन्दु (नाट्यरूपक)	समा, काशी	२०१६वि०	,,

श्री कृष्णदास	हजारो नाट्य परंपरा	राजकमल प्रकाशन दिल्ली	१९५६ई०	प्रथम
॥	लोकगीतों को सामाजिक व्याख्या	साहित्य भवन, प्रयाग	॥	॥
सैठ गोविन्ददास	नाट्यकला मोमांसा	सूचना तथा प्रकाशन म०पु०	१९६१ई०	॥
सत्येंद्र (डा०)	लोक साहित्य विज्ञान	शिवलाल अग्रवाल, आगरा	१९६२ई०	॥
सैयद रहतिशामुल्लेख	उर्दू साहित्य का इतिहास	लोक भारती प्रकाशन, प्रयाग	१९६६ई०	॥
सर्वदानन्द	रंगमंच	श्रीराम मेहरा एण्ड कं० आगरा	१९६८ई०	॥
सुशीला घोर(डा०)	भारतेन्दु युगान नाटक	हिन्दी ग्रन्थ अकादमी म०पु० मोपाल	१९७१ई०	॥
सोमनाथ गुप्त(डा०)	हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास	हिन्दी भवन, प्रयाग	१९५१ई०	॥
हजारोप्रसाद द्विवेदी(डा०)				
तथा पृथ्वीनाथ द्विवेदी	नवद्वयशास्त्र को भारतीय परंपरा और दशरूपक	राजकमल प्रकाशन दिल्ली	१९६३ई०	॥
हजारोप्रसाद द्विवेदी(डा०)	१- हिन्दी साहित्य	अत्रचन्द कपूरचन्द एण्ड सन्स दिल्ली	१९६४ई०	॥
	२- हिन्दी साहित्य की भूमिका	हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई	१९५४ई०	॥
	३- विचार और वितर्क	साहित्य भवन, प्रयाग	१९६६ई०	तृतीय
	४- हिन्दी साहित्य का आदिकाल	—	—	—

संस्कृतग्रन्थ

प्राप्य स्थल

गीता

सम्मेलन, प्रयाग

महाभारत

।

ऋग्वेद

।

भरत नाट्यशास्त्र

।

दशरूपक

।

दैवी भागवत पुराण

।

विष्णु पुराण

।

माकण्डेय पुराण

।

अंग्रेजी

ग्रन्थ

प्राप्य स्थल

आद्य रंगाचार्य

द इंडियन स्टേज

विश्वविद्यालय, प्रयाग

ए०बी० कोथ

ए हिस्ट्री आफ् संस्कृत लिटरेचर

।

११

संस्कृत ड्रामा

।

बी०के० सरकार

द फाक एलोमेंट आव हिन्दू कल्चर

॥

सी० एस० बन

द हँड बुक आव फोकलोर

।

चिलीशाकी

फाक टैल्स आव हिन्दुस्तान

।

जान रस्किन

द क्वीन आव द एयर

।

रोड

फार्म इन माडर्न पाइड्री

।

आर०आर० मैरिट

साइकलोजी एण्ड कन्सेप्स फोकलोर

।

जेम्स डूवर

ए डिक्शनरी आव साइकलोजी

।